Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XI **No. - 3** **(July – Sept.) 2025**

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - ***A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal****, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	अथर्ववेद में जल चिकित्सा ***डॉ. सौरभ सिंह***	01-03
➲	एकांकी नाटक : चिन्तन एवं आगमन ***डॉ. कृष्ण मोहन ठाकुर***	04-07
➲	बुजुर्गों के प्रति युवाओं की सोच एवं पीढ़ियों के बीच संबंधों का अध्ययनः वाराणसी जनपद के सन्दर्भ में ***डॉ. चन्द्रशेखर सिंह***	08-12
➲	समकालीन परिप्रेक्ष्य में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के 'सामाजिक–न्याय' पर विचार ***डॉ. पवन पाठक***	13-15
➲	आधुनिक कविता और धूमिल की राजनैतिक विचारधारा ***डॉ. मनीष कुमार सिंह***	16-19
➲	अमृतकाल (2022–2047) में ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण : गांधी के ग्राम स्वराज के संदर्भ में ***हिमांशु सिंह***	20-26
➲	मगध प्रमंडल में शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच को बढ़ाने में शिक्षकों की भूमिका ***डॉ. ज्योत्सना प्रसाद***	27-31
➲	हिंदी साहित्य में आदिवासी की स्थिति और संवेदनाएं ***पी सोमा शेखर***	32-39
➲	वर्तमान चुनाव प्रणाली की चुनौतियां और समाधान ***लक्ष्मी नारायण***	40-44
➲	सरवनगाथा – भरत लाल बड़गईहा पौनी ***प्रीतम सिंह मेरावी*** ***डॉ. दीपशिखा पटेल***	45-50
➲	पटना विश्वविद्यालय की स्थापना और उच्च शिक्षा का विकास 1917 –1947 ईस्वी ***डॉ. रश्मि कुमारी***	51-52
➲	महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह द्वारा महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलताः औरंगाबाद जिला, बिहार का तुलनात्मक अध्ययन ***डॉ. सुमित कुमार मिश्रा***	53-58
➲	हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में लय और लयकारी का विकासात्मक अध्ययन ***विनय सिंह***	59-62
➲	दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति ***पूजा विश्वकर्मा***	63-65

➲	बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में किसानों की जागरूकता तथा जैविक खेती को अपनाने में बाधाओं का सामाजिक–आर्थिक अध्ययन ***डॉ. आभा सिन्हा***	66-69
➲	कृषि आधारित उद्योग और ग्रामीण विकास का सूक्ष्म भौगोलिक अध्ययन ***विशाल विक्रम सिंह***	70-73
➲	भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में साहित्यिक संघर्ष और संवेदना ***डॉ. जगत सिंह कठायत***	74-79
➲	राजनीति के केंद्र में डॉ. भीम रॉव अम्बेडकर : एक विश्लेषण ***डॉ. राकेश कुमार***	80-81
➲	भक्ति मार्ग में मीरां का संघर्ष ***मनीषा मीणा***	82-86
➲	दृश्यकाव्य में समवकार ***डॉ. राम कृपाल***	87-89
➲	वर्तमान समय में खाद्य–पदार्थों में अपमिश्रण : एक गम्भीर समस्या ***विभा सिंह*** ***डॉ. सुरेखा जायसवाल***	90-92
➲	ओ०डी०ओ०पी० योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का परिवर्तन ***किरन यादव*** ***प्रो. (डॉ.) रामोद कुमार मौर्य***	93-101
➲	बौद्ध साहित्य में वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन ***याचना गुप्ता***	102-104

अथर्ववेद में जल चिकित्सा

डॉ. सौरभ सिंह*

प्रकृति मानव हित में सबसे उपयोगी घटक है। सृष्टि में व्याप्त सभी तत्त्व व पदार्थ मानव का हित करने में समर्थ हैं। यदि मनुष्य प्राकृतिक उपचार करे तो रोगों से दूर हो सकता है।

संसार में जितने भी प्रकार की प्रमाणित चिकित्सा पद्धतियाँ है। उन सभी चिकित्सा पद्धतियों में प्राकृतिक चिकित्सा की अहम भूमिका है। सामान्य रूप से सभी अन्य चिकित्सा पद्धतियों में औषधि के द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है। इसमें शरीर की प्रवृति को समझकर उसका उपचार किया जाता है। इस चिकित्सा प्रणाली में यह बात निहित है, कि शरीर स्वयं को ठीक करने के कार्य में निरन्तर लगा रहता है। हम केवल प्राकृतिक तत्त्वों के द्वारा उसकी सहायता करने का कार्य करते हैं।

पंच महाभूतों से निर्मित शरीर है। उसमें सूक्ष्म शरीर वाला आत्मा इन्द्रियों सहित निवास करता है।[1]

सृष्टि में पहले पांच तत्त्वों की रचना हुयी। यह पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है। इन पांच महाभूत के पूर्व यह संसार अस्तित्व में नहीं था। इन्हीं पंच तत्त्वों से इस सृष्टि का संचालन होता है।[2]

जल तत्त्व से चिकित्सा

जल अन्न को उपजाने वाला होता है। नदी, कूप, वृष्टि या अन्य कहीं का भी जल शरीर को शीतलता प्रदान करने वाला होता है। जल प्यास को मिटाने वाला होता है। जल के पीने का सही प्रयोग आरोग्य वर्धक होता है। वहीं दूषित जल के नीचे स्नान करने या कोई अन्य गलत प्रकार से उपयोग करने पर वह रोगों का कारण बन सकता है। इसलिए जल के अनुचित प्रयोग से बचना चाहिए।[3]

अच्छे प्रकार का जल मृत्यु से बचाने वाला होता है। जिस जल को चिकित्सीय विधानों के अनुसार प्रयोग किया जाता है, वह जल रोगों को नष्ट करता है। मृत्यु से बचाकर अमृत की प्राप्ति कराता है। घर के स्वामी को रोगों से बचने के लिए अपने गृह में चिकित्सीय विधानों के अनुसार ही जल अग्नि आदि पदार्थों का समुचित प्रयोग करना चाहिए।[4]

जल के अन्दर निहित दीपन शक्ति को शरीर के दोषों पर प्रदीप्त कर उसे नष्ट करने की कामना की गयी है।[5]

जल में शोधन शक्ति विद्यमान होती है। जल से उसके शोधन शक्ति के द्वारा शरीर का शोधन कर शरीर शुद्ध करने का आग्रह किया गया है।[6]

अन्तरिक्ष में व पृथ्वी पर दिव्य जल धाराऐं व्याप्त है। यह दिव्य जल धाराएं औषधि युक्त होती है। इन औषधि युक्त जल धाराओं का चिकित्सीय नियमानुसार प्रयोग करने से यह शरीर को रोग मुक्त कर देती है। इनसे अरोग्य और बल की वृद्धि होती है। राजा को राजगद्दी पर बैठने के समय औषधियों के रस से मिले हुए वृष्टि नदी, कूप आदि के जल से स्नान करने के बारे में बताया गया है।[7]

इस औषधि युक्त जल धाराओं से शरीर को सब ओर से सीचने के पश्चात सभी मनीषीजन आशीर्वाद दे। राजा को इस जल से अभिषेक स्नान इसलिए कराया गया है कि वह संसार का उपकार करने में सक्षम हो।[8]

---

* **घाटमपुर, अहरौरा, मिर्जापुर(उ.प्र.)**

[1] पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गलिभिर्दव्यौद्धर पञ्चधैतमदनम् । प्राच्यां दिशि शिरों अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् । अथर्ववेद 04/14/07

[2] आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ अथर्ववेद 19/22/01

[3] आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत यो ३श् स्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । अथर्ववेद 02/23/01

[4] हमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मानाशनीः ।
गृहानुप प्र सदाम्पमूर्तेन सहाग्निना ॥ अथर्ववेद 03/12/09

[5] आपो यद् वोऽचिस्तेन तं प्रत्यचेत यो । अथर्ववेद 02/23/03

[6] आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत । अथर्ववेद 02/23/04

[7] या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत व पृथिव्याम् । अथर्ववेद 04/08/05

[8] अभि त्वा वर्चसासिचन्नापों दिव्याः पर्यस्वतीः । अथर्ववेद 04/08/06

जल के अन्दर अग्नि है। उस अग्नि से हमारे शरीर की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी हैं। जल के अग्नि के कारण जल उष्ण हो जाता है। गर्म जल का प्रयोग कई चिकित्सीय उपयोग में आता है। हल्के गर्म जल का सूर्योदय के समय ऊषा काल मे पीने को ऊषापान कहा गया है। उषा पान से कई रोगों की चिकित्सा होती है।[9]

जल से यह विनती की गयी है कि वह हमारे शरीर के दोषों के तेज को निस्तेज कर आरोग्य लाभ प्रदान करें।[10]

सूर्य का ताप जल का विस्तार कर देता है। जल को खींचकर अन्तरिक्ष में ले जाता है। अन्तरिक्ष से पुन: वर्षा के रूप में आकर सब प्राणियों को औषधि रूप में मिलता है। यह औषधि रूपी वृष्टि का जल सभी जीवधारी के लिए जीवन का आधार होता है।[11]

सृष्टि के संचालन का कारण भूत तत्त्व जल अर्थात् रस सूर्य की किरणों के द्वारा आकाश में जाकर पुनः पृथ्वी मे आता है। फिर पुन: आकाश में जाता है और वापस पृथ्वी पर वर्षा रूप में आता है। जल हमेशा सूर्य के प्रकाश द्वारा वाष्पित होकर आकाश में जाता है। आकाश से मेघों द्वारा बारिस होकर पृथ्वी पर आता है। इस प्रकार के जल के आने-जाने का आकर्षण जगत में मौसम परिवर्तन का भी कारण होता है। मेघ वर्षा से धन धान्य की वृद्धि करता है। सेवन योग्य जल प्रदान करता है। सभी प्रकार से विश्व का कल्याण करता है।[12]

प्राकृतिक नियम में जल के भाप को मेघ के द्वारा रोक लिया जाता है। भाप के रूप में बह रही समस्त जल धाराएं मेघ के द्वारा एकत्रिक कर के उपयोग में लायी जाती है। राज रोग को हटाने के लिए मनुष्य हित में अग्नि का प्रयोग करके वैद्य लोग पाचन शक्ति ठीक कर रोग को रोक देते हैं।[13]

जल शुभ कर्म को देने वाला होता है। जल भय निवारक होता है। जल पीड़ा नाशक भी होता है। इस शुभ कर्म, भय निवारक और पीड़ा नाशक जल का प्रयोग औषधि के रूप में करके जल चिकित्सा करनी चाहिए। जल चिकित्सा करके शारीरिक रोगों की निवृत्ति करे। ऐसा उपदेश किया गया है।[14]

निर्जल स्थान में जल को लाकर ईश्वर द्वारा सिंचा जाने की बात कही है। यह जब अमृत के समान है। इस अमृत से विष (शरीर के रोषों) को दूर करना चाहिए।[15] जल से चिकित्सा करके कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। विद्वान् जिज्ञासु वैद्य जल चिकित्सा का प्रयोग कर गम्भीर रोगों की चिकित्सा बड़ी सरलता से कर देते हैं।[16]

इस मंत्र में जल को अयक्ष्मकरणी कहा गया है। जल निरोगता कर रोग भय को जीतने वाला होता है। परमात्मा के द्वारा संसार में वर्षा, नदी, कुओं इत्यादि विभिन्न जल स्रोत दिये है। मनुष्य को इनसे जल चिकित्सा करके निरोग होना चाहिए। ऐसा उपदेश अथर्ववेद में दिया गया है।[17] जल सम्बन्धित द्रव्य से जो जल मे युक्त औषधि द्रव्य हो उन सुखकारक पदार्थों से पास से सिंचना चाहिए। यह जल तीक्ष्ण औषध है। यह हमारे शरीर के दोषों को दूर कर हमें जीने के लिए सुखकारक बनाता है।[18]

---

[9] रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते । अथर्ववेद 08/01/11

[10] आपो यद् वस्तेजस्तेन तर्मतेजसं कृणुत यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । अथर्ववेद 02/23/05

[11] अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूवं । स नो वर्ष वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यों अमृतं दिवस्परिं ॥ अथर्ववेद 04/15/10

[12] येषां प्रयाजा उत वनुयाजा हुतर्भागा अहुतार्दश्च देवाः । येषां वः पञ्च मदिशो विभक्तास्तान् वा अस्मै संत्रसदेः कृणोमि । अथर्ववेद 01/30/04

[13] यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वर्धा यतीः । अथर्ववेद 06/85/03

[14] आप इद् वा उं भेषजीरापों अमीव वःतंनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु मेषजम् । अथर्ववेद 06/91/03

[15] यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चिन् धन्वन्युदकम् तेनं देवमंस्तेनदं द्वेषयता विषम् । अर्थव 06/100/ 02

[16] यत् प्राङ् मृत्यङ् स्वधया यासि शमं नानारूपे भनी कर्षि मायर्या। तदोदित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्व परि भूम जायसे । अथर्ववेद 19/02/03

[17] मा त्वां दभन् परियान्तमार्जि स्वस्ति दुर्गा अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिर्मानो यदेपि ॥ अथर्ववेद 19/02/05

[18] जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्रं भैषजं तेन नो मृड जीवसे । अथर्ववेद 06/57/02

जल के अन्दर दोषों को विनष्ट करने की नाशन शक्ति विद्यमान है। उस नाशन शक्ति के द्वारा दोषो को हरण करने की प्रार्थना की गयी है।[19]

प्राकृतिक जल, पदार्थों व ऋतुओं से चिकित्सा

प्रकृति में स्थित पदार्थों में वायु शुद्ध होकर हमे प्राप्त हो जल औषधीय गुणों युक्त हमे प्राप्त होता है। अमृत रूप में वर्षा हो। सूर्य का ताप हमारे शरीर के लिए शक्तिदायक हो। ऐसी प्रार्थना ईश्वर से की गयी है कि प्राकृतिक सभी पदार्थ हमारे हित में उपयोगी होवें।[20]

जलदाता मेघों ने औषधि रूप विज्ञान दिया, सूर्य भी देता है। अन्तरिक्ष ने भी दिया है। पृथ्वी भी देती है। सविता के द्वारा भी प्रदत्त है। इन सभी औषधि विज्ञान को प्राप्त कर प्राकृतिक नियमों की चिकित्सा का पालन करके सुख प्राप्त करना चाहिए।[21]

छः ऋतुओं में स्वस्थ रहने के वर्णन में 6 ऋतुओं का नाम प्राप्त होता है। ग्रीष्म (ज्येष्ठ, आषाढ़), हेमन्त (अग्रहायण, पौष), शिशिर (माघ, फाल्गुन), बसन्त (चैत्र, वैशाख), शरद (अश्विन, कार्तिक), और वर्षा (श्रवण, भाद्रमास) में आयुर्वेदीय नियमानुसार उचित आहार-विहार करके रोग रहित सुखी रहे।[22]

प्राकृतिक नियमों में छः ऋतुएँ होती है। इन सभी ऋतुओं के मास में भिन्नता होती है। सभी मास में सूर्य से पड़ने वाली सूर्य का ताप भिन्न-2 होता है। सूर्य से सात वर्ण वाली किरणें शुक्ल, नील, पित, रक्त, हरित, कपिश और चित्र होती है। सूर्य के इन किरणों के सिधे तिरछे पृथ्वी पर पड़ने से ऋतुओं का प्रभाव बदलता है। यह किरणें मस्तक के सात छिद्रों दो कान, हो नाक, दो आंख और मुख पर पड़ती है। उससे सात संस्कार दो प्रकार के सुनने, गन्ध दर्शन और एक कथन शक्ति उत्पन्न कर शरीर का पालन-पोषण करते हैं।

प्रकृति के द्वारा जीव को आठ दिशाओं, छः ऋतुओं, सप्त इन्द्रियों उनकी सात शक्तियों को औषधि स्वरूप प्रदान करके पंच महाभूत से सींच कर पूर्ण किया है। इसका समुचित औषधीय प्रयोग निरोगता प्रदान करता है।[23]

सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, सोम, द्यौ इत्यादि प्राकृति पदार्थ औषधीय गुण द्वारा जीवधारी को मृत्यु से अलग कर उसका सम्यक् पालन पोषण करने वाली होती है।[24]

◀◀ ▶▶

---

[19] आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रर्ति हरत । अथर्ववेद 02/23/02

[20] तुभ्यं वातपवतां मातरिश्वा त :ुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यार्थः ।
सूर्यस्ते तन्वे३श् शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा म मेंष्ठाः । अथर्ववेद 08/01/05

[21] देवा अदु सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूर्षणम् ॥ अथर्ववेद 06/100/01

[22] ग्रीष्मो हॅमन्तः शिर्शिरो वसन्तः शरद् वर्षाः खिते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजार्यो निवात इद् वः शरणे स्याम । अथर्ववेद 06/55/02

[23] अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्या३ नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे । अथर्ववेद 08/09/23

[24] उत् त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत्प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥ अथर्ववेद 08/01/17

एकांकी नाटक : चिन्तन एवं आगमन

डॉ. कृष्ण मोहन ठाकुर*

भारतीय नाट्य–चिन्तनक देखार रूप भरतमुनिक नाट्यशास्त्रा मे उपलब्ध होइत अछि। ई प्रायः दुनियाँक प्राचीनतम अथवा आदिकालीन नाट्य–चिन्तन अछि। भरतमुनि नाटकक परिभाषा दैत कहैत छथि जे जाहि मे कथावस्तुक विषय प्रख्यात इतिवृत्त हो, जकर नायक प्रसिद्ध आ उदात्त हो, जाहि मे राजवंश मे प्रसूत पात्रक वर्णन हो, जाहि मे दिव्य आश्रय विद्यमान हो, जाहि मे ऐश्वर्यगत सम्पन्नता हो, जे समृद्धि आ विलासादि गुण सँ युक्त हो, जाहि मे उचित संख्या मे अंक आ उपयुक्त प्रवेशक विद्यमान हो अथवा संयोजित कयल गेल हो तँ तकरा नाटक बुझल जयबाक चाही।[1] एतहि एकटा आओर परिभाषा दैत कहैत छथि जे जाहि मे प्रख्यात भूपालक चरित्र हो, रस अथवा अनेक भाव सँ जकर कार्य सभक अभिनय कयल जाइत हो, आ जाहि मे हिनक सुख आ दुःख सँ कार्यक उत्पत्ति होइत हो, सेहो नाटक अछि।[2] मुदा एतय ईहो ध्यातव्य अछि जे भरतमुनि 'रूपक' केँ दस प्रकार कहलनि आ ताहि प्रकार मे प्रथम प्रकार 'नाटक' केँ कहलनि। दशरूपककार धनंजय नाट्यक लक्षणक वर्णन करैत कहैत छथि जे अवस्था सभक अनुकरणे 'नाट्य' अछि, दृश्य होयबाक कारणेँ एकरा 'रूप' सेहो कहल जाइत अछि, आरोप होयबाक कारणेँ ई 'रूपक' कहल जाइत अछि। रस पर आश्रित होबय बला ई (रूपक) दश प्रकारक होइत अछि।[3] एतय ईहो ध्यान देबा जोग अछि जे भरतमुनिक वर्गीकरण मे जतय 'रूपक' प्रमुख आ 'नाटक' गौण स्थान पर अछि ततहि धनंजयक वर्गीकरण मे 'नाट्य' प्रधान आ 'रूपक' गौण स्थान पर अछि। 'साहित्यदर्पणः'क प्रणेता विश्वनाथ सेहो भरतमुनि जकाँ रूपकक एकटा प्रभेद 'नाटक' केँ मानने छथि।[4]

भरतमुनि अपन नाट्यशास्त्र मे 'रूपक'क दस प्रभेद कहने छथि– नाटक, प्रकरण, अंक (अथवा उत्सृष्टांक) व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम आ ईहामृग।[5] भरतमुनिक वर्गीकरण मे 'उपरूपक' नहि आयल अछि। 'दशरूपकम्'क रचयिता धनंजय सेहो भरतमुनिएक वर्गीकरण केँ स्वीकार कयने छथि। मुदा 'साहित्यदर्पणः' केर प्रणेता विश्वनाथ 'रूपक'क दस भेदक संगहि 'उपरूपक'क अठारहटा भेदक वर्णन कयने छथि। ई उपरूपक–भेद अछि– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीशक आ मणिका।[6] एहि रूपक–उपरूपक सभक स्वरूप पर विचार कयला सँ ई तँ निश्चये स्पष्ट भ' जाइत अछि जे ई वर्गीकरण काल्पनिक नहि अपितु वास्तविक अछि। रूपक 'नाट्य' अछि आ उपरूपक बहुलांशया 'नृत्य'। नाट्य रसाश्रय होइत अछि मुदा नृत्य भावाश्रय। रूपक 'वाक्यार्थाभिनयात्मक' होइत अछि आ नृत्य 'पदार्थाभिनयात्मक'। नाट्य–चिन्तन मे उपरूपक–विमर्शक प्रथम उद्धरण नाट्याचार्य कोहल लग उपलब्ध होइत अछि[7] जाहि सँ विश्वनाथ सेहो प्रभावित छथि।

आधुनिक भारतीय नाट्य–चिन्तन मे आइ ई तथ्य स्वीकृत भ' गेल अछि जे नाटकक दू प्रकार अछि– रूपक आ उपरूपक। रूपकक दस प्रभेद अछि आ उपरूपकक अठारह प्रभेद अछि। एतावता भारतीय नाट्य–चिन्तन मे कुल अट्ठाइसटा नाट्यरूप उपलब्ध अछि। जखन हमरा लोकनि नाटकक एकांकी रूप पर विमर्श करैत छी तँ सर्वप्रथम हमरा सोझाँ एकटा एहन नाटकक स्वरूप उपस्थित होइत अछि जे एकहि अंकक हो। एहि एकांकी नाट्यरूप लेल आधुनिक रंगमंच मे 'One Act Play' शीर्षक सेहो देल गेल अछि। एहि स्थल पर जिज्ञासा उत्पन्न होयब स्वाभाविक अछि जे भारतीय नाट्य–चिन्तन मे एक अंकबला नाट्यरूप सभ अछि कि नहि? एहि एक अंकबला नाटक सभ पर भरतमुनि, धनंजय, विश्वनाथ प्रभृति नाट्याचार्य लोकनि विस्तारपूर्वक विचार कयने छथि। 'रूपक'क दस प्रभेद मे सँ पाँचटा प्रभेद– भाण व्यायोग, वीथी, अंक आ प्रहसन एक अंकक नाट्यरूप अछि। तहिना उपरूपकक अठारहटा प्रभेद मे सँ दसटा प्रभेद– गोष्ठी, नाट्यरासक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, श्रीगठित, विलासिका, हल्लीश आ भाणिका एक अंकक नाट्यरूप अछि। एवम् प्रकारेँ ई देखैत छी जे भारतीय नाट्यरूप मे कुल पंद्रहटा रूप एकांक रूप अछि। ई जतबा प्रभेद अछि तकरा सभक प्रचुर उदाहरण संस्कृत–साहित्य मे उपलब्ध छल। भास (300–200 ई.पू.)क एकांक

* वरीय सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, शैक्षणिक परिसर, बी.एन.एम.यू, मधेपुरा, बिहार, पिन–852128
मो– 9334924753

नाट्य–रचना उपलब्ध अछि। भास पाँचटा एकांक रूपकक रचना कयल।[8] भरतमुनि आ विश्वनाथ तँ दृश्यकाव्यक उद्भव 'अमृतमन्थन' (समवकार) आ 'त्रिपुरदाह' (डिम) सँ मानैत छथि। एहि समस्त उद्धरण सँ ई तँ स्पष्ट होइते अछि जे भारतीय नाट्य–चिन्तक लोकनि 'एकांक रूपक' कें स्वतंत्र सत्ताक रूप मे स्वीकार क' लेने छलाह। एमहर आबि क', विशेष क' आधुनिककाल मे भारतीय नाट्य–चिन्तन– परम्परा कें आधुनिक आलोचक लोकनि अनठाबय लगलाह। ओ लोकनि एहि अत्यन्त प्राचीन नाट्य–चिन्तनक समृद्ध परम्परा कें उपेक्षित सेहो करय लगलाह। परिणाम ई भेल अछि जे हमरा लोकनि आधुनिक नाटक पर विचार करैतकाल अपन जड़ि अन्यत्र ताकय लगैत छी। तकर प्रतिफल बेसी ठाम यएह होइत अछि जे प्रकारान्तर सँ हमरा लोकनि स्वयम् कें जड़िविहीन बुझय–बुझाबय लगैत छी।

मुदा आधुनिक रंगमंच मे जे एकांकीक अवधारणा आ तकर प्रचलित–रूप अछि तकरा भासक एकांक रूपक–रचनाक उत्तराधिकारी अथवा विकसित रूप नहि कहल जा सकैत अछि। एवंक्रमे ई स्वीकार करबा मे हर्ज नहि अछि जे आधुनिक एकांकी पाश्चात्य अथवा भारतेतर नाट्य–चिन्तनक देन अछि। एहि एकांकीक (One Act Play)क अपन इतिहास अछि आ अपन विकास अछि। 15–16म शताब्दी धरि पश्चिम मे 'Miracles And Moralities' क धुमसाही मचल छल। एहि नाटक सभ मे अपन परम्परा कें बलात् स्थापित आ नीक रंग–टीपक संग प्रदर्शित कयल जाइत छल। मिरेकल (Miracle) बला नाटक सभ मे अनावश्यक आ अनपेक्षित रूप सँ कौतुक उत्पन्न कयल जाइत छल। एहि बहन्ने अपन परम्परा, संस्कृति, सभ्यता आदिक अंध परिक्रमा आ गुणगान कयल जाइत छल। ई गुणगानयुक्त प्रदर्शन अपन अतीतक प्रति ततेक ने दुराग्रही होइत छल जे कालक्रमेण ई अविश्वसनीय आ अपच्य सेहो होबय लागल। तहिना मोरेलिटी (Morality) बला नाटक ततेक ने हितोपदेश बाँटय लागल छलैक जे एकर समाज एहि हितोपदेशीय घोंट पीबय सँ कतराय लागल छल। एहि दुनू प्रकारक नाटक मे बेसी स्थान भौतिक उपदेश, धर्म–प्रचार, संत चरित आदि पारम्परिक विषय सभ छेकने रहैत छल। जेना अंकिया नाट मूलरूप सँ अपन विषय–वस्तुक रूप मे धार्मिक किंवा आध्यात्मिक आख्यान कें उपजीव्य बनबैत रहल। ई 'मिरेकल्स' आ 'मोरेलिटिज'बला नाटक सभ एतेक एकरसाह भ' गेल छल जे दर्शक सभ अकछि जाइत छल। तत्कालीन थियेटर कें दर्शकक एहि अकछानक आर्थिक हानि होबय लागल छलैक। एहि हानि कें सम्हारबाक लेल 'Interludes' क उपाय कयल गेल। एहि मे दू–तीनटा पात्र होइत छल आ एकर मुख्य उद्देश्य छलैक मनोरंजन करब, व्यंग्य–विनोद करब।[9] एहि 'Interludes' क आन जे परिणाम भेल हो, मुदा एतबा तँ अवश्य भेल जे ओहि 'मिरेकल्स' आ 'मोरेलिटीज'क धुमसाही मे, बरू Interludes रूप मे, मुदा लघु नाटकक अस्तित्व स्थापित होबय लागल। 19म शताब्दीक उत्तरार्द्ध सँ एहि लघु नाटकक प्रदर्शन बेस बढ़ि गेल छल। एही कालखण्ड मे लन्दन, पेरिस, बर्लिन, शिकागो प्रभृति शहर मे एहि प्रकारक नाटक बेस लोकप्रिय होबय लागल। एहि नाटक सभक दू प्रकारक मंचन देखल जाय लागल। पहिल प्रकारक मंचन तँ ई छल जे एकरा मूल नाटकक विधिवत् प्रारम्भ होयबा सँ पूर्व, एकटा 'क्षेपक प्रस्तुति' जकाँ प्रस्तुत कयल जाय लागल। एकर नाम 'Curtain-Raiser' (पट–उन्नायक) राखल गेलैक। दोसर प्रकार छल 'After-piece' (आफ्टर–पीस)। एहि आफ्टर–पीसक प्रदर्शन मूल नाटकक दू अंकक बीचक व्यवधान कें भरबाक लेल आ दर्शक लोकनिक अकछान कें तत्काल व्यवस्थाक संग सुरुचिपूर्ण बनयबाक लेल कयल गेल। मुख्य रूप सँ एहि 'आफ्टर–पीस'क समायोजन थियेटर मालिक लोकनिक आग्रह पर कयल गेल छल। एकर समायोजन मे दर्शकक रुचि सँ बेसी ध्यान थियेटरक मालिक लोकनि द्वारा अपन आर्थिक लाभ पर देल जाइत छल। बाद मे तँ एहि लघु नाटक केन्द्रित एकटा आन्दोलने चलल जकर नाम 'लिटिल थियेटर मुवमेन्ट' पड़ल। ताधरि 'Curtain Raiser' क रूप मे ई नाट्यरूप अपन एकांकीक स्वरूप ग्रहण क' चुकल छल। नाटकक एहि नवरूप, एकांकी नाटक, जकरा ओ लोकनि 'One Art Play' कहल करैत छलाह, तकर सभक प्रदर्शन प्रीतिभोज मे भोजन सँ पूर्व, कोनहु नाट्य प्रदर्शन सँ पूर्व स्थिति ओ स्थल पर होअय लागल। एहि नाट्यरूप कें आ एहि आन्दोलन कें इब्सनक क्रांति– 'स्थान, काल आ यथार्थ' सँ गुणात्मक आधारजन्य ठोस जमीन भेटलैक। बर्नाड शॉ, बेख्त, चेखब, गोर्की, सार्त्र, कामू लोकनिक स्पर्श सँ ई नाट्यरूप बेस शक्तिशाली भेल।[10] एहि प्रकारें हमरा लोकनि ई देखैत छी जे कालक्रमेण पाश्चात्य नाट्य–जगत मे Curtain-Raiser आ After-Piece रूप मे दूटा नव नाट्यरूप प्राप्त भेलैक जे संसार भरिक नाट्य–चिन्तन कें एकटा नव दिशा देलक, एकटा नव मोड़ देलक।

उपरोक्त जे दूटा नाट्यरूप अछि तकरा ओकर प्रकृति अथवा गुणावगुणक आधार पर भारतेतर रंगमंच 'Interludes' क कोटि मे रखैत अछि। एहि कोटि मे एहि दुनू नाट्यरूप कें रखबाक ओकर अपना

तरहक मापदंड अछि। मुदा मूल बात ई अछि जे दुनू नाट्यरूप अपेक्षाकृत छोट होइत अछि आ एकरा नाटकक प्रारम्भ अथवा मध्य मे राखल जाइत अछि। एकर एकटा आओरो विशेषता ई अछि जे ई अपन विषयगत रूप मे मूल नाटक कें अत्यल्प प्रभावित करैत अछि। बेसी 'इन्टरल्यूड्स' तँ अवान्तरे विषय ल' क' प्रस्तुत होइत रहल अछि। मुदा एकर विषयगत सभटा विषमताक स्थिति आ औचित्य जे हो, ई अपन रूप, गुण आ स्थितिक सन्दर्भ मे ओ सर्वथा इन्टरल्यूड्स होयबाक शर्त्तक अनुपालन करैत अछि। ठीक यैह स्थिति भारतीय नाट्यचिन्तन मे 'विषकम्भक' आ 'प्रवेशक'क अछि।

प्रवेशक–विषकम्भक विचार–

भरतमुनि अपन नाट्यशास्त्रक बीसम अध्याय मे 'प्रवेशक' आ 'विषकम्भक'क चर्च कयने छथि। प्रवेशकक गुण–धर्म पर विचार करैत ओ कहने छथि जे क्रोध, प्रसाद, शोक, शाप, भगदड़, विवाह आदि स्थिति कोनहु अंक मे रखबाक विषय नहि होइत अछि। युद्ध, राज्यभ्रंश, मरण, नगरक घेरा आदि कें 'प्रवेशक' द्वारा प्रस्तुत कयल जाय।[11] जखन एक दिन मे पूर्ण होबयबला अनेक घटना सभ हो आ तकर एक अंक मे समावेश सम्भव नहि हो तँ अंक कें पूर्ण क' देलाक उपरांत एहि सभ कें 'प्रवेशक'क माध्यम सँ कहबाक चाही।[12] प्रवेशक अर्थक संक्षिप्ति कें धारण कयने हो आ ओ आन अथवा पछिला अंकक कार्यक अनुसरण करयबला हो।[13] एतावता हम देखैत छी जे भरतमुनि प्रवेशकक मारिते रास लक्षण, रूप, औचित्य आदिक चर्च कयने छथि। एवंक्रमे 'प्रवेशक'क कार्य अथवा तकर कार्य–विस्तार करैत भरतमुनि कहने छथि जे प्रवेशक द्वारा अनेक मंचीय कार्य कयल जाइत अछि। जेना समयक समाप्तिक ज्ञान करायब, रसक परिवर्तनक बोध करायब, अंकक प्रारम्भ करब आदि। जाहि कार्य मे अनेक लोक सभक सहभागिता हो अथवा सन्धि मे विद्यमान हो, नमहर घटना चक्र हो तकरा संक्षेप करैत प्रवेशक द्वारा व्यक्त कयल जाइत अछि।[14]

'विषकम्भक' पर चर्च करैत एहि नाट्यशास्त्र मे कहल गेल अछि जे एकरा मध्यम पात्र द्वारा संक्षेप मे प्रवेशकक अर्थ कें प्रदर्शित कयल जाइत अछि। ई संस्कृत भाषा मे हो आ संस्कारयुक्त वचनावली हो। एकरा नाटक आ प्रकरणक दू अंकक बीच मे अथवा कोनहु अंकक प्रारम्भ मे राखल जाइत अछि जाहि मे मध्यम आ नीच पात्र होइत अछि।[15] 'दशरूपकम्'कार धनंजय पाँचटा अर्थोपक्षेपकक वर्णन क्रम मे 'विषकम्भक' आ 'प्रवेशक'क चर्च कयने छथि।[16] 'विषकम्भक'क परिभाषा दैत धनंजय कहने छथि जे वृत्त अर्थात् अतीतकालीन तथा आगाँ आबयबला कथाक भागक सूचना देबयबला, संक्षिप्त अर्थबला एवम् मध्यम श्रेणीक पात्र लोकनि द्वारा प्रयुक्त अर्थोपक्षेपक 'विषकम्भक' कहल जाइत अछि।[17] एकर विधान प्रथम अंक मे आमुखक बाद कयल जाइत अछि मुदा आवश्यकतानुसार कोनहु आन अंकक प्रारम्भ मे (अर्थात् बीच नाटक मे कतहु) सेहो एकर स्थापना कयल जा सकैत अछि। तहिना 'प्रवेशक'क परिभाषा दैत धनंजय कहैत छथि जे नीच पात्र द्वारा अनुदात्त उक्ति (अर्थात् संस्कृतक अतिरिक्त कोनहु अन्य भाषा मे उक्ति) सँ अंक सभक बीच मे स्थित तथा शेष अर्थक सूचक 'प्रवेशक' कहबैत अछि।[18]

एतावता जखन हम भारतीय नाट्यचिन्तनक तुलना भारतेतर जगतक नाट्य–चिन्तन सँ करैत छी तँ देखैत छी जे 'इन्टरल्यूड्स' आ एकर दुनू रूप 'Curtain Raiser' आ 'After Piece' वस्तुतः 'विषकम्भक' आ 'प्रवेशक' जकाँ लगैत अछि। नाटक शुरू होयबा सँ पूर्व (Curtain Raiser) आकि आगत दर्शकक तोषार्थ अथवा दू दृश्यक काल–व्यवधान कें भरबाक हेतु (After Piece) जे नाट्यरूपजन्य व्यवस्था कयल गेल तकर चिन्तनक आदिरूप अथवा बीजरूप भारतीय नाट्यचिन्तन मे उपस्थित अछि। अंतर मात्रा ई अछि जे 'Curtain Raiser' आ कि 'After Piece' जे काल–समंजन लेल उपयोग कयल जयबाक लेल प्रारम्भ भेल छल, तकर विकास रूप मे One Act Play' नामक एकटा स्वतंत्र आ सुदृढ़ नाट्यरूपक विकास भेल, मुदा भारतीय नाट्य–चिन्तन विषकम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार प्रभृति सिद्धान्त कें आधुनिक काल मे अपेक्षित रूप सँ विकास नहि भेल। मैथिली नाट्य साहित्य मे एकांकी नाटकक आगमन बेस अबेर क' क' भेल। कुमार गंगानन्द सिंह रचित एकांकी 'जीवन–संघर्ष' (1924 ई.) कें मैथिलीक पहिल एकांकी कहल जाइत अछि। संगहि प्रथम एकांकी–संग्रहक रूप मे 'एकांकी चयनिका' (तंत्रनाथ झा, 1940 ई.) कें रेखांकित कयल जाइत अछि।[19]

संदर्भ–सूची–

1. पृ.–06 श्लोक सं.–10–11, 20म अध्याय, नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), खंड–3, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2018 ई.

2. पृ.–07, श्लोक सं.–12, ओतहि
3. पृ.–09–13, श्लोक सं.–07, दशरूपकम् (धनंजय), प्रथमः प्रकाशः, मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण 2015 ई.
4. पृ.–361, श्लोक सं.–03, षष्ठः परिच्छेदः, साहित्यदर्पणः (विश्वनाथ), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2018 ई.
5. पृ.–03, श्लोक सं.–2–3, 20म अध्याय, नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), खंड–3, चौ. सं. संस्थान वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2018 ई.
6. पृ.–361 श्लोक सं.–4–6, षष्ठः परिच्छेदः, साहित्यदर्पणः (विश्वनाथ), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2018 ई.
7. पृ.–362, ओतहि
8. पृ.–472, संस्कृत साहित्यका इतिहास (उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'), चौखम्भा भारती एकेडमी, वाराणसी, 1999 ई.
9. पृ.–14, मैथिली एकांकी संग्रह (सं.– महेन्द्र मलंगिया), साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, 2003 ई.
10. पृ.–15, ओतहि
11. पृ.–9–10, श्लोक सं.–20–21, 20म अध्याय, नाट्यशास्त्र (भरतमुनि) खंड–3, चौ. सं. सं. वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2018 ई.
12. पृ.–12, श्लोक सं.–28, ओतहि
13. पृ.–13, श्लोक सं.–32, ओतहि
14. पृ.–13–14, श्लोक सं.–34–37, ओतहि
15. पृ.–14, श्लोक–37–39, ओतहि
16. पृ.–116, श्लोक–58, प्रथमः प्रकाशः, दशरूपकम् (धनंजय), मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण 2015 ई.
17. पृ.–116, श्लोक–59, ओतहि
18. पृ.–118, श्लोक–60, ओतहि
19. पृ.–16, मैथिली एकांकी संग्रह (सं.– महेन्द्र मलंगिया), साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, 2003 ई.

बुजुर्गों के प्रति युवाओं की सोच एवं पीढ़ियों के बीच संबंधों का अध्ययनः वाराणसी जनपद के सन्दर्भ में

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह*

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय समाज में पारिवारिक संबंधों का विशेष महत्व रहा है। विशेषकर बुजुर्गों को परिवार के स्तंभ के रूप में देखा जाता रहा है–जिन्होंने न केवल पारिवारिक मूल्यों की नींव रखी, बल्कि संस्कार, परंपराएं और सांस्कृतिक विरासत भी अगली पीढ़ियों को सौंपने का कार्य किया। किंतु वर्तमान समय में सामाजिक, आर्थिक, और तकनीकी परिवर्तनों के चलते पारिवारिक संरचना एवं पीढ़ियों के मध्य संबंधों में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिल रहे हैं।

आधुनिकता, नगरीकरण, व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा, और डिजिटल संस्कृति ने युवा पीढ़ी की जीवनशैली, सोच, और संबंधों की प्रकृति को प्रभावित किया है। युवाओं की प्राथमिकताएं जैसे शिक्षा, कैरियर, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और तकनीक की ओर झुकाव ने पारिवारिक सहभागिता को सीमित कर दिया है। वहीं दूसरी ओर, बुजुर्गों की भूमिका जो कभी निर्णय निर्माता और मार्गदर्शक की हुआ करती थी, अब अपेक्षाकृत सीमित होती जा रही है।

इन परिवर्तनों के बीच यह जानना आवश्यक है कि आज की युवा पीढ़ी बुजुर्गों के प्रति क्या दृष्टिकोण रखती है। क्या उनके मन में अभी भी सम्मान, स्नेह और उत्तरदायित्व की भावना शेष है? या क्या यह संबंध औपचारिक और सीमित होते जा रहे हैं? क्या पीढ़ियों के बीच संवाद की कमी और मूल्य संघर्ष संबंधों को प्रभावित कर रहा है?

यह अध्ययन विशेष रूप से **वाराणसी जनपद** के सन्दर्भ में किया गया है, जो एक ओर धार्मिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है, तो दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा और शहरीकरण का प्रभाव भी यहाँ तेज़ी से बढ़ा है। ऐसे में वाराणसी के युवाओं की सोच और बुजुर्गों के साथ उनके संबंधों का अध्ययन न केवल सामाजिक यथार्थ को उजागर करेगा, बल्कि संभावित समाधान एवं नीतिगत दिशा भी प्रस्तुत कर सकता है।

यह शोध पीढ़ियों के बीच सामंजस्य, संवाद एवं भावनात्मक जुड़ाव की आवश्यकता को रेखांकित करने का प्रयास है, जिससे पारिवारिक एकता और सामाजिक संतुलन को बनाए रखा जा सके।

भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध देश में, परिवार केवल जैविक संबंधों का समूह नहीं होता, बल्कि यह एक ऐसी संस्था है जहाँ पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं, सीखती हैं और सामाजिक मूल्यों को आत्मसात करती हैं। परंपरागत भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली के अंतर्गत बुजुर्गों को विशेष आदर एवं निर्णयात्मक भूमिका प्राप्त होती थी। वे न केवल ज्ञान और अनुभव के भंडार माने जाते थे, बल्कि परिवार में नैतिक अनुशासन बनाए रखने वाले प्रमुख व्यक्ति भी होते थे।

लेकिन 21वीं सदी में सामाजिक संरचना में तीव्र परिवर्तन हुआ है। तकनीकी विकास, शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति, महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, रोजगार के नए अवसर, और वैश्वीकरण ने युवाओं की सोच, व्यवहार और प्राथमिकताओं को बदल दिया है। अब जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में त्वरित निर्णय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बोलबाला है, जिससे सामूहिकता और आपसी निर्भरता जैसे पारंपरिक मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं।

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

इसके परिणामस्वरूप, बुजुर्गों की पारिवारिक भूमिका में कमी आई है, और अनेक बार वे उपेक्षा, अकेलेपन और सामाजिक अलगाव के शिकार हो जाते हैं। वहीं युवा वर्ग में आत्मकेंद्रितता, पीढ़ियों के प्रति असहिष्णुता और संवादहीनता जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं।

यद्यपि भारतीय संस्कृति में बुजुर्गों के प्रति श्रद्धा और कर्तव्यबोध का स्थान अत्यंत ऊँचा रहा है, फिर भी आज यह जानना आवश्यक हो गया है कि वर्तमान में युवा पीढ़ी बुजुर्गों के प्रति क्या दृष्टिकोण रखती है– क्या यह भावनात्मक, सामाजिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण सकारात्मक है या उसमें गिरावट आई है?

वाराणसी जिला, जो कि एक ओर गंगा-जमुनी तहज़ीब, धार्मिकता और सांस्कृतिक परंपराओं का पोषक रहा है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, पर्यटन और रोजगार के क्षेत्र में विकसित होता हुआ शहरी क्षेत्र भी है–यह अध्ययन के लिए एक उपयुक्त सामाजिक प्रयोगशाला प्रदान करता है। यहाँ के युवाओं में परंपरा और आधुनिकता का अनूठा संगम देखने को मिलता है, जिससे यह अध्ययन और भी अधिक रोचक और समाजोपयोगी बन जाता है।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य युवाओं की मानसिकता, दृष्टिकोण और व्यवहार को समझना है, जिससे यह आकलन किया जा सके कि क्या आज भी हमारे सामाजिक ताने-बाने में बुजुर्गों को वही सम्मान और स्थान प्राप्त है, या यह केवल औपचारिकता तक सीमित रह गया है। साथ ही यह शोध पीढ़ियों के मध्य संवाद, सहअस्तित्व एवं आपसी समझ को बेहतर बनाने के उपाय भी सुझाएगा।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि (Theoretical Background)

सामाजिक शोधों में सैद्धांतिक पृष्ठभूमि किसी भी विषय को समझने और व्याख्यायित करने का आधार प्रदान करती है। "बुजुर्गों के प्रति युवाओं की सोच" और "पीढ़ियों के बीच संबंधों" को समझने के लिए समाजशास्त्र और मानवविज्ञान के कुछ प्रमुख सिद्धांत उपयोगी सिद्ध होते हैं। यह अध्ययन विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों के माध्यम से यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन, पीढ़ियों के बीच संवाद, और पारिवारिक भूमिका के बदलाव युवा सोच को प्रभावित करते हैं।

1. संरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धांत (Structural Functional Theory – Talcott Parsons)

के अनुसार, समाज एक जटिल प्रणाली है जो विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से कार्य करता है, और प्रत्येक संस्था (जैसे–परिवार) का अपना एक कार्य होता है। पारिवारिक प्रणाली में बुजुर्गों की भूमिका सामाजिक नियंत्रण, ज्ञान हस्तांतरण और संस्कृति के वाहक के रूप में होती है।जब इन कार्यों में व्यवधान आता है–जैसे कि युवाओं द्वारा बुजुर्गों की उपेक्षा–तो सामाजिक संतुलन प्रभावित होता है। यह सिद्धांत हमें यह समझने में मदद करता है कि बुजुर्गों और युवाओं के बीच संबंधों में बदलाव सामाजिक संरचना में किस प्रकार असंतुलन उत्पन्न करता है।

2. प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद (Symbolic Interactionism – George H. Mead, Herbert Blumer)

यह सिद्धांत बताता है कि व्यक्ति अपने सामाजिक अनुभवों के आधार पर प्रतीकों और अर्थों के माध्यम से संबंधों को समझता और परिभाषित करता है। युवा जिस प्रकार बुजुर्गों से संवाद करते हैं, उन्हें संबोधित करते हैं, और उन्हें "उपयोगी" या "अप्रासंगिक" मानते हैं–वह सब सामाजिक प्रतीकों पर आधारित होता है।यदि समाज में बुजुर्गों को कमजोर, बोझिल या रूढ़िवादी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो युवा भी ऐसे ही दृष्टिकोण को अपनाते हैं। इस दृष्टिकोण से यह अध्ययन युवाओं की सोच के निर्माण में समाज और मीडिया की भूमिका को उजागर करता है।

3. विकासात्मक सिद्धांत (Developmental Theory – Erik Erikson)

Erikson का *Psychosocial Development Theory* बताता है कि जीवन के प्रत्येक चरण में व्यक्ति विभिन्न मनोवैज्ञानिक संघर्षों से गुजरता है।

- बुजुर्ग अवस्था में व्यक्ति "Integrity vs. Despair" के द्वंद्व में होता है।

- युवा अवस्था में "Identity vs. Role Confusion" की स्थिति होती है।

जब दोनों पीढ़ियाँ अपने-अपने संघर्ष में उलझी होती हैं, तो आपसी समझ और संवाद में कमी आती है। यह सिद्धांत पीढ़ियों के बीच टकराव और सहयोग की मानसिक पृष्ठभूमि समझने में मदद करता है।

4. आधुनिकीकरण सिद्धांत (Modernization Theory)

यह सिद्धांत मानता है कि जैसे-जैसे समाज आधुनिकता की ओर बढ़ता है–उद्योगीकरण, नगरीकरण और शिक्षा का प्रसार होता है–पारंपरिक सामाजिक संरचनाएं कमजोर होती जाती हैं। संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार, बुजुर्गों की जगह बालकों और युवाओं को अधिक प्राथमिकता मिलना, यही आधुनिकता का प्रभाव है।इस सिद्धांत के अनुसार, युवाओं की सोच में परिवर्तन सामाजिक-आर्थिक विकास और आधुनिक जीवनशैली के अनुकूल ढलने का परिणाम है।

5. सांस्कृतिक लैग सिद्धांत (Cultural Lag Theory – William Ogburn)

Ogburn के अनुसार समाज में भौतिक संस्कृति (जैसे - तकनीक, जीवनशैली) तेजी से बदलती है, जबकि गैर-भौतिक संस्कृति (मूल्य, परंपराएं, सोच) धीरे-धीरे बदलती है। इस अंतर को "सांस्कृतिक लैग" कहा जाता है। युवा वर्ग तकनीक और आधुनिक सोच को तेजी से अपनाता है, जबकि बुजुर्गों की सोच पारंपरिक मूल्यों से जुड़ी रहती है। यही पीढ़ियों के बीच टकराव का मुख्य कारण बनता है। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि बुजुर्गों और युवाओं के बीच सोच का अंतर समय की गति को समझने में किस तरह बाधक बनता है।

समीक्षा साहित्य (Review of Literature)

समीक्षा साहित्य किसी शोध अध्ययन की नींव तैयार करता है और यह स्पष्ट करता है कि संबंधित विषय पर अब तक क्या अध्ययन हो चुका है, क्या निष्कर्ष निकाले गए हैं, और वर्तमान शोध किस नयी दिशा में योगदान देगा। प्रस्तुत शोध में युवाओं की सोच, पीढ़ियों के मध्य संबंधों एवं सामाजिक संरचना में बुजुर्गों की भूमिका से संबंधित विभिन्न राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शोधों की समीक्षा की गई है।

World Health Organization (WHO), 2002"Active Ageing: A Policy Framework"

WHO की रिपोर्ट बताती है कि वृद्धजनों के प्रति सामाजिक व्यवहार केवल संस्कृति पर नहीं, बल्कि नीतियों और सामाजिक संरचनाओं पर भी निर्भर करता है। यह स्पष्ट करता है कि बुजुर्गों की भूमिका समाज में फिर से परिभाषित की जानी चाहिए।

Dandekar, K. (1996)"The Elderly in India"

भारत में बुजुर्गों की सामाजिक स्थिति पर आधारित इस अध्ययन में यह दर्शाया गया कि पारंपरिक संयुक्त परिवारों के टूटने से वृद्धजन अकेलेपन, उपेक्षा और आर्थिक असुरक्षा का सामना कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति के मूल में नई पीढ़ी की सोच एवं जीवनशैली में आया परिवर्तन है।

Sharma, A. (2020)"Digital Age and Intergenerational Bonding in Urban Families"

यह शोध बताता है कि तकनीक एक ओर जहाँ पीढ़ियों के बीच दूरी बढ़ा रही है, वहीं यदि उसका सही उपयोग हो तो बुजुर्गों और युवाओं के बीच संवाद का नया माध्यम भी बन सकती है। डिजिटल साक्षरता को बढ़ाकर संवाद को पुनः मजबूत किया जा सकता है।

Jha, A. & Singh, M. (2019)"Generational Gap in Indian Families: A Case Study of Uttar Pradesh"

उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों (वाराणसी सहित) पर आधारित इस अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश युवा यह मानते हैं कि बुजुर्ग "बहुत अधिक हस्तक्षेप करते हैं" या "समय के साथ नहीं चलते", जिससे टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है। वहीं बुजुर्गों का मत है कि युवा "अत्यधिक आत्मकेंद्रित" हो गए हैं।

Bhatia, H. & Verma, R. (2022)"Intergenerational Communication and Emotional Bonding in Urban Households"

शहरी युवाओं और बुजुर्गों के बीच भावनात्मक जुड़ाव पर आधारित इस अध्ययन में यह बताया गया कि जिन परिवारों में संवाद और सहभागिता अधिक है, वहाँ संबंधों में स्थायित्व बना रहता है। संवाद की गुणवत्ता और समय ही संबंधों की मजबूती का आधार है।

Rao, A. (2021)"Influence of Social Media on Family Relations"

यह अध्ययन दर्शाता है कि सोशल मीडिया ने एक ओर युवाओं को वैश्विक समाज से जोड़ा है, पर दूसरी ओर उसने पारिवारिक संवाद को कमजोर किया है। युवा अब परिवार के बजाय डिजिटल समाज से अधिक जुड़े हैं, जिससे बुजुर्गों के प्रति जुड़ाव कम हो गया है

सारांश (Summary of Impact):

युवाओं की बदलती सोच ने बुजुर्गों की पारंपरिक भूमिका, सामाजिक स्थिति और भावनात्मक स्थायित्व को प्रभावित किया है। यह प्रभाव केवल बुजुर्गों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका असर **पारिवारिक संतुलन, सामाजिक मूल्य प्रणाली और पीढ़ियों के बीच संवाद** पर भी गहराई से पड़ता है।

यदि इस दूरी को समझदारी, संवाद और सहभागिता के माध्यम से कम न किया गया, तो **भविष्य में सामाजिक विघटन और पीढ़ियों के बीच गहरा विभाजन** देखने को मिल सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय समाज में पारिवारिक संबंधों और पीढ़ियों के बीच की एकता को हमेशा से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। बुजुर्गों को परिवार की नींव, अनुभव और मूल्यों के वाहक के रूप में देखा जाता रहा है। परंतु 21वीं सदी की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ - विशेषकर शहरीकरण, आधुनिक शिक्षा, तकनीकी विकास, तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती प्रवृत्ति - इन संबंधों को धीरे-धीरे बदल रही हैं। इस शोध से यह स्पष्ट हुआ कि वाराणसी जनपद में भी युवाओं की सोच में परिवर्तन हो रहा है। यद्यपि पारंपरिक संस्कार और मूल्यों की जड़ें अब भी जीवित हैं, फिर भी आज की पीढ़ी बुजुर्गों को पूर्व की भांति जीवन का केंद्र नहीं मानती। उनके दृष्टिकोण में कहीं सम्मान तो है, लेकिन वह व्यवहार और सहभागिता में हमेशा स्पष्ट नहीं होता।शहरी क्षेत्रों में यह परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक तीव्र है, जहाँ युवाओं की जीवनशैली तेजी से आधुनिक हो रही है। वे अपने कैरियर, स्वतंत्रता और निजी प्राथमिकताओं को अधिक महत्व देने लगे हैं। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी बुजुर्गों के प्रति अधिक आत्मीयता, सहभागिता और पारिवारिक जुड़ाव देखा गया।इस अध्ययन से यह भी पता चलता है कि संवाद की कमी, पीढ़ियों के अनुभवों और दृष्टिकोणों का टकराव, तथा तकनीकी दूरी, संबंधों को और अधिक जटिल बना रही है। साथ ही, बुजुर्गों की सामाजिक भूमिका सीमित हो जाने के कारण उनमें अकेलापन, असुरक्षा और निरर्थकता की भावना बढ़ रही है।परंतु यह भी स्पष्ट है कि यह परिवर्तन पूरी तरह नकारात्मक नहीं है। अनेक युवा आज भी बुजुर्गों को अपने मार्गदर्शक मानते हैं–यदि उनके साथ संवाद, विश्वास और समय का आदान-प्रदान हो। यह संकेत देता है कि पीढ़ियों के बीच संबंधों को पुनः सशक्त बनाने की संभावना आज भी मौजूद है।

संदर्भ सूची (References in APA Style)

1. Awasthi, S. (2019). *Intergenerational Relationships in Indian Urban Families*. New Delhi: Sage Publications.
2. Bhattacharya, S. (2015). Changing family values and the elderly in India. *Journal of Social Change and Development*, 12(1), 33–45.
3. Chopra, R. (2018). *Youth and the Family: Identity, Conflict and Modernity in India*. New Delhi: Orient BlackSwan.

4. Government of India. (2021). *Report on the Status of Elderly in India 2021*. Ministry of Social Justice and Empowerment. https://socialjustice.gov.in
5. HelpAge India. (2023). *Elder Abuse in India – A National Study*. New Delhi. https://www.helpageindia.org
6. Kaur, R. (2016). Bridging the Generation Gap: A Sociological Perspective. *Indian Journal of Social Work*, 77(2), 145–160.
7. Mishra, A. (2017). *Family Structure and Value Transformation among Youth in India*. Varanasi: Ganga Prakashan.
8. National Sample Survey Office (NSSO). (2020). *Elderly in India: Profile and Projections*. Ministry of Statistics and Programme Implementation. http://mospi.gov.in

समकालीन परिप्रेक्ष्य में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के 'सामाजिक–न्याय' पर विचार

डॉ. पवन पाठक*

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है। हमारे लोकतांत्रिक समाज में इसका अर्थ और भी व्यापक हो जाता है क्योंकि स्वतंत्रता, समानता और अधिकार लोकतंत्र के प्रमुख तत्व है। 21वीं शताब्दी में कानूनी न्याय का स्थान सामाजिक न्याय ने ले लिया। वर्तमान समय में सामाजिक न्याय लोक–कल्याणकारी राज्य और न्यायपालिका दोनों की आधारशिला है। सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन में व्यक्ति और समाज के जिन आदर्श एवं मूल्यों का विवेचन किया जाता है उनमें सामाजिक न्याय महत्वपूर्ण है क्योंकि अन्य सभी मूल्व व आदर्श एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में दिखाई देता है। सामाजिक नयाय की समसामयिक समस्याओं पर समाधान खोजने पर किसी न किसी रूप में डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर के चिन्तन पर केन्द्रित हो जाती है किन्तु अम्बेडकर को छोड़कर आगे बढ़ना असंभव सा प्रतीत होता है। डॉ0 अम्बेडकर कहते हैं कि देश का उत्थान तब तक सम्भव नहीं होगा, जब तक हसारे देशवासी एकता के सूत्र में नहीं बन्ध जाते। डॉ0 अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन भारतीय समाज में सुधार के लिए समर्पित था। अस्पृश्यों तथा दलितों के मसीहा कहे जाने के साथ–साथ 'मानव मूल्यों' को भी स्थापित किये। अर्थात ऐसे अनेक सुस्पष्ट मार्ग दिये, जिससे सभी मानव सम्मानपूर्वक जीवन का निर्वाह कर सके। उन्हें अपने विरूद्ध होने वाले अत्याचार, शोषण, अन्याय तथा अपमान से संघर्ष करने की शक्ति ही उनके अनुसार सामाजिक प्रताड़ना राज्य द्वारा दिए जाने वाले दण्ड से भी कहीं अधिक दुःखदाई हैं। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किये और यह बतायें कि भारतीय समाज में कालान्तर में आई विकृतियों के कारण उत्पन्न हुई है न कि यह यहाँ के समाज में प्रारम्भ से विद्यमान थी। पं0 नेहरू जी के शब्दों में अम्बेडकर हिन्दू समाज की दमनकारी प्रवृत्तियों के विरूद्ध किये गये विरोध के प्रतीक थे जो आधुनिक भारत के प्रमुख विधिवेता, समाज सुधारक थे।

वर्ण–व्यवस्था का निषेध–

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का आधार चर्तुवर्ण व्यवस्था है। इस आधार पर समाज को कार्य के आधार पर चार भागों में विभाजित कर रखा था–पुजारी, शासक, व्यापारी और शूद्र। पाश्चात्य दर्शन में प्लेटो भी इसी प्रकारके समाज का विभाजन किया था। जबकि अम्बेडकर ने इस व्यवसथा को अवैज्ञानिक, अत्याचारपूर्ण, संकीर्ण, गरिमाहीन बताते हुये इसकी आलोचना की। उनके अनुसार यह श्रम के विभाजन पर आधारित न होकर श्रमिकों के विभाजन पर आधारित था। उन्होंने कहा कि चर्तुवर्ण व्यवस्था प्लेटो के सामाजिक व्यवस्था के बहुत निकट है। प्लेटो ने व्यक्तियों की कुछ विशिष्ट योग्यता के आधार पर समाज का विभाजन किया है। अम्बेडकर ऐसे सामाजिक विभाजन को सामाजिक न्याय के लिए अप्रासंगिक मानते हैं और कहते हैं कि ऐसी व्यवस्था अपमान से मारे हुए चिकने घड़े के समान हैं जिसमें जिसमें उन्नत तथा कमजोर वर्ग में संघर्ष ही संघर्ष व्याप्त है। दोनों वर्गों में जितना संघर्ष भारत में है वैसा विश्व के किसी अन्य देश में नहीं दिखाई देता।

जाति–प्रथा का निषेध–

डॉ0 अम्बेडकर कहते हैं कि जाति–व्यवस्था चर्तुवर्ण व्यवस्था का पदसोपानीय रूप में वर्गीकृत है। उन्होंने कोलांबिया विश्वविद्यालय में 'जाति की उत्पत्ति' पर एक शोधपत्र प्रस्तुत किया, जिसका सार यह था कि एक पुजारी वर्ग के रूप में ब्राह्मणों ने स्वयं को एक 'जाति' में संलग्न कर लिया और कालातर में दूसरे वर्गों को बाहर निकालने की प्रक्रिया के माध्यम से अन्य वर्ग जातियों में परिणत हो गए। उन्होंने इस बात का खण्डन किया कि जाति व्यवस्था के पीछे रंगभेद की भावना थी। इस व्यवस्था में अन्य वर्गों के व्यक्तियों की कार्यकुशलता की हानि हो जाती है, क्योंकि जातीय आधार पर व्यक्तियों के कार्यों का पूर्व में ही निर्धारण हो जाता है। यह निर्धारण भी उनके जन्म तथा वंशानुक्रम के सामाजिक स्तर के आधार पर होता है क्योंकि व्यक्ति इस व्यवस्था को अपनी स्वेच्छा से परिवर्तन नहीं कर सकता था यह व्यवस्था संकीर्ण प्रवृत्तियों को

* असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी पी.जी. कॉलेज (संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय), फाफामऊ, प्रयागराज। ई–मेलः 86pawanpathak86@gmail.com

जन्म देती है, जो हर व्यक्ति अपनी जाति के अस्तित्व के लिए अधिक जागरुक होता है। अन्य जातियों के सदस्यों से अपने सम्बन्ध दृढ़ करने की कोई भावना नहीं होती थी। यदि कोई इस व्यवस्था का उल्लंघन करता था तो उसको समाज में रहने का कोई अधिकार नहीं हाता था। उससे उसका सामाजिक अधिकार छीन लिया जाता था। न तो इसमे अन्तर्जातीय विवाह की व्यवस्था थी और न एक दूसरे के विवाह, समारोह में जाने की स्वतन्त्रता थी।

अम्बेडकर कहते हैं कि भारतीय समाज के लिए जाति–व्यवस्था एक बहुत बड़ी विकृति है जिसके कारण लोगों में एकता की भावना का अभाव है समाज कई भागों में विभक्त हो गया है। यह जाति–व्यवस्था न केवल हिन्दू समाज को दुष्प्रभावित किया बल्कि भारत के राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक जीवन में भी जहर घोल दिया है। वर्तमान समय में जाति–व्यवस्था का दुष्प्रभाव राजनीति में भली–भाँति देखा जा सकता है जो स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र व्यक्ति के चिन्तन को प्रभावित करता है। अम्बेडकर का मानना था कि जाति का निर्माण मनुष्यों ने किया है। अतः इसका उन्मूलन भी मनुष्य ही कर सकता है, इसका अन्त ही 'सामाजिक न्याय' की पृष्ठभूमि को तैयार करता है जो नैतिकता से सुसज्जित एवं व्यवस्थित सामाजिक मूल्यों को स्थापित करता है। अरस्तु का कथन है कि ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह न तो ईश्वर लोक का है और न दानव लोक का।'' यहाँ पर सामाजिक प्राणी होने का अर्थ है कि मनुष्य सभी भेद–भाव से ऊपर उठकर अपने सामाजिक मूल्यों से सुसज्जित समाज का निर्माण करे।

अम्बेडकर का विश्वास था कि 'सामाजिक उत्थान' सहानुभूति और सद्भावना ही पर्याप्त नहीं है। सामाजिक उत्थान तब होगा जब वे स्वयं सक्रिय तथा जागृत होंगे इसलिए शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया, उन्होंने कहा कि निम्न स्तर के लोगों को शिक्षित अवश्य होना चाहिए, केवल साक्षरता के स्तर तक नहीं बल्कि उन्हें उच्चतम स्तर तक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। शिक्षा से ही उनके भीतर मौजूद हीन भावना को दूर किया जा सकता है। अम्बेडकर कहते हैं कि समस्या उनके भीतर मौजूद हीन भावना को दूर करने की है जिसने उनके विकास को अवरूद्ध कर दिया है और उन्हें दूसरों का हाल बना दिया है उनके भीतर जीवन के आत्मसम्मान के महत्व और देश के लिए चेतना के निर्माण की आवश्यकता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति उच्च शिक्षा के प्रसार के अलावा किसी अन्य तरीके से संभव नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर का कथन है कि शिक्षित रहो, संगठित रहो, संघर्ष करो। अर्थात शिक्षित रहना ही किसी संगठन की शक्ति है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व और देश के विकास का मार्गदर्शन करता है। अम्बेडकर उस साहित्य की कटु आलोचना की है जिसमें स्त्रियों के प्रति भेद–भाव का दृष्टिकोण अपनाया गया है। उन्होंने दलितों के उत्थान एवं प्रगति के लिए भी नारी समाज का उत्थान आवश्यक है। उनका मानना था कि स्त्रियों के सम्मानपूर्वक तथा स्वतंत्र जीवन के लिए शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। अम्बेडकर हमेशा स्त्री–पुरुष समानता का व्यापक समर्थन किया है। यहाँ कोई विशिष्ट वर्ग एवं जाति को नहीं सन्दर्भित करता बल्कि पूरे मानव जाति के विकास लिए अनिवार्य है तभी कहा जा सकता है कि न्यायपूर्ण समाज वह है जिसमें परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर एक करुणा से भरे समाज का निर्माण करें। यहाँ न तो गहरा एवं स्थायी विभाजन मौजूद है और न तो नफरत, बल्कि समाज को एकता के सूत्र में पिरोया गया है।

निष्कर्ष–

डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक न्याय में मानवीय गरिमा, स्वाभिमान एवं संकल्पना के आधार पर सभी नागरिकों को समान अधिकारों के प्रति आश्वस्त करता है लेकिन वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर अभी भी दलितों वंचितों की स्थिति में प्रमुख सुधार नहीं है। अम्बेडकर के द्वारा सामाजिक न्याय के जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं वह अभी तक सम्पूर्ण रूप से स्वीकृत नहीं किये गये हैं। कहाँ जा सकता है कि सर्वप्रथम देश मे जाति व्यवस्था व वर्ण–व्यवस्था जैसी कुरूतियों को समाप्त किया जाना चाहिए तभी एक आदर्श एवं नैतिक, सामाजिक न्याय को स्थापित किया जा सकता है।

संदर्भ–सूची–

1. कीर धनन्जय – डॉ0 बाबा साहब अम्बेडकर जीवन चरित्र, दिल्ली, 1996
2. के0एल0 भाटिया – सोशल जस्टिस ऑफ अम्बेडकर, नेशनल नई दिल्ली
3. डॉ0 रामगोपाल सिंह – अम्बेडकर सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2006
4. विश्वप्रकाश गुप्ता – भीमराव अम्बेडकर : व्यक्ति और विचार राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008
5. एम0एल0 सहारे – डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, हिज लाइफ एण्ड वर्क नई दिल्ली – 1998

6. अम्बेडकर बी0आर0 – अस्पृश्यता मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी–2002
7. एस0के0 गुप्ता – आधुनिक भारत शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद 2007
8. भारती रामविलास – बीसवीं सदी में दलित समाज अनामिका पब्लिकेशन नई दिल्ली–2010
9. Indian Antiquary Vol. 41 (May 1917) p, p. 81-95
10. The Untouchables : who were they and why the Become Untouchables (New Delhi Amrit Publishing Co., 1948) p-155-156
11. Dr. Baba Saheb Ambedkar :- Writing and Speeches, OP, Cit. Vol. 1 में सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में अत्यंत विधि–सम्मत दृष्टिकोण है।
12. Barker. S.E. (1977) - Uneek Political Theory : "Plato and his Predecessors" London Rauttle de (p.p 176-177)
13. Majumdar, A.K. and Singh. B. edited (1977), 'Ambedkar and Social Justice' New Delhi : Radha Publications, p.p 44-45
14. Rabhavendra R.H. (2016) Dr. B.R. Ambedkar's' "Ideas on Social Justice in Indian Society", p.p.- 24-29.

आधुनिक कविता और धूमिल की राजनैतिक विचारधारा

डॉ. मनीष कुमार सिंह

शोध सार :

कविता मानव मन की उपज होती है, जो भिन्न–भिन्न प्रवृत्तियों, विचारों एवं स्वभाव से परिवर्तित स्वरूप में प्रगति करती रहती है। आधुनिक कविता केवल पारलौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित होकर उसके आदर्श एवं मूल्यों का गुणगान करके अपनी सार्थकता को साबित नहीं करती बल्कि उसकी सार्थकता तो मानव स्वभाव के कण–कण से प्रलक्षित होती रही है। आधुनिक कविता मानवीय संवेदनाओं की युगीन प्रवाहित धारा है, उसकी प्रासंगिकता का चरम बिंदु है। आधुनिक कविता समसामयिक पहलुओं से अछूती नहीं रह सकती क्योंकि वह जितनी अधिकता से उन पहलुओं की मार्मिकता को अभिव्यंजित करेगी वह उतनी ही सार्थक सिद्ध होगी। आधुनिक कविता समाज में घटित होती प्रतिदिन की घटनाओं से संबंधित होती है और जन समुदाय के समाज से सीधा सरोकार रखती है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है जिसकी उन्नति और अवनति इससे अलग नहीं देखी जा सकती है। वैसे ही समाज से राजनीति का अटूट रिश्ता रहा है जो कई सदियों से चला आ रहा है। जिसे हिन्दी साहित्य के कवियों ने भी अपनी कविताओं में व्यंजित किया है। इन हिन्दी कवियों में धूमिल सर्वोपरि माने जाते हैं। इनकी रचना–धर्मिता में राजनीतिक चेतना अपना एक अलग महत्त्व रखती है। जिसका विस्तृत उल्लेख इस शोध आलेख में किया गया है।

बीज शब्द : राजनीति, आधुनिक कविता, आक्रोश, व्यवस्था–विरोध, गरीबी, जहालत, प्रजातंत्र, राजनेता, संसद आदमी आदि।

प्रस्तावना : राजनीति समाज का एक ऐसा ज्वलंत मुद्दा है जिससे कतरा कर निकल पाना किसी भी साहित्यकार के लिए संभव नहीं हो पाया है क्योंकि राजनीतिक यथार्थता प्रत्येक कालखंड की चेतना में प्रदर्शित होती रही है। हिन्दी कविता भी इस राजनीतिक प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी है। भले ही यह कमोवेश रूप में प्रभावित रही हो। हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों में राजनीति का वर्चस्वशाली प्रभाव परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य की आदिकालीन काव्य परंपरा से लेकर आधुनिक काल तक की कविताओं में यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आदिकालीन रासों काव्य राज–प्रासादों, दरबारों, सामाजिक संगठनों, समुदायों की राजनीतिक गतिविधियों का हवाला प्रस्तुत करते हुए लक्षित होते हैं। इसके साथ ही राज्याश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता का गुणगान करने के साथ–साथ उनकी राजनीतिक प्रभावशीलता का भी वर्णन करने में कम महारथ हासिल नहीं की थी। इसी तरह भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के कवियों ने भी प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक वर्चस्व को भी अभिव्यंजित करने का भरसक प्रयत्न किया है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन काव्य में राजनीतिक उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। मुगलों की व्यवस्थाओं, व्यवस्थापिकाओं और उनकी शासन–प्रशासन की राजनीतिक गतिविधियों का हवाला प्रस्तुत किया गया है। यह हवाला चाहे भक्ति कालीन रचना धर्मिता के माध्यम से हो या फिर सीधे समाज केंद्रित। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास की अप्रतिम रचना 'रामचरितमानस' है। जिसमें गोस्वामी जी ने राजनीतिक व्यवस्था–विरोध को भलीभांति प्रश्रय दिया है।

इसी तरह रीतिकाल में भी रीतिकालीन कवियों ने राजनीतिक व्यवस्था–विरोध के उठापटक को अभिव्यंजित करने का प्रयास किया है। रीतिकालीन कविता राजाओं, रईसों, सामंतों आदि के दरबारों में पली–बढ़ी है। जिससे इन दरबारों की विलासिता वहाँ से निकल कर समाज को भी क्षतिग्रस्त करने लगी थी। जिसका भली–भांति वर्णन बिहारी, भूषण, सूदन आदि कवियों की रचनाओं में देखा जा सकता है। आधुनिक काल की कविता राजनीतिक चेतना से ओत–प्रोत है। आधुनिक काल के कवि अपनी कविताओं में केवल ईश्वरीय भक्ति का गुणगान नहीं करते थे बल्कि मनुष्य को केंद्र में रखकर भी रचनाएँ करते थे। आम जन–मानस को राजनीति, देश–प्रेम, समाज सुधार जैसी भावनाओं से अवगत कराने के लिए रचनाएँ करते थे। आधुनिक काल में कई ऐसी राजनीतिक त्रासदियाँ हुई हैं जिनका कवियों ने अपनी कविताओं में विरोध किया है। हिन्दी साहित्य की कविता की विकास यात्रा आधुनिक काल तक आते–आते दरबारों से बाहर निकल कर अंग्रेजी सत्ता के चंगुल में फंस गईं थी, जिसका फायदा उठाकर अंग्रेजों ने कई वर्षों तक भारत को गुलाम

बनाकर लूटपाट की। अपने स्वार्थ के लिए लोगों को एक दूसरे से लड़ाकर अपनी उन्नति करते रहे। **''अनेक जातियों, उपजातियों में विभक्त इस देश में पारस्परिक एकता का सर्वदा अभाव रहा है। विदेशी मुसलमानों की विजय का कारण भी यही था और अंग्रेजों की विजय का भी।''[1]**

ऐसी स्थिति में आधुनिक काल के कवियों के लिए राजनीतिक गतिविधियों की अभिव्यंजना एक अहम विषय रहा है। स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक अंतर्द्वन्द्व को भारतेन्दु, द्विवेदी तथा छायावादी युगीन काव्य रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रगतिवादी कविता मार्क्सवादी सिद्धांतों पर आधारित है, जिसमें राजनीति का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। प्रेम और मस्ती के काव्य में अनुभूतियों के अनुरूप कविताएँ रची जा रहीं थी तो प्रयोगवादी कविता में शब्द प्रयोग के साथ–साथ राजनीति का भी अभिव्यंजन देखा जा सकता है।

आधुनिक कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद की कविता है। आधुनिक कविता केवल राजनीति की यथा स्थिति को ही नहीं व्यंजित करती है बल्कि उसकी मूल्यहीनता को भी अभिव्यक्त करती है। इस संदर्भ में डॉ0 हुकुमचंद राजपाल लिखते हैं कि– **''इस काव्यधारा के कवियों का मूल प्रतिपाद्य राजनीति और व्यवस्था की विद्रूपताओं के फलस्वरूप जन–सामान्य में व्याप्त मूल्यहीनता को व्यंजित करना है। ये कवि मूल्यहीन स्थितियों को उद्घाटित कर जन–मुक्ति के मूल्य के प्रतिष्ठापक हैं। सही और सार्थक पहचान इनका संबल है।''[2]** आधुनिक कविता में समकालीन जन–सरोकारों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। राजनीति आधुनिक व्यक्तियों के जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। जिसके फलस्वरूप आधुनिक कविता में राजनीति का आ जाना कोई आकस्मिक घटना नहीं है।

हिन्दी काव्य जगत के लगभग सभी कवियों ने राजनीति को दृष्टि में रखकर अपनी रचना की हैं। क्योंकि यह वर्तमान समय में राजनैतिक संदर्भों का एक ऐसा प्रसंग था जिससे कोई अलगाव न रख सका। धूमिल आधुनिक कविता के पक्षधर कवि माने जाते हैं। जिनका काव्य राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों पर अधिकाधिक कटाक्ष करता दिखाई पड़ता है। धूमिल का वास्तविक नाम सुदामा प्रसाद पांडेय है। इनके मुख्यतः तीन काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पांडे का प्रजातंत्र' हैं। इन संग्रहों की कविताएँ किसी न किसी रूप में राजनीति के छल–छद्म को यथार्थता के धरातल पर अवश्य ही प्रकट करती हैं। उनकी राजनीतिक चेतना एक समस्या के रूप में चित्रित हुई है, जो कठिन परिस्थितियों में भी संवेदनात्मक चुनौतियों की भरमार करती दिखाई पड़ती है।

कवि ने राजनीति के अछूते पहलुओं पर ऐसा प्रहार किया है जिससे राजनीतिक चरित्र का दोहरापन बेनकाब होने से बच नहीं सका है। ऐसा ध्वनित होता है कि धूमिल अपने काव्य में समाज तथा देश की किसी भी विसंगति को छोड़ना नहीं चाहते थे। उनके काव्य में संसद, सड़क, जनता, जनतंत्र, आजादी, समाजवाद, राजनेता, आम आदमी जैसे सब प्रयुक्त हुए हैं जो कवि की दृष्टि में अपनी सार्थक अर्थवत्ता को छोड़कर निरर्थक साबित हो रहे हैं। **''व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विरोध, विसंगतियों पर पैना व्यंग्य, व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के बदलते हुए आयाम भी उनकी कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। सच्चे अर्थों में वे युग बोध के कवि हैं। उन्होंने जो कुछ भी देखा, जैसा देखा उसे वैसा ही चित्रित किया है। उनके काव्य में आधुनिक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश कविताओं में व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के कथ्य के साथ–साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ भी समाहित हैं। देश की ज्वलंत समस्याओं के प्रति भी वे सजग हैं। जनसंख्या, बेकारी, भुखमरी को उन्होंने अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। धूमिल की कविताओं का मूल्यांकन समसामयिक संदर्भों तथा कवि चेतना की पृष्ठभूमि में ही किया जा सकता है।''[3]**

वर्तमान में इस राजनीतिक मसौदे से कोई कट नहीं सकता है, क्योंकि यह मानव विकास की स्वचालित गति है जो समयानुसार उसको प्रभावित करती रही है। कविता भी राजनीति पर आज खुलकर अपनी पक्षधरता को व्यक्त करती है। धूमिल का काव्य राजनीतिक चेतना दृष्टि से हिन्दी काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हमारे देश की आजादी के संघर्ष को भुलाया नहीं जा सकता है। यह आजादी केवल शासकों का परिवर्तन मात्र नहीं थी बल्कि इससे सामाजिक जीवन में भी कई परिवर्तन हुए हैं। समाज में फैली भुखमरी, अशिक्षा, अकाल जैसी अनेक समस्याओं पर लोगों का ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु देश विभाजन, युद्ध और अशांति जैसी परिस्थितियों ने देश की जड़ों को हिला कर रख दिया है। देश की आजादी का सपना पूरा होने पर हर व्यक्ति प्रसन्न था, इस प्रसन्नता को कवि धूमिल भी अपने काव्य में व्यक्त करते हैं। यथा–

''मैंने कहा आजादी...
मुझे अच्छी तरह याद है

मैंने यही कहा था
मेरे नस–नस में
बिजली दौड़ रही थी
उत्साह में।''[4]

कवि को आजादी के खुले वातावरण में कई प्रकार की अजीब चीजें देखने को मिलीं। वह दौड़कर खेतों में देखता है कि आजादी का प्रभाव अनाज की उपज के अंकुरों में फूट पड़ा है, चिड़िया पेड़ों पर बैठी चहचहा रही हैं, बैलों के गले में पड़ी कांस्य की बजती घंटियों को देखकर उनकी पीठ थपथपाता है, वापस लौट सारे घर में रोशनी करता है, उत्साह में सारे देश में दीप जलाए गए, दीवार में टंगी पुरानी तस्वीरों की सफाई कर उन्हें वहीं टांग देता है और आजादी के नाम पर एक पौधा लगा कर वन महोत्सव की घोषणा करता है।

भारत शांति का पर्याय माना जाता है, इसलिए कवि शांति के प्रतिरूप एक जोड़ी कबूतर पाल लेता है। धूमिल आजादी को ही अपना लक्ष्य नहीं मानते हैं। उनके लिए आजादी वह साधन है जिसमें सामाजिक जीवन की खुशहाली की दिशा दिखाई देती है। वे वर्तमान का स्मरण कर भविष्य की काल्पनिक खुशहाली की सांत्वना को व्यंग्यात्मक रूप में काव्य में प्रकट करते हैं। उनका मानना था कि स्वतंत्र भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाएँ शोषण मुक्त होंगी तथा कोई व्यक्ति रोटी, कपड़ा, मकान और दवा के अभाव में घुट–घुट कर नहीं मरेगा। जिसके लिए वे बार–बार अपनी सम्मोहित बुद्धि के कारण उन नेताओं को अपना नेतृत्व सौंपते रहे। परन्तु ये राजनेता देश के आम लोगों की मूल समस्याओं को अनदेखा कर विश्व शांति, पंचशील जैसे मुद्दों पर उलझे रहे। ऐसे समय में आम जनमानस की आशाएँ, आकाक्षाएँ निरर्थक मालूम पड़ रही थीं तथा विकास योजनाएँ विफल साबित हो रही थीं। ये परिस्थितियाँ आजादी के बाद अधिक भयवाह होने लगी थीं। क्योंकि यह राजनीतिक विफलता का दौर था लोगों का ऐसी राजनीतिक सत्ता से मोहभंग होने लगा जो अपने स्वार्थ के लिए छल–कपट, सत्ता–लोलुपता तथा चुनावी हथकंडे अपनाने से नहीं चूकते हैं। धूमिल आजादी के इस यथार्थ का आंकलन करके आजादी पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए सवाल करते हैं–

''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?''[5]

कवि इस मोहभंग की स्थिति में आजादी को निरर्थक मानता है जो सिर्फ औपचारिक बनकर रह गई है। जिससे न भूख मिटाई जा रही है, न मौसम बदला जा रहा है। विश्वनाथ त्रिपाठी का कथन है कि– **''नेहरू का निधन स्वातंर्त्योत्तर भारत में निराशा और मोहभंग की पहचान है। यह मोहभंग तारसप्तक में पाए जाने वाले मोहभंग जैसा केवल बौद्धिक नहीं। यह हमारे देश के एक दौर का मोहभंग है।''[6]** धूमिल की राजनीतिक अभिव्यंजना इसी मोहभंग की उपज कही जा सकती है। स्वतंत्र देश में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली अपनाई गई और सभी को स्वतंत्रता, समानता के अधिकार भी दिए गए। परन्तु इस व्यवस्था ने समाज को कई वर्गों में विभाजित करके आम लोगों के अधिकार पूंजीपतियों के हाथों में सौंप दिए जो उनकी विलासिता के एकमात्र साधन बनकर रह गए। आज जो साधन संपन्न हैं उनके लिए निर्बल, असहाय गरीब लोग सबसे गंदी गाली बन गए हैं।

प्रजातंत्र की इस व्यवस्था में चुनाव, राजनेता, संसद, जनता, न्याय व्यवस्था, संविधान आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस पर कवि धूमिल ने विचारकर प्रजातंत्र के असली चेहरे को समाज के सम्मुख उजागर करने का काम अपनी कविताओं के माध्यम से किया। धूमिल की दृष्टि में आज जिसे 'जनतंत्र' कहते हैं वह आज इन भेड़ियों की जुबान पर ही जिंदा है, जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या की जाती है–

''जनतंत्र
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है।''[7]

धूमिल वर्तमान की परिस्थितियों के लिए लोगों को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। क्योंकि ये लोग अपनी जड़ीभूत मानसिकता के कारण ही पीड़ित, शोषित और दमित हैं, जो व्यवस्था के अमानवीय अत्याचारों के शिकार हैं फिर भी वे अपने इस दशा के खिलाफ न ही आवाज उठाने और न ही कुछ करने को तैयार होते हैं। धूमिल इन लोगों की इस उदासीनता और तटस्थता को देखकर दुखी होते हैं जो देश के चालाक नेताओं के बहकावे में आकर शोषित होने को अपनी नियति मान बैठे हैं। देश की स्वतंत्रता के बाद जो नेतृत्व उभरा

वह अत्यंत स्वार्थी, धूर्त, क्रूर एवं संकीर्ण दृष्टि का था जो भ्रष्टाचार में संलिप्त होकर राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाता था। ऐसे नेतृत्वकर्ता नेताओं के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए धूमिल लिखते हैं कि–

''मगर चालाक 'सुराजिये'
आजादी के बाद के अंधेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
और गलत इरादों का मौसम जी रहे थे
अपने–अपने दराजों की भाषा में बैठकर
गर्म कुत्ता खा रहे थे
'सफेद घोड़ा' पी रहे थे।''[8]

कवि ने चालाक 'सुराजिये' शब्द के द्वारा नेताओं के प्रति पूरी कुत्सा को चित्रित किया है। इस अव्यवस्थित एवं स्वार्थपूरित व्यवस्था के अंधेरे में इन चालाक नेताओं ने अपनी सुख–सुविधाएँ सुरक्षित करके पूर्व–शासकों के पदचिह्नों पर चलकर भी गलत दिशा का चुनाव कर लिया है। जिसका उद्देश राष्ट्र निर्माण न होकर अपने लिए सुख–सुविधाएँ जुटाना हो गया है। धूमिल ऐसे स्वार्थी नेताओं की कटु आलोचना करते हैं।

धूमिल ऐसे अवसरवादी नेताओं को निर्लज्ज और निष्ठुर कहते हैं, जो सत्तापक्ष से अपने को अधिक समय तक अलग नहीं रख सकते। अगर आवेश या अन्य किसी कारणवश ये सत्तापक्ष से विमुख भी हो जाते हैं तो वहीं दूसरी तरफ अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए सत्ता के गठजोड़ में लग जाते हैं। जिसके लिए ये नेता लोग चुनावों के समय आम जनता से कई तरह के झूठे वादे भी करते हैं। परंतु अपना स्वार्थ सिद्ध होने के बाद ये जनता की समस्याओं को अनदेखा करते नजर आते हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक व्यवस्था की यह स्थिति अत्यंत भयावह रूप धारण कर चुकी है। धूमिल ने 'चुनाव' नामक कविता में यह अभिव्यंजित किया है कि आश्वासनों की बौछार और चुनावों के नाम पर लोगों को कैसे ठगा जाता है। **''चुनाव जीतने के लिए उन्हें एक ओर तो पूंजीपतियों के अनुसार चलने के लिए बाध्य होना पड़ता तथा दूसरी ओर जनता को झूठे आश्वासन देने पड़े। इस दोमुंही नीति के कारण उनमें राजनीतिक चरित्रहीनता बढ़ने लगी।''[9]**

यह राजनीतिक व्यवस्था की विडंबना रही है कि वह सिर्फ और सिर्फ पूंजीपतियों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है जिसके चारों ओर पूंजीवादी दिमाग घूमता रहता है। इन नेताओं की निरर्थक नारेबाजी के फलस्वरुप ही राजनीतिक व्यवस्था में व्यंग्य के स्वर का मुखरित होना स्वाभाविक है। धूमिल इसे कई प्रसंगों में अभिव्यंजित करते हुए लक्षित होते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि धूमिल की कविता आम आदमी की कविता होने के साथ–साथ राजनीतिक व्यवस्था विरोध का केंद्र भी है। हाशिए पर धकेल दिए गए आम आदमी को संसद से लेकर सड़क तक जिस तरह से धूमिल ने देखा है तथा उनकी अंतर्व्यथा को हृदयंगम कर अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से रूबरू कराया है वह पुनर्नवीकरण आज की राजनीति में स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं होगा कि धूमिल अपने दौर के सबसे समर्थ कवियों में से एक थे जिन्होंने आम जनमानस के साथ–साथ तत्कालीन समय की राजनीति गतिविधियों का भी हवाला अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। उस राजनीतिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य प्रहार किया है जो तत्कालीन समय और समाज को स्वार्थपरता तथा छल छद्म के व्यवहार से पंगु करती जा रही थी।

संदर्भ–सूची

1. नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 402
2. हुकुमचन्द राजपाल, 'समकालीन बोध और धूमिल का काव्य', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 42
3. मीनाक्षी जोशी, 'धूमकेतु धूमिल और साठोत्तरी कविता', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 180
4. रत्नशंकर पाण्डेय, 'धूमिल समग्र, भाग–1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 113
5. रत्नशंकर पाण्डेय, 'धूमिल समग्र, भाग–1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 47
6. नीलम सिंह, 'धूमिल की कविता में विरोध और संघर्ष', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 54
7. रत्नशंकर पाण्डेय, 'धूमिल समग्र, भाग–1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 72
8. रत्नशंकर पाण्डेय, 'धूमिल समग्र, भाग–1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 74
9. मीनाक्षी जोशी, 'धूमकेतु धूमिल और साठोत्तरी कविता', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 52

अमृतकाल (2022-2047) में ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण : गांधी के ग्राम स्वराज के संदर्भ में

हिमांशु सिंह*

सारांश

भारत एक ऐसा देश है जिसकी आत्मा उसके गांवों में बसती है जो इस समय बदलाव के एक नए युग के दौर से गुजर रहा है।भारत सरकार ने 2022 में आजादी के 75वें वर्ष को आजादी के 'अमृत महोत्सव'के रूप में मनाया और 2022 से 2047 तक के कालखंड में भारत को एक विकसित देश बनाने का लक्ष्य देशवासियों के सामने रखा।इस कालखंड को 'अमृतकाल' का नाम दिया गया है। यह वह अवधि है जिसमें भारत अपनी आजादी के 100 वर्ष पूर्ण होने की ओर अग्रसर है और इस अवधि में ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण राष्ट्रीय विकास की आधारशिला बन सकता है।

महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज का दर्शन जो आत्मनिर्भरता ,समावेशी और सामुदायिक विकास पर आधारित है।यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना आजादी के समय था क्योंकि हमारा ग्रामीण भारत आज भी गरीबी, पलायन, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं में निरंतर कमी का सामना कर रहा है। इसलिए वर्तमान समय में जब भारत तकनीकी,औद्योगिक व आर्थिक तौर पर वैश्विक मंचों पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम ग्रामीण भारत को भी इसी *शक्ति और आत्मनिर्भरता के साथ उसका पुनरुद्धार करें, जिसकी कल्पना महात्मा गांधी ने अपने ग्राम स्वराज में की थी।*

बीज शब्द : अमृतकाल, ग्रामीण भारत, ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भर, समावेशी विकास, सामुदायिक विकास, स्वदेशी, स्वावलंबन, ग्रामोद्योग।

महात्मा गांधी चाहते थे कि भारत में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हो। इसलिए उन्होंने कहा था,"सच्चा लोकतंत्र केंद्र में बैठे हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता।उसे प्रत्येक गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा।"ग्राम-स्वराज्य में गाँव संपूर्ण सत्ताएँ भोगनेवाला एक विकेंद्रित राजनीतिक घटक होगा,इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का सरकार अथवा शासन में सीधा हाथ होगा। व्यक्ति अपनी सरकार का निर्माता होगा।गाँव का शासन चलाने के लिए प्रतिवर्ष गाँव के पाँच व्यक्तियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। इसके लिए एक अल्पतम निर्धारित योग्यतावाले गाँव के वयस्क स्त्री-पुरुषों को अपने पंच चुनने का अधिकार होगा। इस पंचायत को सब प्रकार की आवश्यक सत्ताएँ और अधिकार प्राप्त होंगे। इस ग्राम-स्वराज्य में दंड की कोई प्रथा नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत धारासभा, न्यायसभा और व्यवस्थापिका सभा-तीनों का कार्य संयुक्त रूप में करेगी।

गांधीजी की दृष्टि में राजनीतिक सत्ता अपने आप में कोई साध्य नहीं थी,परंतु लोगों के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की क्षमता प्राप्त करने का एक साधन मात्र थी। इसलिए अपने प्रसिद्ध आखिरी वसीयतनामे में गांधीजी ने कहा था कि भारत ने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है लेकिन उसे "अभी शहरों और कस्बों से भिन्न अपने सात लाख गाँवों के लिए सामाजिक,आर्थिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना बाकी है।" उस वसीयतनामे में ग्राम-स्वराज्य अर्थात् पंचायत-राज का चित्र और कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है।जो दूसरे शब्दों में संपूर्ण राजनीतिक सत्ता भोगने वाला एक प्रहिंसक, स्वावलंबी और स्वयंपूर्ण आर्थिक

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि, वाराणसी (उ.प्र.), 221005
Email.Id-hs329877@gmail.com

घटक है। गांधीजी की कल्पना का ग्राम-स्वराज्य मानव-केंद्रित है,जबकि पश्चिमी अर्थव्यवस्था धन-केंद्रित है। पहली अर्थव्यवस्था जीवन की अर्थव्यवस्था है और दूसरी मृत्यु की अर्थव्यवस्था है।

गांधीजी की कल्पना के ग्राम-स्वराज्य की योजना में ग्राम-सेवक का स्वभावतः केंद्रीय स्थान होगा। उसके कर्तव्यों के विषय में गांधीजी कहते हैं कि ग्रामसेवक गाँवों का इस प्रकार से संगठन करेगा कि वे खेती और ग्रामोद्योगों के द्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलंबी बन जाएँ।वह ग्रामवासियों को स्वास्थ्य और सफाई की तालीम देगा तथा इस बात की हर तरह से सावधानी रखेगा कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ने न पाए और उन पर रोगों का आक्रमण न हो।साथ ही वह गाँव के लोगों को नई तालीम के आधार पर जन्म से मृत्यु तक की शिक्षा देने की व्यवस्था करेगा(गाँधी,2019)।महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज केवल शासन का विकेंद्रीकरण नहीं था बल्कि यह एक आदर्श समाज की परिकल्पना थी।जिसमें गांव आत्मनिर्भरता,सामुदायिक सहभागिता,पर्यावरण की स्थिरता,सामाजिक समानता और नैतिक मूल्यों से युक्त होंगे।

ग्राम स्वराज:महात्मा गांधी का दर्शन और उसका महत्व

ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा,जो अपनी महत्त्व की जरूरत के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा,वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी फाजिल जमीन होनी चाहिए,जिसमें ढोर चर सकें और गाँव के बड़ों व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधनों और खेलकूद के मैदान वगैरह का बंदोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो,उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोएगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके।

वह गाँजा, तंबाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा। हर एक गाँव में,गाँव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभाभवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इंतजाम होगा।जिससे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा।कुओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहाँ तक हो सकेगा,गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाएँगे।जात-पाँत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद,जो आज हमारे समाज में पाए जाते हैं, वैसे इस ग्राम-स्वराज्य में बिलकुल न रहेंगे। गाँव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा,जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गाँव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। इसके लिए गाँव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा जाएगा। गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पाँच आदमियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। इसके लिए नियमानुसार,एक खास निर्धारित योग्यतावाले गाँव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे।चूँकि इस ग्राम-स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दंड का कोई रिवाज नहीं रहेगा,इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा,न्यायसभा और व्यवस्थापिका सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।आज भी अगर कोई गाँव चाहे तो अपने यहाँ इस तरह का प्रजातंत्र कायम कर सकता है।उसके इस काम में मौजूदा सरकार भी ज्यादा दखलंदाजी नहीं करेगी, क्योंकि उसका गाँव से जो भी कारगर संबंध है,वह सिर्फ मालगुजारी वसूल करने तक ही सीमित है(गाँधी,2019)।

महात्मा गाँधी अपने जीवन में,देश के तीन मुद्दों को लगातार उठाते रहते थे और सुधार के लिए काम करते रहते थे। इनमें पहला था हिंदू-मुसलमान एकता,दूसरा था छुआछूत विरोधी संघर्ष और तीसरा था देश की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुधारना।अपने लक्ष्यों को उन्होंने एक बार संक्षेप में इस प्रकार रखा था -

"मैं ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें सबसे निर्धन व्यक्ति भी इसे अपना देश समझे और इसके निर्माण में उसकी प्रभावी भूमिका हो-एक ऐसा भारत जिसमें लोगों को कोई लोगों का कोई उच्च वर्ग और निम्न

वर्ग ना हो,जिसमें सभी समुदाय पूरे सद्भाव के साथ रहते हो... स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार होंगे मेरे सपनों का भारत यही है(चंद्र,2018)।"

ग्राम स्वराज के बुनियादी सिद्धांत

मानव का सर्वोच्च स्थान-हम जो भी कार्य करें,उसमें मुख्य विचार मानव के कल्याण का ही होना चाहिए महात्मा गांधी का मानना था कि भारत की ही नहीं बल्कि सारी दुनिया की अर्थ रचना ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी को भी अन्न व वस्त्र का अभाव न हो,हर एक को इतना काम अवश्य मिल जाए कि वह अपने खाने व पहनने की ज़रूरतें पूरी कर सके।'कल की चिंता मत करो' यह एक ऐसा आदेश है जिसकी प्रतिध्वनि हमें जगत के लगभग सारे धर्म ग्रंथो में सुनाई देती है।सुव्यवस्थित समाज में मनुष्य के लिए आजीविका प्राप्त करना दुनिया की आसान से आसान बात होनी चाहिए और होती है।बेशक,किसी देश की सुव्यवस्थितता की कसौटी यह नहीं है कि उसमें कितने मनुष्य लखपति और करोड़पति हैं बल्कि यह है कि उसकी आम जनता में कोई भुखमरी का शिकार नहीं होता।देश के कच्चे माल का उपयोग करने वाली और ज्यादा शक्तिशाली मानव की परवाह न करने वाली कोई भी योजना ना तो देश में संतुलन कायम रख सकती है और न ही सब मनुष्यों को समान दर्जा दे सकती है सच्ची योजना तो वह होगी जो हिंदुस्तान की समूची मानव शक्ति को अच्छे से अच्छा उपयोग करें।

शरीर श्रम-यह आवश्यक है,कि प्रत्येक स्त्री और पुरुष अपने जीवनयापन के लिए शारीरिक श्रम करें। इसका तात्पर्य है कि हर स्वस्थ व्यक्ति को अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत करनी चाहिए। बुद्धि का उपयोग केवल अधिक कमाई या निजी लाभ के लिए नहीं, बल्कि सेवा और परोपकार के लिए होना चाहिए। यदि पूरी दुनिया इस सिद्धांत को अपनाए, तो समाज में समानता स्थापित हो सकती है।कोई भूखा न रहेगा और दुनिया अनेक पापों से बच सकती है।

समानता-आदमी के मूल बराबरी में उनका अटूट विश्वास था। शारीरिक एवं मानसिक कर्म करने वाले में भी वे भेदभाव करना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने 'श्रम की रोटी' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसका सीधा मतलब था कि चाहे कोई किसी प्रकार का बौद्धिक कर्म करे, लेकिन अपनी रोटी के लिए उसे कुछ न कुछ श्रम करना ही होगा। साथ ही वे स्वराज्य को सिर्फ राजनीतिक आजादी के रूप में नहीं देखते थे। वे तो व्यक्ति के स्वशासन, आत्म शासन को स्वराज का मुख्य बिन्दु मानते थे। इसी रास्ते से सरकार पर निर्भरता कम होगी और सच्चा स्वराज प्राप्त होगा। साथ ही वे राजनीतिक और आर्थिक तंत्र को भी जनाभिमुख बनाना चाहते थे। इसके लिए वे बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे और ग्रामीण उद्योग के विकास पर ज़ोर देते थे। बड़े मशीन के स्थान पर वे छोटे मशीन के पक्षधर थे ताकि लोगों को काम करने में सुविधा प्राप्त हो, लेकिन आदमी मशीन का गुलाम न बने।ग्राम स्वराज के बुनियादी अंगो मे 'समानता' रूपी यह अंग,अहिंसा पूर्ण स्वराज की मुख्य चाबी है(प्रधान,2017)।

संरक्षकता- आर्थिक समानता का मूल आधार यह है कि संपन्न व्यक्ति अपनी अतिरिक्त संपत्ति का मालिक नहीं, बल्कि समाज का ट्रस्टी (संरक्षक) बने। इस विचार के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को अपनी जरूरत से ज्यादा संपत्ति केवल अपने लिए रखने का नैतिक अधिकार नहीं है।लेकिन अगर इस अतिरिक्त संपत्ति को उससे जबरदस्ती छीनने की कोशिश की जाए, तो उसके लिए हिंसा का सहारा लेना पड़ेगा। भले ही ऐसा करना संभव हो, फिर भी इससे समाज को वास्तविक लाभ नहीं होगा, क्योंकि धन कमाने की जिस योग्यता के कारण वह व्यक्ति उपयोगी है, वह शक्ति समाज खो देगा।इसलिए सही रास्ता यह है कि वह व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखे और शेष धन को समाज के कल्याण के लिए खर्च करे–एक ट्रस्टी के रूप में, न कि मालिक के रूप में। यदि वह ईमानदारी से समाज का रक्षक बनता है, तो न केवल उसका धन कमाना नैतिक और शुद्ध होगा, बल्कि उसका उपयोग भी जनहितकारी होगा।

विकेंद्रीकरण-विकेंद्रीकरण के बारे में महात्मा गांधी का मानना था कि यदि भारत को अहिंसात्मक मार्ग पर आगे बढ़ना है, तो उसे अपने विकास की दिशा में विकेंद्रीकरण को अपनाना होगा।

उनके अनुसार, बड़े-बड़े कारखानों और केंद्रीकृत औद्योगिक व्यवस्था के आधार पर अहिंसा की नींव नहीं रखी जा सकती। क्योंकि यह प्रणाली शोषण पर टिकी होती है, और शोषण अपने आप में हिंसा का रूप है।

गांधी का सपना ऐसे भारत का था, जहाँ स्वावलंबी, स्वस्थ और आत्मनिर्भर गावों के माध्यम से अर्थव्यवस्था खड़ी हो। उनकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कल्पना में शोषण के लिए कोई स्थान नहीं था। यह व्यवस्था सह-अस्तित्व, सेवा और परस्पर सहयोग पर आधारित होती, जिसमें हर व्यक्ति अपने स्तर पर उत्पादन में भागीदार होता।

स्वदेशी-स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है। हर मनुष्य का पहला कर्तव्य अपने पड़ोसियों के प्रति है। इसमें परदेशी के प्रति द्वेष नहीं है और स्वदेशी के लिए पक्षपात नहीं है। शरीरधारी की सेवा करने की शक्ति की मर्यादा होती है। वह अपने पड़ोसियों के लिए भी मुश्किल से अपना धर्म पूरा कर सकता है। अगर पड़ोसी के प्रति सब कोई अपना धर्म अच्छी तरह पाल सकें, तो दुनिया में मदद के बिना कोई दुख न भोगे।इसलिए यह कहा जा सकता है, कि मनुष्य पड़ोसी की सेवा करके दुनिया की सेवा करता है।असल में तो इस स्वदेशी-धर्म में अपने-पराये का भेद ही नहीं है।पड़ोसी के प्रति धर्म-पालन करने का अर्थ है जगत् के प्रति धर्म-पालन।

स्वावलंबन-समाज का घटक एक गांव या लोगों का ऐसा समूह होना चाहिए,जिसकी व्यवस्था स्वतः हम खुद कर सके और जो आदर्श गाँव की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो।हर गांव का पहला काम यह होगा,कि वह अपनी जरूरत का सारा अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले।प्रत्येक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा,अपनी ज़रूरतें खुद पूरी करनी होगी। ताकि वह अपना सारा कारोबार स्वयं चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया से अपनी रक्षा स्वयं कर सके।

परस्पर सहयोग-महात्मा गांधी का मानना था कि गांव के सभी लोगों को परस्पर सहयोग दिखाना होगा और सब की भलाई के लिए काम करना होगा।सहकारिता की पद्धति किसानों के लिए ही ज्यादा जरूरी है।जमीन सरकार की है इसलिए जब उसे सहकारिता के आधार पर जोता जाएगा तो उसे किसान को ज्यादा से ज्यादा आमदनी होगी,जो पूर्ण अहिंसा पर आधारित होगा।

सत्याग्रह-सत्याग्रह और सहयोग के शास्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होगी।

सब धर्मो की समानता-हिंद स्वराज में महात्मा गाँधी कहते है कि,हिंदुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी रह सकते हैं।उससे वह एक राष्ट्र मिटनेवाला नहीं है। जो नए लोग उसमें दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रजा को तोड़ नहीं सकते, वे उसकी प्रजा में घुल-मिल जाते हैं। ऐसा हो, तभी कोई मुल्क एक-राष्ट्र माना जाएगा। ऐसे मुल्क में दूसरे लोगों का समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिंदुस्तान ऐसा था और आज भी है।यों तो जितने आदमी उतने धर्म ऐसा मान सकते हैं। एक-राष्ट्र होकर रहनेवाले लोग एक-दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते।अगर देते हैं तो समझना चाहिए कि वे एक-राष्ट्र होने लायक नहीं हैं। अगर हिंदू माने कि सारा हिंदुस्तान सिर्फ हिंदुओं से भरा होना चाहिए, तो यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा मानें कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें, तो उसे भी सपना ही समझिए। फिर भी हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, जो इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं, एक-देशी, एक-मुल्की हैं, वे देशी-भाई हैं, और उन्हें एक-दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।दुनिया के किसी भी हिस्से में एक-राष्ट्र का अर्थ एक-धर्म नहीं किया गया है, हिंदुस्तान में तो ऐसा था ही नहीं(गाँधी,2006)।

पंचायती राज-इसकी कल्पना महात्मा गांधी ने "ग्राम स्वराज" के मुख्य कड़ी के रूप में की थी। इसका उद्देश्य गांवों को आत्मनिर्भर बनाना और निर्णय लेने की शक्ति स्थानीय लोगों को देना था। गाँवों मे कैसे चुनाव होगा,प्रतिनिधि कैसे चुनें जायेंगे,इसके बारे में विस्तार से बताया गया है।1992 में,73वें संविधान संशोधन द्वारा

इसे संवैधानिक मान्यता दी गई। इसके तहत ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद तीन स्तर बनाए गए हैं। पंचायती राज प्रणाली,स्थानीय विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह शासन को जमीनी स्तर तक पहुंचाने और जनभागीदारी बढ़ाने का सशक्त माध्यम है।

नई तालीम-शिक्षा से महात्मा गाँधी का अभिप्राय यह था कि बालक की या प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं का सर्वांगीण विकास कैसे किया जाए और उन्हें प्रकाश में कैसे लाया जाए। अक्षर-ज्ञान न तो शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है और न उसका आरंभ है। वह तो शिक्षा के कई साधनों में केवल एक साधन है। अक्षर-ज्ञान अपने आप में शिक्षा नहीं है। इसलिए वे कहते हैं,कि बच्चे की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा का आरंभ करे, उसी क्षण से उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करें।इस प्रकार प्रत्येक स्कूल आत्मनिर्भर हो सकता है। शर्त सिर्फ यह है कि इन स्कूलों की बनी चीजें राज्य खरीद लिया करे(गाँधी,2019)।

इसी क्रम मे महात्मा गाँधी का ग्रामीण स्कूलों को लेकर कहना था कि "गांव के स्कूल का ध्येय गाँव के लोगों को ज्यादा भले, ज्यादा बुद्धिमान,ज्यादा स्वस्थ और ज्यादा सुखी बनाना होना चाहिए। अगर किसान का लड़का स्कूल में आता है,तो उसे स्कूल में ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि जब वह लौटकर अपने पिता का हल हाथ में ले,तब पिता से भी जल्दी अपना काम संभाल ले और सारे कामकाज में पिता से भी अधिक बुद्धिमानी का परिचय दे।सबसे बढ़कर तो बच्चों को स्कूल में यह सिखाना चाहिए कि स्वस्थ जीवन कैसे बिताया जाये और महामारियों से खुद को कैसे बचाया जाये(गाँधी,1971)।"

अमृतकाल:ग्रामीण भारत के लिए एक अवसर

वर्तमान समय में,जब कुछ ही वर्ष पहले पूरा विश्व कोविड महामारी के प्रकोप मे जकड़ा था तथा विश्व की लगभग सभी देशों की अर्थव्यवस्था न्यूनतम स्तर पर जा चुकी थी और अब विश्व में कई बड़े देश जैसे रूस-यूक्रेन,इजराइल-फिलिस्तीन तथा इजरायल-ईरान-अमेरिका युद्ध में है।वैश्विक परिस्थितियों के मुताबिक हर देश अपना हित साधने में लगा है। अर्थव्यवस्था की बात की जाए तो निश्चित तौर पर हम अभी अमेरिका ,चीन और जर्मनी के बाद चौथे पायदान पर खड़े हैं।कई बड़े आर्थिक विकास के जानकारों की मानें तो भारत, 2028 तक निश्चित तौर पर दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा(Morgan Stanley,2025)।इधर अमेरिका भी भारत की आर्थिक विकास की गति को कम करने के लिए भारत पर नए-नए टैरिफ लगा रहा है।

भारत में लगभग साढ़े छः लाख गांव हैं तथा देश की लगभग 69 प्रतिशत आबादी गांव में रहती है (Office of the Registrar General & Census Commissioner, India, 2011)।जब कोविड का दौर आया तो हमने देखा कि,हमारे गांवों की कितनी बड़ी आबादी सड़कों पर है।यही आबादी जब शहरों से लौटकर अपने-अपने गांव पहुंची,तो वहां ग्राम पंचायतों की तरफ से उनके लिए न कोई उचित व्यवस्था थी और न ही उनके

आगे के जीवकोपार्जन के लिए सरकार के पास कोई रणनीति थी।आज भी हमारे देश के गांवो से बहुत बड़ी संख्या में युवा लगातार पलायन कर रहे हैं।यह आबादी शहरों में इतना ज्यादा हो गई है कि उनके श्रम का उचित भुगतान भी उनको नहीं मिल रहा है।जहां एक तरफ शहरों की जनसंख्या-घनत्व लगातार बढ़ रही है वहीं दूसरी तरफ गांव के गांव वीरान होते चले जा रहे हैं।साथ में ही हमारे देश में,किसानों की आय दोगुना करने के लिए समय-समय पर अलग-अलग सरकारें वादा करती रहती हैं,लेकिन वहीं वैश्विक परिवेश मे देखें तो चीन व जापान जैसे देशों में लोग एक ही दिन में अलग-अलग समय में,भिन्न-भिन्न कार्यों में संलिप्त होकर अपनी आय को दोगुना या चार गुना बढ़ा रहे हैं।जबकि हमारे देश में किसान केवल खेती पर निर्भर रहता है,उसकी आय को बढ़ाने के लिए उसे किसी न किसी छोटे-बड़े कुटीर उद्योगों से जोड़ कर हम उनके साथ-साथ गाँव की आय को भी बढ़ा सकते हैं। जिसको महात्मा गाँधी ने अपने ग्राम स्वराज के मॉडल में बखूबी बताया है।

इस परिस्थिति में,जब सरकार ने अमृतकाल(2022 से 2047)की घोषणा की है तो हमारे सामने गांवों की इस समस्या को लेकर एक लक्ष्य बनाकर कार्य करने की जरूरत है।जिससे गांव की विभिन्न समस्याएं तो खत्म होगी ही साथ ही अगर एक-एक गांव आर्थिक आधार पर मजबूत हुआ तो हमारे देश की अर्थव्यवस्था और ज्यादा मजबूती व तीव्रता के साथ आगे बढ़ेगी।

ग्रामीण भारत के पुनर्निर्माण की रणनीतियां

महात्मा गांधी का मानना था,कि अगर गाँव नष्ट हो जाएं तो हिंदुस्तान नष्ट हो जाएगा।हम,अपने गाँवों के उद्धार से ही सच्चे स्वराज की स्थापना कर पायेंगे। गाँव उतने ही पुराने हैं,जितना कि भारत है,भारत की सच्ची आत्मा गाँव में निवास करती है।इनके ग्राम स्वराज का अर्थ - आत्मबल से परिपूर्ण होना है,आत्मनिर्भरता से है,स्वयं के उपभोग के लिए स्वयं के उत्पादन से है।शिक्षा और आर्थिक संपन्नता को भी इसमें शामिल किया गया है। वे गाँव की सत्ता ग्रामीणों के हाथ में सौंपना चाहते थे। गांधी जिस ग्राम स्वराज का स्वप्न देखते थे,उसके केंद्र में- स्वयं की सत्ता,स्वावलम्बी,अर्थ एवं प्रबंधन सत्ता स्वच्छता,हृदय की शुद्धता,स्वतंत्रता आदि है ।वे लिखते हैं- "मेरा स्वराज भारत के लिए संसदीय शासन की मांग है, जो वयस्क मताधिकार पर आधारित होगा (भारती,2022)।"

जे. सी.कुमारुप्पा कहते है,कि अगर कोई देश अपनी बुनियादी जरूरतें-खाना,कपड़ा और मकान खुद नहीं पूरी करता,तो उसे आजाद नहीं कहा जा सकता। हमारी खेती-अर्थनीति एक ऐसी चीज है,जो हमें अपने पाँव पर खड़ा कर दे सकती है। हमारा देश,हमेशा से खेतिहर देश रहा है और जो भी उद्योग-धंधे यहाँ चलते थे,वे खेती से मिले-जुले होते थे(कुमारप्पा,2010)।

यह स्पष्ट है कि कृषि,ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। महात्मा गांधी भी कृषि को आत्मनिर्भरता का आधार मानते थे तथा कृषि में रासायनिक उर्वरकों की जगह जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ कृषि आधारित उद्यमिता अपनाने की सलाह देते थे जो आज भी जरूरत बनी हुई है।प्रत्येक गाँव के वातावरण या परिवेश के अनुकूल वहां पर किस प्रकार के उद्यम स्थापित किया जा सकते हैं,उस पर विचार करने की जरूरत है।जिससे हस्तशिल्प व हथकरघा के ग्रामीण कारीगरों को पतन से बचाया जा सके।

सामाजिक भेदभाव को खत्म करने के लिए आज भी हम संघर्षरत है,जिसके बारे मे महात्मा गाँधी का कहना था कि "मैं चाहूँगा कि अगर अस्पृश्यता का अस्तित्व बने रहता है तो बेहतर होगा कि हिन्दू-धर्म ही नष्ट हो जाए। मैं हरिजनों के अधिकार का सौदा समस्त विश्व के लिए भी नहीं करूँगा। मैं पूरे जोर के साथ कहूँगा कि अगर मैं इसका विरोध करने के क्रम में अकेला भी पड़ गया,तो भी मैं इसका विरोध अपने जीवन को दांव पर लगा कर करूँगा(प्रधान,2017)।

आज के डिजिटल भारत में तो हर गांव इंटरनेट सुविधा से जुड़ा हुआ है जिसकी सहायता से हम विभिन्न प्रकार के आय के स्रोतों का निर्माण कर सकते हैं,शिक्षा को बढ़ावा दे सकते हैं,ग्रामीण कौशल विकास को बढ़ावा दे सकते हैं,ग्रामीण बच्चों को तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा दे सकते हैं,महिला साक्षरता को बढ़ावा दे सकते हैं जिसके लिए हमें विशेष शिक्षा-कार्यक्रम बनाने की जरूरत है।ग्रामीण भारत के भविष्य के लिए हमें जल संरक्षण,वृक्षारोपण व स्वच्छ ऊर्जा पर भी कार्य करने की जरूरत है जिससे भविष्य में ग्रामीण वातावरण को हम सुरक्षित रख सकें।

महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज की अवधारणा में शिक्षा, रोज़गार, आत्मनिर्भरता, स्त्री-पुरुष समानता, युवाओं को जागरूक करना, पंचायती राज व्यवस्था, सर्वोदय योजना, आदर्श ग्राम योजना और कौशल विकास जैसे महत्वपूर्ण पक्ष शामिल थे। वे मानते थे कि शिक्षा मे केवल किताबी ज्ञान तक सीमित न रहकर हुनर और व्यावहारिक दक्षता को भी बढ़ावा देनी चाहिए।

उनके विचारों को स्वतंत्रता के बाद देश के विकासवादी कार्यक्रमों में भी जगह दी गई। आज की कई योजनाएं जैसे – उज्ज्वला योजना, स्वच्छ भारत अभियान, ग्राम शक्ति अभियान, किसान कल्याण कार्यशालाएं, कौशल विकास मेले, आत्मनिर्भर भारत अभियान, नई शिक्षा नीति,प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना और पंचायत चुनाव इत्यादि गांधी जी के ग्राम स्वराज के सिद्धांतों का आधुनिक, विकसित और सुसंगठित रूप हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि गांधी जी की ग्राम स्वराज की संकल्पना आज अमृतकाल मे भी देश की भलाई और समग्र विकास के लिए उतनी ही ज़रूरी है,जितनी आजादी के समय थी।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. गांधी,एम.के.,2019,ग्राम-स्वराज (सं. हरिप्रसाद व्यास), प्रभात प्रकाशन,दिल्ली,पृ.स.(16-17)
2. गांधी,एम.के.,2019,ग्राम-स्वराज (सं. हरिप्रसाद व्यास), प्रभात प्रकाशन,दिल्ली,पृ.स.(48-49)
3. चंद्र,विपिन,2018,आधुनिक भारत का इतिहास,ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड,हैदराबाद,पृ.स.(281)
4. प्रधान,रामचंद्र,2017,राज से स्वराज,प्रभात पेपरबैक्स,नई दिल्ली,पृ. स.(291)
5. गांधी, एम. के.,2006,हिंद स्वराज,नवजीवन प्रकाशन,अहमदाबाद,पृ. स.(71)
6. गांधी,एम.के.,2019,ग्राम-स्वराज(सं. हरिप्रसाद व्यास),प्रभात प्रकाशन,दिल्ली,पृ.स.(59)
7. गाँधी, महात्मा,1971,संपूर्ण गाँधी वांग्मय(अक्टूबर,1929 से फरवरी,1930)नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद, भारत,पृ.स.(158)
8. Stanley. (2025). ∗India to become world's 3rd-largest economy by 2028∗. [Report]. Economic Times / Business Standard (as reported).
9. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Primary Census Abstract - Census of India 2011. Ministry of Home Affairs, Government of India. https://censusindia.gov.in
10. भारती, सत्यम, 2022, ग्राम-स्वराज की अवधारणा और उसकी प्रासंगिकता, मानस पत्रिका, हिंद प्रिंटिंग वर्क्स लि.,वाराणसी,पृ. स.(14-15)
11. कुमारप्पा, जे.सी., 2010,गांधी अर्थ-विचार (अनु.-सुरेश शर्मा), अ.भा.सर्व सेवा संघ प्रकाशन,वाराणसी, पृ.स.(22)
12. प्रधान, रामचंद्र, 2017, राज से स्वराज, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली,पृ.स.(269)

मगध प्रमंडल में शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच को बढ़ाने में शिक्षकों की भूमिका

डॉ. ज्योत्सना प्रसाद*

सार–

यह अध्ययन मगध प्रमंडल के गया जिले के संदर्भ में किया गया है, जहाँ सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों– जैसे अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अति पिछड़ा वर्ग एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की शैक्षिक स्थिति अब भी पिछड़ी हुई है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि शिक्षक, विशेषकर ग्रामीण (100) और शहरी (100) शिक्षकों, की भूमिका पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच को बढ़ाने और सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहित करने में कितनी प्रभावी है। अनुसंधान में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण शिक्षक समुदाय से अधिक गहरे रूप से जुड़े होते हैं और शिक्षा को सामाजिक चेतना फैलाने का माध्यम मानते हैं, जबकि शहरी शिक्षक अपेक्षाकृत संसाधनों से सम्पन्न होते हुए भी सामुदायिक संवाद में कमजोर पाए गए। दोनों ही वर्गों के शिक्षक, अपनी–अपनी सीमाओं में, शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बदलाव की दिशा में कार्य कर रहे हैं, लेकिन उनकी प्रभावशीलता में अंतर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अध्ययन का तथ्य को रेखांकित करता है कि यदि शिक्षकों को केवल शिक्षण तक सीमित न रखकर सामाजिक नेता और मार्गदर्शक के रूप में तैयार किया जाए, तो वे पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच को सशक्त बना सकते हैं और समाज में सकारात्मक परिवर्तन की नींव रख सकते हैं।

मुख्य शब्द– शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता, पिछड़े वर्ग, सामुदायिक सहभागिता, एवं शिक्षक की भूमिका आदि।

शिक्षा किसी भी समाज की रीढ़ होती है। यह न केवल ज्ञान का स्रोत है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक प्रगति, और सांस्कृतिक विकास का भी आधार है। विशेष रूप से भारत जैसे विविधतापूर्ण और सामाजिक रूप से स्तरीकृत देश में शिक्षा एक ऐसा साधन बनकर उभरी है, जो व्यक्ति को केवल बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक रूप से भी सशक्त बनाती है। पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का वह सीढ़ी है, जिसके सहारे वे अपने जीवन की दशा और दिशा दोनों को परिवर्तित कर सकते हैं। शिक्षा को समाज में सामाजिक परिवर्तन और समानता लाने का प्रमुख साधन माना जाता है। विशेषकर भारत जैसे बहुस्तरीय सामाजिक ढांचे वाले देश में शिक्षा न केवल व्यक्तियों की आर्थिक उन्नति, बल्कि उनकी सामाजिक गतिशीलता का भी आधार बनती है।

भारत में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी साधन माना गया है। विशेषतः ग्रामीण और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच सामाजिक गतिशीलता की नींव बनती है। मगध प्रमंडल (बिहार) जैसे क्षेत्र, जहाँ सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और आर्थिक विषमता जैसी समस्याएँ व्याप्त हैं, वहाँ शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का माध्यम न होकर सामाजिक मुक्ति का भी साधन है।

शिक्षा किसी भी समाज की रीढ़ होती है। यह न केवल ज्ञान का स्रोत है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक प्रगति, और सांस्कृतिक विकास का भी आधार है। विशेष रूप से भारत जैसे विविधतापूर्ण और सामाजिक रूप से स्तरीकृत देश में शिक्षा एक ऐसा साधन बनकर उभरी है, जो व्यक्ति को केवल बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक रूप से भी सशक्त बनाती है। पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए शिक्षा सामाजिक गतिशीलता (वबपंस डवइपसपजल) का वह सीढ़ी है, जिसके सहारे वे अपने जीवन की दशा और दिशा दोनों को परिवर्तित कर सकते हैं।

मगध प्रमंडल, बिहार का एक ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो आज भी सामाजिक विषमता, जातीय विभाजन, आर्थिक असमानता और शैक्षणिक पिछड़ेपन से जूझ रहा है। गया जिला, जो मगध प्रमंडल का प्रमुख हिस्सा है, इस सामाजिक संरचना का एक सटीक प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ पिछड़े वर्गों– विशेष रूप से अन्य पिछड़ा वर्ग, अति पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जातियाँ और आर्थिक रूप से

* पी–एच0 डी0, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

कमजोर वर्गों की एक बड़ी जनसंख्या निवास करती है, जिनकी शैक्षणिक स्थिति अब भी चिंता का विषय बनी हुई है।

ऐसे परिदृश्य में शिक्षकों की भूमिका केवल एक ''पाठ पढ़ाने वाले'' तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन के संवाहक के रूप में उभरती है। शिक्षक, विशेषकर ग्रामीण और शहरी परिवेश में कार्यरत शिक्षक, विद्यार्थियों के जीवन में प्रेरणा, मार्गदर्शन और सामाजिक चेतना के वाहक होते हैं। वे न केवल विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करते हैं, बल्कि समुदाय से संवाद स्थापित करके, जागरूकता फैलाकर, और अभिभावकों को प्रेरित कर समाज में शिक्षा के महत्व को स्थापित करते हैं।

शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानने की परंपरा भारतीय समाज में नई नहीं है। समाजशास्त्रियों, शिक्षाविदों, और दार्शनिकों ने शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता का उपकरण बताया है; विशेषकर सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के लिए।

पाउलो फ्रेरे (1970) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Pedagogy of the Oppressed" में उन्होंने शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का उपकरण बताया और शिक्षक को जागरूकता पैदा करने वाला एजेंट कहा।[1]

मैक्स वेबर (1947) के अनुसार, शिक्षा सामाजिक स्थिति प्राप्त करने का एक वैध और स्वीकृत माध्यम है। उन्होंने "Status Attainment" मॉडल में शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता का केंद्रीय स्तंभ बताया।[2]

डॉ. भीमराव अंबेडकर (1936) उन्होंने शिक्षा को शोषित वर्गों की मुक्ति का पहला चरण बताया। उनके अनुसार, शिक्षा वह हथियार है जिससे समाज बदला जा सकता है।[3]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP–2020) इस नीति में स्पष्ट किया गया है कि शिक्षकों को 'सामाजिक प्रेरक' और 'स्थानीय नेतृत्वकर्ता' की भूमिका में देखा जाए।[4]

प्रथम संस्था की ASER रिपोर्ट (2021) इस रिपोर्ट में बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता और शिक्षक सहभागिता पर चिंता जताई गई है। रिपोर्ट में बताया गया कि शिक्षक जितना समुदाय से जुड़ते हैं, शिक्षा की पहुँच उतनी ही सशक्त होती है।[5]

बिहार शिक्षा परियोजना परिषद (BEPC) की रिपोर्ट (2020) में शिक्षक प्रशिक्षण, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, और पिछड़े वर्गों की शैक्षिक भागीदारी बढ़ाने के लिए सामुदायिक सहभागिता की आवश्यकता बताई गई।[6]

राजेन्द्र प्रसाद (2007) ग्रामीण समाज और शिक्षा उन्होंने बिहार के ग्रामीण समाज में शिक्षा की बाधाओं को जातिगत संरचना, आर्थिक असमानता और सामाजिक रूढ़ियों से जोड़कर देखा।[7]

प्रो. योगेंद्र यादव (CSDS 2015) उनके अनुसार शिक्षा केवल औपचारिक संस्थान नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक और सामाजिक चेतना का भी आधार है। विशेष रूप से पिछड़े वर्गों में यह चेतना शिक्षकों के माध्यम से आती है।[8]

अध्ययन की आवश्यकता – भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में शिक्षा केवल एक अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक समानता की कुंजी मानी जाती है। सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग– जिनमें अनुसूचित जातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग, अति पिछड़ा वर्ग, और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग शामिल हैं– आज भी शिक्षा के क्षेत्र में मुख्यधारा से पीछे हैं। इन वर्गों में शैक्षणिक पिछड़ापन केवल आर्थिक संसाधनों की कमी से नहीं, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक अवरोधों, जातीय भेदभाव, लैंगिक असमानता और जागरूकता के अभाव से भी उत्पन्न होता है।

मगध प्रमंडल, विशेष रूप से गया जिला, इस सामाजिक असमानता का जीवंत उदाहरण है। यहाँ शिक्षा की पहुँच में क्षेत्रीय, जातिगत और वर्गीय अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं– जैसे सर्व शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन योजना, छात्रवृत्ति योजनाएँ आदि के बावजूद पिछड़े वर्गों में नामांकन, उपस्थिति और अधिगम स्तर अभी भी चिंताजनक है।

इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। एक शिक्षक न केवल शिक्षा का प्रसारक होता है, बल्कि वह समाज और विद्यालय के बीच सेतु का कार्य करता है। शिक्षक ही वह कड़ी है जो विद्यार्थियों, अभिभावकों और समुदाय के बीच संपर्क बनाकर शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता में परिवर्तित कर सकता है। किंतु प्रश्न यह है कि क्या शिक्षक इस भूमिका को सक्रिय रूप से निभा रहे हैं? क्या ग्रामीण और शहरी शिक्षक इस संदर्भ में अलग–अलग दृष्टिकोण रखते हैं?

इन सभी बिंदुओं की गहन पड़ताल हेतु यह अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है, ताकि यह समझा जा सके कि शिक्षकों का सामाजिक दायित्व और उनका कार्य व्यवहार किस सीमा तक पिछड़े वर्गों की शिक्षा को प्रभावित कर रहा है और क्या यह शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का साधन बन रही है या नहीं।

अध्ययन का उद्देश्य– अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य गया जिले के 200 शिक्षकों (100 ग्रामीण, 100 शहरी) जो कि मगध प्रमंडल के गया जिले से चयनित किए गए थे के माध्यम से यह समझना है कि किस प्रकार शिक्षक, विशेष रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए, शिक्षा की पहुँच को सुलभ और प्रभावी बनाते हैं। क्या ग्रामीण और शहरी शिक्षक अपनी भूमिकाओं में भिन्नता रखते हैं? क्या शिक्षक सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं या फिर उनकी भूमिका केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित है?

1. यह विश्लेषण करना कि शिक्षक किस प्रकार पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच बढ़ाने के लिए कार्य कर रहे हैं, विशेषकर मगध प्रमंडल के गया जिले में।
2. ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की कार्यशैली, सामाजिक भागीदारी, और समुदाय से जुड़ाव में भिन्नताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. यह जानना कि शिक्षकों की भूमिका सामाजिक गतिशीलता में कितनी प्रभावी है– क्या शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों की सामाजिक स्थिति में सुधार हो रहा है?
4. यह परीक्षण करना कि शिक्षक किस सीमा तक सरकार की योजनाओं को जमीनी स्तर पर प्रभावी रूप से लागू कर रहे हैं, और क्या वे समुदाय के साथ सहयोगपूर्ण संबंध बना पा रहे हैं?

अध्ययन की पृष्ठभूमि इस विचार पर आधारित है कि शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के बीच एक सीधा और गहरा संबंध है। यह भी देखा गया है कि जहाँ शिक्षक सामाजिक सरोकारों के प्रति जागरूक होते हैं, वहाँ शिक्षा का प्रभाव व्यापक और स्थायी होता है। इस अध्ययन में शिक्षकों की उस भूमिका की भी पड़ताल की गई है, जो वे शिक्षा को सामाजिक न्याय, समानता और सशक्तिकरण के उपकरण के रूप में प्रयुक्त करने में निभाते हैं।

मगध प्रमंडल जैसे क्षेत्र में सामाजिक गतिशीलता को केवल सरकारी योजनाओं या नीतियों से नहीं मापा जा सकता, बल्कि वहाँ के स्थानीय शिक्षक समुदाय, विशेष रूप से वे जो वंचित वर्गों के साथ प्रत्यक्ष संवाद में हैं, उनकी सहभागिता से ही वास्तविक परिवर्तन संभव है। शिक्षक जब समाज के भीतर सक्रिय भूमिका निभाते हैं, तो वे न केवल ज्ञान का प्रसार करते हैं, बल्कि वे सामाजिक बाधाओं को तोड़ने वाले पुल का भी कार्य करते हैं।

अध्ययन का केंद्र गया जिला है, जो मगध प्रमंडल का प्रमुख हिस्सा है और सामाजिक दृष्टि से विविध व जटिल संरचना लिए हुए है। यहाँ के शिक्षक, विशेषतः ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षक, केवल शिक्षा देने वाले नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के संवाहक भी हैं। यह लेख विशेष रूप से यह जानने का प्रयास करता है कि किस प्रकार शिक्षक ग्रामीण और शहरी दोनों पिछड़े वर्गों तक शिक्षा की पहुँच बढ़ाकर सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाते हैं। अध्ययन का समाजशास्त्रीय महत्व इसलिए भी है क्योंकि यह केवल आंकड़ों का विश्लेषण नहीं करता, बल्कि उस गूढ़ और गहरे संबंध की पड़ताल करता है जो शिक्षक, समाज और शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता के बीच जुड़ा होता है।

यह अध्ययन इस बात की पुष्टि करता है कि यदि शिक्षक को एक सामाजिक नेता और परिवर्तनकर्ता के रूप में देखा जाए और उसी दृष्टि से प्रशिक्षित किया जाए, तो शिक्षा एक सशक्त सामाजिक क्रांति का माध्यम बन सकती है।

परिकल्पना– शिक्षक पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच को प्रभावी रूप से बढ़ाने में सहायक होते हैं और सामाजिक गतिशीलता को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परिणाम– शिक्षक पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच को प्रभावी रूप से बढ़ाने में सहायक होते हैं और सामाजिक गतिशीलता को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। टी–अनुपात विश्लेषण ग्रामीण बनाम शहरी शिक्षक सारणी–1 में

सारणी–1

मापदंड	ग्रामीण औसत	शहरी औसत	टी–अनुपात	परिणाम
सामाजिक सहभागिता स्कोर	4.2	3.4	2.87	$p < 0.05$
तकनीकी शिक्षण उपकरणों का उपयोग	2.6	4.1	-3.12	$p < 0.05$
समुदाय के साथ संवाद	4.5	3.1	3.48	$p < 0.05$

सारणी–1 में ग्रामीण शिक्षक सामुदायिक जुड़ाव में शहरी शिक्षकों से आगे हैं, जबकि शहरी शिक्षक तकनीकी रूप से टी–अनुपात– सामाजिक सहभागिता स्कोर में 2.87, तकनीकी शिक्षण उपकरणों का उपयोग में -3.12 वहीं समुदाय के साथ संवाद में 3.48, $df=198$, $p < 0.05$ अधिक सक्षम पाए गए। दोनों की भूमिकाएँ अलग–अलग प्रकार से प्रभावी हैं। कई ग्रामीण शिक्षकों ने बताया कि वे स्वयं विद्यार्थियों के घर जाकर उन्हें विद्यालय आने के लिए प्रेरित करते हैं। शहरी क्षेत्रों में शिक्षक सामाजिक सहभागिता की बजाय अकादमिक प्रदर्शन पर अधिक केंद्रित पाए गए। कुछ शिक्षकों ने पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए निःशुल्क ट्यूशन क्लास प्रारंभ किए हैं। शहरी विद्यालयों में शिक्षक–अभिभावक संवाद अपेक्षाकृत कमजोर रहा।

अतः ग्रामीण शिक्षक सामाजिक जागरूकता और समुदाय से जुड़ाव में आगे हैं, जो पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच के लिए महत्त्वपूर्ण है। शहरी शिक्षक संसाधनों और तकनीकी नवाचारों के उपयोग में दक्ष हैं, लेकिन सामाजिक सहभागिता की दृष्टि से पीछे हैं। दोनों ही प्रकार के शिक्षक अपने–अपने स्तर पर सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित कर रहे हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और कार्यशैली में भिन्नता है। शिक्षक जब केवल 'शिक्षण' तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समाज से जुड़ते हैं, तब शिक्षा वास्तव में सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनती है।

चर्चा– अध्ययन में प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक समाज में न केवल शिक्षा के वाहक हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के सक्रिय एजेंट भी हैं। गया जिले के ग्रामीण और शहरी दोनों शिक्षक अपनी–अपनी परिस्थितियों और संसाधनों के अनुसार पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। ग्रामीण शिक्षक जहां समुदाय के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए रखते हैं और घर–घर जाकर जागरूकता अभियान चलाते हैं, वहीं शहरी शिक्षक तकनीकी संसाधनों का बेहतर उपयोग कर पढ़ाई को अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

इस प्रकार, ग्रामीण शिक्षक सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षा को एक सामाजिक आंदोलन के रूप में देखते हैं, जबकि शहरी शिक्षक इसे अधिक अकादमिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण से देखते हैं। यह भिन्नता शिक्षकों के कार्यक्षेत्र, संसाधन उपलब्धता, और स्थानीय सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश पर निर्भर करती है।

शिक्षकों की सामाजिक नेतृत्व क्षमता एवं जागरूकता की कमी या अधिकता सीधे तौर पर शिक्षा की गुणवत्ता एवं विद्यार्थियों की सामाजिक उन्नति को प्रभावित करती है। यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि शिक्षक केवल पाठ्यक्रम पढ़ाने तक सीमित रहकर सामाजिक परिवर्तन की भूमिका पूरी तरह नहीं निभा सकते। उन्हें समुदाय के साथ संवाद, अभिभावकों की भागीदारी, और सामाजिक बाधाओं को समझकर उसका निराकरण करना होगा।

निष्कर्ष– शिक्षक पिछड़े वर्गों में शिक्षा की पहुँच बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेष रूप से वे शिक्षक जो समुदाय के करीब हैं और सामाजिक जागरूकता फैला रहे हैं। ग्रामीण शिक्षक सामाजिक सहभागिता और जागरूकता अभियान में अधिक सक्रिय हैं, जिससे सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिलता है। शहरी शिक्षक तकनीकी संसाधनों का बेहतर उपयोग करते हैं, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होता है, परंतु सामाजिक जुड़ाव की कमी है। सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षकों का सामाजिक नेतृत्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यक है, जिससे वे सामाजिक बदलाव के एजेंट बन सकें। शिक्षा को केवल अकादमिक उपलब्धि तक सीमित न रखकर इसे सामाजिक परिवर्तन के एक उपकरण के रूप में देखना चाहिए।

सुझाव– शिक्षकों के लिए नियमित सामाजिक नेतृत्व एवं संवेदनशीलता प्रशिक्षण आयोजित किए जाएं, जिससे वे समुदाय के साथ बेहतर संवाद स्थापित कर सकें। ग्रामीण और शहरी दोनों ही शिक्षकों के लिए सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देने वाले कार्यशालाएं आयोजित हों। टेक्नोलॉजी के प्रभावी उपयोग के साथ सामाजिक जागरूकता कार्यक्रमों का संयोजन हो, ताकि दोनों दृष्टिकोणों का संतुलन बना रहे। सरकार एवं स्थानीय प्रशासन को शिक्षकों के कार्यों में सहयोग करना चाहिए, विशेषकर अभिभावकों और पंचायत प्रतिनिधियों के साथ समन्वय बढ़ाने के लिए। पिछड़े वर्गों के बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष कार्यक्रम एवं वित्तीय सहायता प्रदान की जाए, ताकि सामाजिक एवं आर्थिक बाधाओं को दूर किया जा सके। विद्यालयों में शिक्षक–छात्र–अभिभावक संवाद को सुदृढ़ किया जाए, जिससे शिक्षा की पहुँच अधिक समावेशी हो। षिक्षकों को सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को समझने और सम्मान देने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फ्रेयर, पाउलो. उत्पीड़ितों का शिक्षणशास्त्र. ब्लूम्सबरी, 1970।
2. वेबर, मैक्स. अर्थव्यवस्था और समाज. कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 1947।
3. अम्बेडकर, बी.आर. जाति का विनाश. 1936।
4. एनसीईआरटी. शिक्षक शिक्षा स्थिति पत्र, 2019।
5. प्रथम. शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट (एएसईआर), 2021।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 2020।
7. प्रसाद, राजेंद्र. ग्रामीण समाज और शिक्षा, राजकमल प्रकाशन, 2007।
8. यादव, योगेंद्र. सामाजिक न्याय और शिक्षा, सीएसडीएस अध्ययन पत्र, 2015।

हिंदी साहित्य में आदिवासी की स्थिति और संवेदनाएं

पी सोमा शेखर*

आदिवासी का अर्थ होता है मूल निवासी। पर्वतों, पहाड़ों, जंगलों तथा नगर से दूर बासनेवाला अर्थात आदिवासी। इस संदर्भ में कई विद्वानों ने परिभाषा दी है जो इस तरह है - आदिवासी की परिभाषा बताते हुए रमणिका गुप्ता ने कहा है - "बिना जंगल, अपनी भाषा, जीवन शैली, मूल्यों के बिना आदिवासी, आदिवासी नहीं रह सकता । आदिवासी इस देश का मूल निवासी है ।"[1]

डा. विनायक तुमराम ने कहा कि - "एक विशेष पर्यावरण में रहनेवाला, एक -सी बोली बोलनेवाला, समान जीवन, शैली से सजा, एक से देवी - देवताओं को माननेवाला, समान सांस्कृतिक जीवन यापन करने वाला परन्तु अक्षर ज्ञान रहित यानी आदिवासी ।"[2]

रत्नाकर भेंगरा तथा सी.आर बिजोय ने कहा कि - "आदिवासी के शाब्दिक के शाब्दिक अर्थ से ज्ञात होता है आदि निवासी यानी किसी स्थान पर निवास करनेवाला या प्रथम निवासी ।"[3]

गिलिन और गिलिन ने अपनी रचना 'कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी' में जनजाति की परिभाषा देते हुए लिखा है- "स्थानीय जनजातीय समूहों को ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है, तथा जिसकी सामान्य संस्कृति है।"[4]

क्रोबर और गिलिन ने आदिवासियों की सामान्य संस्कृति को महत्त्व दिया है।

रिवर्स के अनुसार- "यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समुह है, जिसके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिये सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।"[5]

डॉ. मजूमदार ने कहा है कि -"आदिवासी जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक समूह है, जो सामान्य नाम धारण किए हुए हैं। इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर निवास करते हैं और एक भाषा-भाषी, विवाह की प्रथाओं तथा कारोबार संबंधी एक ही नियम का पालन करते हैं। वे आदान-प्रदान संबंधी पारस्परिक व्यवहार को विकसित करते हैं। साधारणतः आदिवासी जनजाति अन्तर्विवाह सिद्धांत का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अन्तर्गत विवाह करते हैं। कई गोत्र मिलाकर मिलकर आदिवासी जनजाति की रचना करते हैं। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त-संबंध जुड़ा होता है। इनमें या तो अनेक लघु वर्ग एक वृहत् वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं, अन्य या उनका वंश परम्परागत सरदार होता है। इस तरह आदिवासी जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है।"[6]

आदिवासी साहित्य बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरु हुआ अस्मितामूलक रूप से । इसके केंद्र में आदिवासियों के जल जंगल जमीन और जीवन की चिंताएं हैं। माना जाता है कि १९९१ के बाद भारत में शुरु हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिम काल से संचित आदिवासियों की संपदा के लूट का रास्ता भी खोल दिया। विशाल एवं अत्यंत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय एवं देशी कंपनियों ने आदिवासी समाज को उनके जल, जंगल और जमीनों से बेदखल कर दिया। इसने आदिवासी विस्तारों में बड़े पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया। बड़ी संख्या में झारखंड, गुजरात , छत्तीसगढ़, दार्जिलिंग आदि इलाकों से लोग बड़े महानगरों जैसे दिल्ली, कोलकाता आदि में आने को विवश हुए। इन आदिवासी लोगों के पास न धन था, न ही आधुनिक शिक्षा थी। शहरों में ये दिहाड़ी मजदूर या घरेलु नौकर बनने को बाध्य हुए। विशालकाय महानगरों ने इनकी संस्कृति, लोकगीतों और साहित्य को भी निगल लिया। नई पीढ़ी के कुछ आदिवासियों ने शिक्षा हासिल की और अवसरों का लाभ उठाकर सामर्थ्य अर्जित किया। उन्होंने सचेत रूप से अपने समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए आवाज उठाना आरंभ किया। उन्होंने संगठन भी बनाए। आदिवासियों ने अपने लिए इतिहास की नए सिरे से तलाश की। उन्होंने अपने नेताओं की

* लेक्चर इन हिंदी, गवर्नमेंट कॉलेज ए अनंतपुर, आंध्र प्रदेश

पहचान की। अपने लिए नेतृत्व का निर्माण किया। साथ ही समर्थ आदिवासी साहित्य को जन्म दिया। प्रतिरोध अस्मितामूलक साहित्य की मुख्य विशेषता है। आदिवासी साहित्य में संवेदनाएं, आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व संबंधी संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है। यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति भेदभाव का विरोधी है। यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के 'आत्मनिर्णय' के अधिकार की माँग करता है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के मत हैं-

(1) आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।

(2) आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।

(3) 'आदिवासियत' (आदिवासी दर्शन) के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है।

पहली अवधारणा गैर-आदिवासी लेखकों की है। परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी हैं। जैसे- रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, गणेश देवी आदि गैर-आदिवासी लेखक, और हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, आईवी हांसदा आदि आदिवासी लेखक।

दूसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों की है जो जन्मना और स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं।

अंतिम और तीसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों की है, जो 'आदिवासियत' के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐसे लेखकों और साहित्यकारों के भारतीय आदिवासी समूह ने 14-15 जून 2014 को रांची (झारखंड) में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में इस अवधारणा को ठोस रूप में प्रस्तुत किया, जिसे 'आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा-पत्र' के तौर पर जाना जा रहा है और अब जो आदिवासी साहित्य की संवेदनाओं का केन्द्रीय बिंदु बन गया है।

आदिवासी संवेदनाओं संबंधी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास आदि प्रमुख विधाओं में रचनाएं हुई हैं। इनमें कविता सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है। प्रमुख आदिवासी कविता संग्रहों में झारखण्ड की संथाली कवयित्री निर्मला पुतुल की 'नगाड़े की तरह बजते शब्द'; रामदयाल मुंडा का 'नदी और उसके संबंधी तथा अन्य नगीत' और 'वापसी, पुनर्मिलन और अन्य नगीत' आदि हैं। इसी तरह कुजूर, मोतीलाल और महादेव टोप्पो की कविताएं भी अपने प्रतीक चरित्रों और घटनाओं की कथात्मक संशलिष्टता के कारण विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रही हैं। मुक्त बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के दौर में आदिवासी कभी पैसे और कभी सरकारी नियमों के बल पर अपनी जमीन से बेदखल होकर पलायन कर रहे हैं। इसके कारण आदिवासी भाषा एवं संस्कृति संकट में पड़ गई है। परंपरागत खेलों से लेकर आदिवासियों की लोक-कला तक विलुप्त होती जा रही है। यह संकट वामन शेलके के यहाँ इस रूप में है-

"सच्चा आदिवासी
कटी पतंग की तरह भटक रहा है,
कहते हैं, हमारा देश
इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा है।"[7]

मदन कश्यप की कविता "आदिवासी" बाजार के क्रूर चेहरे को सामने लाती है-

"ठण्डे लोहे-सा अपना कन्धा ज़रा झुकाओ,
हमें उस पर पाँव रखकर लम्बी छलाँग लगानी है,
मुल्क को आगे ले जाना है।
बाज़ार चहक रहा है
और हमारी बेचैन आकांक्षाओं में साथ-साथ हमारा आयतन भी
बढ़ रहा है,
तुम तो कुछ हटो, रास्ते से हटो।"[8]

अनुज लुगुन विस्थापन के भय को स्वर देते हुए लिखते हैं -

"बाज़ार भी बहुत बड़ा हो गया है,
मगर कोई अपना सगा दिखाई नहीं देता।
यहाँ से सबका रूख शहर की ओर कर दिया गया है:
कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा,
उससे पहले नदी गयी,
अब खबर फैल रही है कि
मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है।"[9]

आदिवासी गद्य साहित्य की शुरुआत बीसवीं सदी के आठवें दशक में हुई। वाल्टर भेंगरा ने झारखण्ड अंचल और वहाँ के जीवन को केंद्र में रखते हुए 'सुबह की शाम' उपन्यास लिखा। इसे हिंदी का पहला आदिवासी उपन्यास माना जाता है। पीटर पाल एक्का ने 'जंगल के गीत' लिखा। इस उपन्यास में उन्होंने तुंबा टोली गाँव के युवक करमा और उसकी प्रिया करमी के माध्यम से बिरसा मुण्डा के उलगुलान का संदेश पहुंचाया। आदिवासियों द्वारा लिखे गए उपन्यास समकालीन शिल्प और ढाँचों से दूर दिखाई पड़ते हैं। इस कमी की भरपायी गैर आदिवासियों द्वारा लिखे गए आदिवासी उपन्यासों से कुछ हद तक हो गई है। ऐसे उपन्यासों में रमणिका गुप्ता का 'सीता-मौसी', कैलाश चंद चौहान का 'भँवर', रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' आदि महत्वपूर्ण हैं। आदिवासियों द्वारा लिखे गए हाल के उपन्यासों में हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर' सर्वाधिक उल्लेखनीय है। रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' सिर्फ आग और धातु की खोज करनेवाली और धातु पिघलाकर उसे आकार देनेवाली कारीगर असुर जाति के "जीवन का संतप्त सारांश" है। उपन्यास की शुरुआत इस पीड़ा से होती है- "छाती ठोंक ठोंककर अपने को अत्यन्त सहिष्णु और उदार करनेवाली हिन्दुस्तानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी जगह भी नहीं छोड़ी थी। वे उनके लिए बस मिथकों में शेष थे। कोई साहित्य नहीं, कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के कहीं कोई संकेत्र मात्र भी नहीं' उपन्यास के अंत तक असुर जनजाति की त्रासदी 'व्यापक समाज की त्रासदी का प्रारूप बन जाती है।"[10]

हरिराम मीणा के 'धूणी तपे तीर' में गोविन्द गुरु द्वारा भीलों-मीणों के बीच जागृति फैलाने, संगठित करने और उन्हें अपने हक के लिए बोलना और लड़ना सिखाने तथा बलिदान के लिए तैयार करने की कथा है। यह सन् 1913 ई. में राजस्थान के बाँसवाड़ा अंचल में स्थित मानगढ़ पहाड़ी के आदिवासियों के बलिदान की सच्ची घटना पर आधारित है। आदिवासियों द्वारा सामंतों और औपनिवेशिक शक्तियों की साम्राज्यवादी मानसिकता के विरुद्ध गोविन्द गुरु के नेतृत्व में शांतिपूर्ण विद्रोह का बिगुल बजाया गया जिसने आगे चलकर औपनिवेशिक दमन की प्रतिक्रिया में हिंसक रूप ले लिया। इस उपन्यास में लेखक ने आदिवासी-अस्मिता को शोषित-उत्पीड़ित वर्ग और शोषक वर्ग के बीच के वृहत्तर पारंपरिक संघर्ष के रूप में देखा है।

'सीता-मौसी' एक उपन्यास न होकर दो अलग-अलग उपन्यास है, 'सीता' और 'मौसी'। जो रमणिका गुप्ता द्वारा लिखा गया है । ये उपन्यास आदिवासी अंचल के हैं, जो धीरे-धीरे विकसित होकर एक नए औद्योगिक परिवेश में बदल रहे हैं तथा जहाँ आदिवासी संस्कृति खत्म होती जा रही है। आदिवासी संस्कृति बहुसंख्यक हिन्दू समाज की विकृतियों का शिकार होती जा रही है। आदिवासी समाज मजबूरी में मजदूर बनने को विवश है। इनकी जमीनों और जंगलों को सरकार तथा बाहरी लोगों ने हड़पना शुरू कर दिया। आदिवासी महिला को बाहरी लोग केवल वासना-पूर्ति की वस्तु समझते हैं।

आदिवासी स्त्रियाँ अपनी अस्मिता को बचाने के लिए जूझ रही है। सीता-मौसी उपन्यास की नायिकाएँ सीता और मौसी भी इनमें से एक है। सीता एक आदिवासी महिला है, जो कोयला खदानों में कोयला ढोने का काम करती है। आदिवासी समाज में महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने व छोड़ने की आजादी होती है। सीता के पति की मृत्यु के बाद सीता यूनियन के मुंशी यासीन मियाँ जो कि एक मुसलमान था, आदिवासी रीति-रिवाज से विवाह कर लेती है। यासीन सीता से बहुत प्रेम करता था लेकिन धीरे-धीरे उसका प्रेम समाप्त हो गया और वह उसकी ही जाति की एक लड़की से विवाह कर लेता है। सीता यह सब सोचती हुई कहती है कि -"उन सबके लिए औरत का आधार तब तक मायने नहीं रखता था। सच तो था कि पुरुष-दम्भ ही सीता की त्रासदी का कारण था पर इस सत्य को स्वीकारने की

बजाय, सब दूसरे कारण ही ढूँढने में लगे थे। इस मायने में औरत का महत्व, उस अनुपाततः अधिक मुक्त समाज में भी नहीं ही था। इस समाज में भी औरत को छोड़ देना, रख लेना मामूली बात है, लेकिन वहाँ औरत को मर्द छोड़ने की छूट है।"[11] इन सबके बावजूद भी सीता टूटती नहीं है, बल्कि व अपने समाज के लिए कार्य करती है। किसान से कामगार बन चुकी सीता किसानों का नेतृत्व करने लगी है।

आदिवासी महिलाओं को सभी तरह से शोषण किया जाता है। इन ज्यादा शोषण गैर-आदिवासियों द्वारा ही होता है। सीता भी उसी शोषण का शिकार होती है।

सीता यूनियन की बैठक में भाग लेने लगी है तथा मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। राजनीति के क्षेत्र में भी वह अपनी पकड़ बना रही है तथा जागरुक हो चुकी है। वह इतनी भोली-आली है कि राजनीति के क्षेत्र में हो रही चापलूसियों का उसे कोई पता नहीं है। इन सबके बाद भी वह राम की सीता को परास्त करके एक नई सीता बन गई है, जो अपनी अस्मिता के लिए स्वयं लड़ना सीख गई है।- "त्याग और तपस्या की प्रतीक सीता जब रामायण के युग से निकलकर आज के संघर्षों में भूख से जूझती हुई जवान होती है तो वह सर्वहारा वर्ग के लिए आधुनिक रावणों से लड़ती है। आज की सीता जूझी है हर रिश्ते से, उमर के हर मोड़ पर। उसने मौत से छीना है जिन्दगी को। सीता अब अपने से बाहर खड़ी सीताओं के लिए लड़ने लगी है। सीता अब एक कतार है, एक श्रृंखला है, एक पांत है। पांत जो चुप थी आज तक, बोलने लगी है। पांत-जो जड़ थी सदियों से, अब फुंकारने लगी है। आज की सीता अपने बदलाव की बाढ़ में गली-सड़ी मानसिकता को बहाए ले जा रही है, समुद्र के गर्त में दफनाने के लिए। वह इंतजार में है कि कल जो सूरज निकले, जो हवा बहे, वह उस जैसी सीताओं के हिस्से में भी आए जिससे वे वंचित रही है, सभ्यता के आने के बाद से। सीता ऐसी लपट है जो मनुष्यता के लिए उजाले बाँटती है और दानवता को जलाकर राख करने में समर्थ है।"[12] सीता गाँव न लौटकर खदानों में ही मजदूरों की आवाज बनकर, स्त्री अस्मिता की पहचान बनकर, किसानों और कि हक की लड़ाई लड़ने के लिए संघर्षरत है।

कोयला खदानों में काम करने वाली महिलाओं को मुंशी ठेकेदार रखैल के रूप में रख लेते थे और उनका यौन शौषण व आर्थिक शोषण करते थे। सीता के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। 'मौसी' उपन्यास में आदिवासी समाज का चित्रण भी बखूबी किया गया है। इसमें आदिवासियों की विशेषताएँ बताई गई है। मजदूर वर्ग की जिजीविषा का चित्रण किया गया है-

"ऐसे भी मजदूर वर्ग खासकर आदिवासी लोग 'कल' की योजना बनाने के आदी नहीं होते। वे प्रकृति और उसकी बनाई योजना पर निर्भर करते हैं। प्रकृति की ही नाई उन्हें अपनी मेहनत पर भी पूरा विश्वास रहता है। इनकी खेती, महुआ-सखुआ, जंगल-कटाई, सब का समय प्रकृति द्वारा निर्धारित है। समय पर महुआ-सखुआ फूलेगा-फलेगा-टपकेगा। समय पर बरखा आएगी धान रोपेंगे या छीटेंगे। कटनी-निकौनी करेंगे। घर धान से भरेगा और बाड़ी लौकी, कद्दू और निनुआ या भिंडी से। गाय, बकरी बियोयगी। दूध और माँस मिलेगा। प्रकृति की तरह ही सब नियमबद्ध-सा चलता है। उनका जीवन भी केवल आज पर निर्भर करता है-कल पर नहीं। वे नहीं सोचते कल सूरज उगेगा या नहीं, आज वर्षा हुई है-चलो, हल जोतेंगे। इस वर्ष वर्षा नहीं हुई-अकाल पड़ा है-भूखे मरना है या देश छोड़कर परदेश में काम की खोज में जाना है, सवाल उठता है तो फैसला ले लिया जाता है- 'चलो परदेश चलेंगे-सखुआ के फूल या बीज बीन लेंगे पर जिन्दा जरूर रहेंगे।' दिनचर्या में खलल पड़ जाए तो भी उन्हें स्वीकार्य है। खलल तो रोज ही पड़ता है। प्रकृति भी तो अपनी चाल-मल कभी-कभी बदल ही देती है। सो ऐसे खलल को स्वीकार करना उनकी आदत है। कल काम नहीं मिलेगा तो भूखे-उपासे लौट आएँगे पर भीख नहीं माँगेंगे ! जंगल से जड़े उखाड़ कर खाएँगे मर भी जाएँगे-जैसे जंगल में गाछ मरता है और खेत में ओले पड़ने पर 'खड़ी' फसल। बादलों के लिए आकाश अगोरेंगे... जैसे जानवर और पंछी अगोरता है-पपीहा और मोर अगोरता है। बादल बरसेगा तो ये भी चहकेंगे, फुदकेंगे-जैसे चिड़िया चहकती है, फुदकती हैं। पर कल क्या होगा वे यह नहीं सोचते !"[13] 'सीता-मौसी' उपन्यास की दोनों महिलाएं समाज में अपनी एक नई पहचान बनाती है तथा पुरुषवादी समाज में जिंदा रहने के लिए संघर्ष करती हैं ।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'झूलानट' में एक अनपढ़ नारी शीलों की स्त्री-शक्ति की अदम्य कहानी है। शीलों जब विवाह कर अपने पति के घर आती है, तो उसे पति का प्रेम नहीं मिलता और वह उसे छोड़कर चला जाता है। फिर भी

शीलों अपनी पति के प्रेम के लिए न जाने कितने व्रत-उपवास, टोने-टोटके करती है और अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों को निभाती है।

शीलों गाँव की एक साधारण सी औरत है। न ही वह बहुत सुंदर है और न ही बहुत सुघड़ है। वह बिल्कुल अनपढ़ है। मनोविज्ञान और समाजशास्त्र को वह जानती तक नहीं है। पति उसे पसंद नहीं करता है। शीलों के देवर बालकिशन इसके बारे में कहता है कि- "आज सिद्ध कर दिया कि औरत भले उम्र में बड़ी हो, अक्ल में छोटी और टुच्ची होती है।"[14] इस प्रकार के विचार बालकिशन अपनी भाभी शीलों के बारे में रखता है। तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की मार सहते हुए भी शीलों न कुएँ-बावड़ी न आग लगाकर अपने जीवन से छुटकारा पाने के बारे में नहीं सोचती हैं। अपनी पति को वशीकरण के सारे तीर-तरकश टूट जाने के बाद भी उसके पास जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत और एक अडिग धैर्य होता है। उसके भीतर जीवन जीने की जिजीविषा है और वह जीना चाहती। परंतु उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी अंगुली ही उसका भाग्य लिख रही है और उसे ही बदलना चाहिए। एक दिन वह अपनी छठी अंगुली को ही अपने शरीर से अलग कर देती है। बालकिशन शीलों की छठी अंगुली के बारे में सोचता हुआ कहता है कि -"वे पति हैं, भाभी को दगा तले दबा दें या रहम की भीख डाल दें, उनकी मर्जी, उनकी खुशी। इस आँगन में काँटों का छतनार विरह उग आया है, जिसकी छाया में भाभी को बैठना ही होगा। गाँव समाज के चलते या सती देवी का सिंहासन है। भाभी की सभी तारीफ करते हैं और धीरज देते हैं कि उनकी छिंगुली अंगुली से तेज की लौ निकलेगी, जो इस संसार के दुराचारियों को भस्म कर देगी-वे सीधी बैकुठ जाएगी। मरने के बाद भी उनके गीत गाए जाएगें।"[15] आदिवासी समाजों में स्त्रियों को मारना - पीटना आम बात है । इस उपन्यास में अंधविश्वास का भी वर्णन किया गया है ।

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' मध्यप्रदेश के बून्देलखण्ड के जंगलों में बसने वाली जरायमपेशा व खानाबदोश कबूतरा आदिवासियों की उपेक्षित, तिरस्कृत, अपमानित, प्रताड़ित महिला की स्थिति का चित्रण किया गया है। नट, मदारी, कंजर, साँसी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बावरिया, कबूतरे आदि घुमन्तु आदिवासियों की तरह जीवन यापन करने वाली कबूतरा आदिवासियों के जीवन के विविध पहलू, अंधविश्वास, समस्याओं, विवाह, मृत्यु की परम्पराओं, जीवन संघर्ष, विडम्बनाओं व कज्जाओं की भोग लिप्सा का चित्रण किया गया है। इसमें तीन प्रमुख महिलाओं, कदमबाई, भूरी बाई और अल्मा के माध्यम से इस जाति की स्त्रियों के संघर्षमय तिरस्कृत और शोषित जीवन का वर्णन किया गया है। कदमबाई के पति का अपराध में लिप्त होने की वजह से इसे पति की अनुपस्थिति में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आजाद भारत में कबूतराओं की लड़ाई आज भी जारी है। कबूतराओं से संबंध रखने वाले कज्जा (उच्च लोग) लोगों को भी बहिस्कृत कर दिया जाता है- जैसे मंसाराम कदमबाई से संबंध रखने के कारण अपने ही परिवार और समाज में हेय दृष्टि से देखे जाते है। अगर ये लोग अपने परम्परागत पेशों चोरी, डकैती, सेंधमारी और लूटमार, हत्या से अलग होकर, शिक्षित होकर सम्मानित जीवन जीना चाहते है तो उच्च वर्ग के लोग उन्हें आगे बढ़ने नहीं देते है। कदमबाई का बेटा राणा व भूरी बाई का पुत्र रामसिंह पढ़-लिखकर आगे बढ़ना चाहते हैं, उच्च शिक्षा प्राप्त करके अधिकारी बनना चाहते है तो, कज्जा लोग उनके स्वप्नों को चूर-चूर कर देते है।

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका अल्मा को जब उसके पिता रामसिंह पढ़ा-लिख कर कज्जा में शामिल करना चाहते है, तब अनेक व्यक्तियों द्वारा उसका यौन शोषण किया जाता लेकिन अनेक संघर्ष करने बाद अल्मा पूर्व डकैत और समाज कल्याण मंत्री रामशास्त्री जैसी मंत्री को अल्मा इतनी प्रभावित करती है कि वह उसे छूने की कोशिश भी नहीं कर पाता है।

इस उपन्यास में महिलाओं को राजनीति की वस्तु बताया गया है। अल्मा जब सूरजभान की कैद से भाग जाती है तो सूरजभान कहता है कि "मुश्किल यह है कि विरोधी पार्टी के लोग उसे माँ-बहन का दर्जा देकर छाती कूटेंगे। चाँदी हो जाएगी। समाजसेवी संस्थाएँ अलग झंडियाँ ले-लेकर दौड़ पड़ेगी। उनका चलना, फलना-फूलना ऐसी ही घटनाओं पर टिका रहता है। देखना कि कैसे उस लड़की के हगने-मूतने से लेकर महीनादारी तक का हिसाब रखती है और सबसे ज्यादा करीबी सिद्ध होती है। अनुदान पचाने के नायाब तरीके। अपने-अपने दाँव। ऐसा न होता तो देश के बड़े से बड़े

साधु-तांत्रिकों के लंगोट कौन चीर पाता ? हमारे मंडल को कमंडल में धरकर बेतवा में सिराने वाले लोग।" इस बात से यह पता चलता है कि राजनेता वोटों के समय थोड़ा से अच्छा काम करके यश कमाना चाहते है, जिससे वे सत्ता में वापस आ पाये। इस उपन्यास में कबूतरा आदिवासियों की सांस्कृतिक परम्पराओं का भी चित्रण किया गया है। इन आदिवासियों की सबसे अच्छी बात यह है कि ये किसी के मरने पर शोक नहीं मनाते हैं जंगलिया की मृत्यु होने पर उन लोगों की मृत्यु-परम्परा का पता चलता है।

"कुँआरी लड़की से चबूतरा लिपवाया गया। अगरबत्ती जलाई। देवताओं की मढ़िया बनाने के लिये कोरा कपड़ा ताना गया। बारी-बारी से लोग आते। उन्हें काँती पकड़ाई जाती। वे देवी के चबूतरे पर कट्टस का निशान लगाते। पवित्र मंत्र की तरह सबने बोला-कौल जंगलिया का मरण नहीं हुआ, कबूतरा कभी नहीं मरता, रानी पद्मिनी की संतान खत्म नहीं होती। कुनबी मर कर भी नहीं मरते।"[16] आदिवासी लोग गैर आदिवासी की तरह पढ़ना नहीं चाहते तथा स्त्रियों का समाज में क्या दर्जा उनका चित्रण यहां पर किया गया है ।

'जंगल के दावेदार' उपन्यास बंगला उपन्यास 'अरण्येर अधिकारी' का हिंदी अनुवाद है, जो महाश्वेता देवी ने लिखा है। इसमें बिहार के विभिन्न जिलों के वनों में बसने वाले आदिवासियों का चित्रण सजीव ढंग से किया गया है। बीरसा मुण्डा के जीवन का खाका प्रस्तुत किया गया है। इसमें बीरसा के बचपन से लेकर उसकी जेल में मृत्यु तक की कथा कही गई है। बीरसा बचपन से ही पढ़कर एक बड़ा आदमी बनना चाहता था। वह पढ़ने के लिए मिशन में पढ़ने जाता है। लेकिन वहाँ पर मुण्डा सरदार को अपशब्द कहे जाने पर वह वहाँ से वापस आ जाता है तथा गाँव आकर लोगों का भगवान बन जाता है। वह पढ़ा-लिखा होने के कारण सभी को सही राह दिखाने लगता है जिससे लोग उसकी बातों पर भरोसा करने लगते हैं। वह जंगल को अपनी माँ मानता है तथा दिकू लोगों से अपनी जमीन लेना चाहता है, जिन्होंने उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया है। बीरसा सोचता है कि -"धानी ने कहा था कि सब मेरा है, किसी को नहीं दूँगा। अरे जंगल ! तुम बताओ न, तुम्हारी दया छीन लेने का हक किसी को नहीं है न! जंगल का पेट चीरकर वह घने-से-घने में घुसा। जंगल तो सारे मुण्डाओं की माँ है। किन्तु बीरसा समझ रहा था कि उसकी जंगल-माँ रो रही है। जंगल ही उत्पीड़ित है-दिकू लोगों के हाथों, कानून के हाथों आज बंदी है। जंगल-माँ कह रही थी, मुझे बचा, बीरसा ! मैं फिर शुद्ध, पवित्र, निष्कलंक बनूँगी।"[17] इसमें बीरसा जंगल को दिकू लोगों से आजाद कराने का वचन देता है। बीरसा के संघर्ष की कहानी को बड़े ही अच्छे ढंग से उभारा गया है।

बिहार के मुण्डा आदिवासियों के लोकगीतों, उनकी जीजिविषा, जीवन मूल्य, अशिक्षा, अंधविश्वासों का भी इस उपन्यास में जीवन्त चित्रण किया गया है। लोकगीत का एक उदाहरण देखिये-

"बेठ बेगारी दिते मोर माँधे झरे लौ गो।
जमिंदारेर पेयादा ओइ राते दिने ।
ताड़ाय मोरे, काँदि आमि राते दिने।"[18] यहां पर आदिवासियों बेगार की प्रवृत्ति पर संवेदना दिखाई गई है ।

चोट्टि मुण्डा और उसका तीर' उपन्यास में महाश्वेता देवी ने चोट्टि मुण्डा के जीवन को चित्रित किया है। यह उपन्यास 'जंगल के दवेदार' उपन्यास के आगे की कथा है। चोट्टि नदी के किनारे बसे गाँव में चोट्टि मुण्डा निवास करता था। इसी नदी के नाम पर इसका नाम रखा गया था।

प्रस्तुत उपन्यास में चोट्टि मुण्डा के माध्यम से वर्तमान समय की सच्चाईयों को उजागर किया गया है। दिकू लोग आदिवासियों का शोषण करते हैं तथा उनसे बेगार लेते हैं। अशिक्षित आदिवासी मुण्डा अपना जीवन निर्वाह करने के लिए इनको बेगार देता है तथा शोषित होता है। जबकि इन लोगों को ये तक पता नहीं है कि सरकार ने बेगार प्रथा पर रोक लगा दी है और पीढ़ी दर पीढ़ी ये लोग बेगार देते रहते हैं। चोट्टि मुण्डा के द्वारा आदिवासियों के संघर्षमय जीवन तथा शोषण, उत्पीड़न और उसके खिलाफ उसके तेजस्वी और वीरता के संघर्ष को चित्रित किया गया है।

आदिवासी कल्याण परिषद जैसी कल्पनाएँ भी आदिवासियों को बताई जाती है। लेकिन ये सब सिर्फ कागजों में ही चलती है असल जिंदगी से इसका कोई लेना-देना नहीं होता है। -"आदिवासी कल्याण और उन्नति के अधिकारी उखड़े हुए मुण्डाओं को कुटीर उद्योग में मदद दे सकते हैं, छीनी हुई जमीन फिर नहीं दिला सकते। छिना राज्य, राजाओं की खास जमीन का मामला बहुत गड़बड़ होता है। उनके दफ्तर का अधिकार नहीं कि खास जमीन का मामला

बहुत गड़बड़ होता है। उनके दफ्तर का अधिकार नहीं कि पुराण की जमीन दिला दे। उसके सिवा, चार-चार मुण्डा-उराँव-दुसाध- कुरमी-गंजू-धोबी के मिलकर रहने से वह इलाका उनके अख्तियार में नहीं आता था। असली आदिवासी अंचल होने से वे उनको कुटीर उद्योग की उपयोगिता समझा सकते है।"[19] इस प्रकार अधिकारी लोग आदिवासियों को किसी प्रकार की जानकारी नहीं देते तथा अपनी स्वार्थ-सिद्धी करते हैं। सरकार कहने को तो बहुत कुछ करती है लेकिन नाम मात्र के लिए।

'जंगल जहां शुरू होता है ' उपन्यास संजीव द्वारा लिखित एक महत्व पूर्ण उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास में भारत - नेपाल सीमा पर स्थित घने जंगलों में रहने वाले थारू आदिवासियों के जीवन का चित्रण किया गया है । थारूओं ने अंग्रेजी की गुलामी को कभी स्वीकार नहीं किया था । इसी कारण अंग्रेजों ने इसे चोर - डाकू आदिवासी बना दिया । वीणा सिन्हा द्वारा लिखित उपन्यास ' सपनों से बाहर ' में भी आदिवासी संवेदना का चित्रण किया गया है । इसमें लमाना जाति के अंधविश्वास, परंपराओं, वेश भूषा इत्यादि का अंकन किया गया है । ' सहराना ' उपन्यास पुन्निसिंह द्वारा लिखा गया है । इस उपन्यास में राजस्थान के कोटा के दक्षिण पूर्व के कुछ हिस्सों तथा मध्यप्रदेश के ग्वालियर के दक्षिण पश्चिम कुछ इलाकों में फैले सहरिया आदिवासी लोगों के जीवन तथा संवेदना को चित्रित किया गया है ।

मधु कांकरिया ने 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में नक्सलवाद को उभारा है। ये उपन्यास नक्सली भावना से ओतप्रोत, नक्सली उन्मूलन, नक्सलवादी क्रेज और युवाओं में नक्सलवादी बनने की भावनाओं को बयां करता है। नक्सलबाड़ी में हो रहे शोषण का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है।

नक्सलवादियों को बिना वजह जेल में बंद करके उन्हें भिन्न-भिन्न तरीके से यातनाएँ दी जाती है, जिसके चलते, उनकी मौत तक हो जाती थी और पुलिस उसका कोई जवाब नहीं देती थी। गोविंद दा ने जेल में दी गई यातनाओं का वर्णन इस प्रकार दिया है- "उन क्षणों में मैं किस प्रकार बिलबिलाया कि इंसान के दर्जे से नीचे गिराकर भूसे के बारे में इस तरह थुना गया कि पिंडली के ऊपर मेरे पाँवों में जगह-जगह आलू जैसे गूमड़ निकल आए, कि पानी माँगने पर मुझे पेशाब दिया गया, यह सब बताना क्या इतना ही आसान है बस यह समझ लो कि मैं तब तक पीटा जाता रहा जब तक बेहोश नहीं हो गया था।"[20] इस प्रकार की सजा देने में पुलिस महिलाओं पर भी दया नहीं करती थी। गोविंद दा मणि से इस बारे में बताते हुए कहते हैं कि -"उन्हीं दिनों हमारी एक महिला कॉमरेड थी शुश्चा बसु उसके पूरे चेहरे को इसी रमेन ने इस प्रकार दाग दिया था जिस प्रकार बंगाल में विवाह के समय दुल्हन के चेहरे को चंदन और कुंकुम से सजा दिया जाता है।"[21]

प्रस्तुत उपन्यास में मीडिया ने अपना महत्त्वपूर्ण रोल अदा किया है। सरकार जिसे उग्रवादी कहती है, मीडिया उसे उग्रवादी साबित कर देता है। जनता भी उसे सच मानती है नक्सलवादियों की जो छवि मीडिया बताता, मीडिया जो दिखाता है, जनता उसी को सच मानती है। नक्सलवादियों की जो छवि मीडिया बताता जनता उसी छवि को पहचानती है। -"बिना चार्जशीट, बिना अरेस्ट वारंट के घर में घुस जाना, बाल पकड़कर बाहर निकालना, बिना किसी जवाबदेही के दूसरे दिन अखबार में न्यूज छपवा देना, नक्सलियों द्वारा बम-फोड़ और परिणाम स्वरूप सेल्फ डिफेंस (आत्मरक्षा) में उसकी मृत्य जैसी घटनाएँ तो शहर का रिवाज हो चुकी थी।"[22] इस उपन्यास में लेखक ने दक्षिणी बिहार के आदिवासियों की व्यथा ,संवेदना को अभिव्यक्त किया है । रमेश कुमार सिंह ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में झारखंड आदिवासियों के शोषण ,उत्पीड़न और अत्याचारों में फंसे लोगों का निरूपण किया है । प्रस्तुत उपन्यास में भारत की शिक्षा व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है । इस उपन्यास में संघर्ष शील संजीव और आदिवासी स्त्री रंगेनी की कथा है । राकेश सिंह द्वारा लिखित उपन्यास ' जो इतिहास में नही है ' की कथा 'हूल' आंदोलन से जुड़ी हुई है । संजीव बख्शी का 'भूलन कांदा' उपन्यास छत्तीसगढ़ के ग्रामीण आदिवासियों की संवेदना पर लिखा गया उपन्यास है । महाश्वेता देवी की इतवा मुंडा कहानी में आदिवासियों अंकन किया गया है।

आदिवासी साहित्य के विकास में पत्र - पत्रिकाओं की योगदान रहा है जैसे - आदिवासी साहित्य नई दिल्ली से गंगा सहाय मीणा, अरावली उद्घोष बी. पी. वर्मा, आदिवासी सत्ता के. आर.शाह, झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा रांची से वंदना टेटे, युद्धरत आम आदमी दिल्ली से रमणिका गुप्ता, तरंग भारती पुष्पा टेटे, देशज स्वर सुनील

मिंज इत्यादि द्वारा संपादित । इनका भी योगदान हिंदी में आदिवासी साहित्य में संवेदनाओं को जगाने को उद्घाटित करने में विशिष्ट स्थान रहा हैं ।

प्राचीन काल से ही आदिवासी वनों और पहाड़ों में रह रहे हैं । जीविकोपार्जन के लिए वनों पर ही निर्भर रहते हैं । आदिवासियों की मुख्य समस्या जल, जंगल, जमीन से जुड़ी हुई हैं । विकास के नाम पर विस्थापित करके इन्हें जंगलों से खदेड़ा जा रहा है । इन सभी समस्याओं का चित्रण आदिवासी साहित्य में हो रहा हैं ।

सारांश के रूप में वर्तमान में आदिवासी हिंदी साहित्य समृद्ध हो चुका है। साहित्यकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आदिवासी साहित्य लिखा है। इन लेखकों ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी जीवन के अनेकानेक पक्षों, उनकी समस्याओं तथा परिणामों को संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति दी है। यह आदिवासी साहित्य हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है।

इस तरह अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे, आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों और उनकी संस्कृति को स्वर देता आदिवासी साहित्य एक नये ढंग से इनके अपरिचित पहलुओं को, संवेदनाओं को उजागर कर रहा है।

संदर्भ - संकेत :-

1. **डा.रमणिका** गुप्ता. स्वयं साक्षात्कार द्वारा
2. आदिवासी कौन ? संपादक. डा. रमणिका गुप्ता. पृ.27
3. वही. पृ.36
4. भारतीय जनजातियां. संरचना एवम् विकास. डा. हरिश्चंद्र उप्रेती. पृ.1
5. वही
6. राजस्थान के आदिवासी. डा. एस.के.सोनी. पृ.9
7. सच्चा आदिवासी. वामन शेलके. पृ.20
8. आदिवासी. मदन कश्यप. पृ.34
9. मेरा गांव. अनुज लुगुन. पृ.23
10. ग्लोबल गांव के देवता. रनेंद्र. पृ .90
11. सीता - मौसी. डा.रमणिका गुप्ता. पृ.39
12. वही. पृ.4
13. वही. पृ.148
14. झुला नट. मैत्रेई पुष्पा. पृ.91
15. वही. पृ.60
16. अल्मा कबूतरी. मैत्रेई पुष्पा. पृ.312
17. जंगल के दावेदार. महाश्वेता देवी. पृ.87
18. वही. पृ.33
19. चोट्टी मुंडा और उसका तीर. महाश्वेता देवी. पृ.130
20. खुले गगन के लाल सितारे. मधु कांकरिया. पृ.31
21. वही.
22. वही. पृ.123

वर्तमान चुनाव प्रणाली की चुनौतियां और समाधान

लक्ष्मी नारायण*

चुनाव-लोकतंत्र और राजनीति का आधार स्तम्भ है। स्वतंत्रता के बाद से भारत में चुनावों ने एक लम्बा रास्ता तय किया हैं। "1951-52 को हुए आम चुनावों में मतदाताओं की संख्या 17,32,12,343 थी, जो 2014 में बढ़कर 81,45,91,184 हो गई है।"[1] 2004 में, भारतीय चुनावों में 670 मिलियन मतदाताओं ने भाग लिया (यह संख्या दूसरे सबसे बड़े यूरोपीय संसदीय चुनावों के दोगुने से अधिक थी)" और इसका घोषित खर्च 1989 के मुकाबले तीन गुना बढ़कर $300 मिलियन हो गया। इन चुनावों में दस लाख से अधिक इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का इस्तेमाल किया गया।"[2] - "2009 के चुनावों में 714 मिलियन मतदाताओं ने भाग लिया ।"[3] "(अमेरिका और यूरोपीय संघ की संयुक्त संख्या से भी अधिक)"[4]

मतदाताओं की विशाल संख्या को देखते हुए चुनावों को कई चरणों में आयोजित किया जाना जरूरी हो गया है (ई .2004 के आम चुनावों में चार चरण थे और 2009 के चुनावों में पांच चरण थे)। चुनावों की इस प्रक्रिया में चरणबद्ध तरीके से काम किया जाता है, इसमें भारतीय चुनाव आयोग द्वारा चुनावों की तिथि की घोषणा, जिससे राजनैतिक दलों के बीच 'आदर्श आचार संहिता' लागू होती है, आचार संहिता से लेकर परिणामों की घोषणा और सफल उम्मीदवारों की सूची राज्य या केंद्र के कार्यकारी प्रमुख को सौंपना शामिल होता है। परिणामों की घोषणा के साथ चुनाव प्रक्रिया का समापन होता है और नई सरकार के गठन का मार्ग प्रशस्त होता है । परिणाम लम्बे समय के बाद आता है, दूसरे देशों की अपेक्षा में भारत में यह भी एक चुनौती ही है भारत में वर्तमान चुनाव के लिए, राष्ट्रपति चुनाव (लोकसभा एवं राज्य सभा और विधान सभा → राष्ट्रपति)

भारत के राष्ट्रपति का चुनाव 5 साल के लिए अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके लिए निर्वाचन मंडल का प्रयोग किया जाता है जहां लोक सभा व राज्य सभा के सदस्य और भारत के सभी प्रदेशों तथा क्षेत्रों की विधान सभाओं के सदस्य अपना वोट डालते हैं।

भारतीय संसद में राष्ट्रप्रमुख-भारत के राष्ट्रपति-और दो सदन शामिल हैं जो विधानमंडल होते हैं। भारत के राष्ट्रपति का चुनाव पांच वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है जिसमें संघ और राज्य के विधानमंडलों के सदस्य शामिल होते हैं।

भारत की संसद के दो सदन हैं। लोक सभा में 545 सदस्य होते हैं, 543 सदस्यों का चयन पांच वर्षों की अवधि के लिए एकल सीट निर्वाचन क्षेत्रों से होता है और दो सदस्यों को एंग्लो-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना जाता है (भारतीय संविधान में उल्लेख के अनुसार, अब तक लोक सभा में 545 सदस्य होते हैं, 543 सदस्यों का चयन पांच वर्षों की अवधि के लिए होता है और दो सदस्यों को एंग्लो-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना जाता है)। 550 सदस्यों का चयन बहुमत निर्वाचन प्रणाली के अनुसार होता है। उपराष्ट्रपति चुनाव (नामांकन एवं मतदाता → राज्य सभा)

राज्य सभा के सदस्यों का चयन अप्रत्यक्ष रूप से होता है और ये लगभग पूरी तरह से अलग-अलग राज्यों की विधानसभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं, जबकि 12 सदस्यों का नामांकन भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है, इसमें आमतौर पर भारत के प्रधानमंत्री की सलाह और सहमति शामिल होती है।

* अतिथि व्याख्याता, स्व. लाल श्याम शाह शासकीय नवीन महाविद्यालय, मोहला - जिला - मोहला मानपुर, अंबागढ़ चौकी, छत्तीसगढ़

राज्यों की परिषद (राज्य सभा) में 245 सदस्य होते हैं, जिनमें 233 सदस्यों का चयन छह वर्ष की अवधि के लिए होता है, जिसमें हर दो साल में एक तिहाई अवकाश ग्रहण करते हैं। इन सदस्यों का चयन राज्य और केंद्र (संघ) शासित प्रदेशों के विधायकों द्वारा किया जाता है। निर्वाचित सदस्यों का का चयन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के तहत एकल अंतरणीय मत के माध्यम से किया जाता है। बारह नामित सदस्यों को आमतौर पर प्रख्यात कलाकारों (अभिनेताओं सहित), वैज्ञानिकों, न्यायविदों, खिलाड़ियों, व्यापारियों और पत्रकारों और आम लोगों में से चुना जाता है।

राजनैतिक पार्टियों का इतिहास :-

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभुत्व पहली बार 1977 में टूटा जब इंदिरा गांधी के नेतृत्व में पार्टी को अन्य सभी बड़े दलों के गठबंधन से हार का सामना करना पड़ा, ये सभी दल 1975-1977 में विवादित आपातकाल लागू करने का विरोध कर रहे थे। इसी प्रकार विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में के एक गठबंधन ने 1989 में भ्रष्टाचार के आरोप झेल रहे राजीव गांधी को हराकर सत्ता में प्रवेश किया। इसे भी 1990 में सत्ता से हटना पड़ा।

1992 में, भारत में अब तक चली आ रही एक पार्टी के प्रभुत्व वाली राजनीति ने गठबंधन प्रणाली को रास्ता दिया, जिसमें कोई एक पार्टी सरकार बनाने के लिए संसद में बहुमत की उम्मीद नहीं कर सकती थी, लोकिन उसे अन्य पार्टियों के साथ गठबंधन करना होता था और सरकार बनाने के लिए बहुमत सिद्ध करना होता था। इससे मजबूत क्षेत्रीय दलों का महत्व बढ़ गया जो अब तक केवल क्षेत्रीय आकांक्षाओं तक ही सीमित थे। एक तरफ जहां तेदेपा और अन्नाद्रमुक जैसे दल पारंपरिक रूप से मजबूत क्षेत्रीय दावेदार बने हुए थे वहीं दूसरी ओर 1990 के दशक में लोक दल, भारतीय जनता पार्टी, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और जनता दल जैसे अन्य क्षेत्रीय दलों का भी उदय हुआ। ये दल पारंपरिक रूप से क्षेत्रीय आकांक्षाओं पर आधारित होते थे, (जैसे तेलंगाना राष्ट्र समिति) या पूरी तरह से जाति आधारित होते थे, (जैसे बहुजन समाज पार्टी जो दलितों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है)। इसके अलावा अकाली दल ,भारतीय आदिवासी पार्टी इत्यादि कई पक्षों ने नामांकन करवाया हैं । अधिक पक्षों का होना भी वर्तमान चुनाव के लिए चुनौती हैं ।

चुनाव आयोग :-

भारत में चुनावों का आयोजन भारतीय संविधान के तहत बनाये गये भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है। यह एक अच्छी तरह स्थापित परंपरा है कि एक बार चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के बाद कोई भी अदालत चुनाव आयोग द्वारा परिणाम घोषित किये जाने तक किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। चुनावों के दौरान, चुनाव आयोग को बड़ी मात्रा में अधिकार सौंप दिए जाते हैं और जरुरत पड़ने पर यह सिविल कोर्ट के रूप में भी कार्य कर सकता है।

चुनावी प्रक्रिया :-

भारत की चुनावी प्रक्रिया में राज्य विधानसभा चुनावों के लिए कम से कम एक महीने का समय लगता है जबकि आम चुनावों के लिए यह अवधि और अधिक बढ़ जाती है। मतदाता सूची का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण चुनाव पूर्व प्रक्रिया है और यह भारत में चुनाव के संचालन के लिए बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय संविधान के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो भारत का नागरिक है और जिसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक है, वह मतदाता सूची में एक मतदाता के रूप में शामिल होने के योग्य है यह योग्य मतदाता की जिम्मेदारी है कि वे मतदाता सूची में अपना नाम शामिल कराए। आमतौर पर, उम्मीदवारों के नामांकन की अंतिम तिथि से एक सप्ताह पहले तक मतदाता पंजीकरण के लिए अनुमति दी गई है।

भारत के कुछ शहरों में, ऑनलाइन मतदाता पंजीकरण फार्म प्राप्त किए जा सकते हैं और निकटतम चुनावी कार्यालय में जमा किए जा सकते हैं। [www.jaagore.com] जैसी कुछ सामाजिक रूप से प्रासंगिक वेबसाइटें, मतदाता पंजीकरण की जानकारी प्राप्त करने के लिए अच्छा स्थान हैं।

दूरस्थ मतदान :-

अब तक, भारत में दूरस्थ मतदान प्रणाली नहीं है।- "जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (आरपीए) -1950 के अनुच्छेद 19 के तहत एक व्यक्ति को अपने मत का पंजीकरण कराने का अधिकार है यदि उसकी उम्र 18 साल से अधिक है और वह निर्वाचन क्षेत्र में रहने वाला 'आम नागरिक' है, अर्थात छह महीने या उससे अधिक समय से मौजूदा पते पर रह रहा है।"[5] उक्त अधिनियम की धारा 20 किसी अप्रवासी भारतीय (एनआरआई) को मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज कराने के लिए अयोग्य ठहराती है। इसलिए, संसद और राज्य विधानसभा के चुनाव में एनआरआई को वोट डालने की अनुमति नहीं दी गई है। दूरस्थ मतदान का न होना यह भी एक वर्तमान चुनाव के लिए चुनौती है।

"अगस्त 2010 में, जन प्रतिनिधित्व बिल (संशोधित)-2010 को लोक सभा में 24 नवम्बर 2010 की बाद की राजपत्र अधिसूचनाओं के साथ पारित कर दिया गया, इस बिल में एनआरआई को वोट डालने का अधिकार दिया गया है।"[6]

इसके साथ ही अब एनआरआई भारतीय चुनावों में वोट करने के योग्य हो जाएंगे, लेकिन उनके लिए मतदान के समय शारीरिक रूप से उपस्थित होना आवश्यक है। -

"बहुत से सामाजिक संगठनों ने सरकार से आग्रह किया था कि दूरस्थ मतदान प्रणाली के द्वारा एनआरआई और दूर स्थित लोगों द्वारा मतदान करने के लिए आरपीए में संशोधन करना चाहिए।"[7]

"पीपल फॉर लोक सत्ता Archived 2019-01-22 at the वेबैक मशीन, सक्रियता से इस बात पर बल देती रही है कि इंटरनेट और डाकपत्र मतदान का एनआरआई मतदान के एक व्यवहार्य साधन के रूप में प्रयोग किया जाए"[8]

भारत में लोकसभा जनता के प्रतिनिधियों से मिलकर बनी होती है जिन्हें वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा चुना जाता है । संविधान में उल्लिखित सदन की अधिकतम क्षमता 552 सदस्यों की हैं, जिनमें 530 सदस्य राज्यों के तथा 20 सदस्य केंद्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं और दो सदस्यों को एंग्लो - भारतीय समुदायों के प्रतिनिधित्व के लिए राष्ट्रपति द्वारा नामांकित किया जाता है, ऐसा तभी किया जाता है जब राष्ट्रपति को लगता है कि उस समुदाय का सदन में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं हो रहा है । पहली लोकसभा 1951 - 52 कांग्रेस के नेतृत्व में बनी जिनके प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू थे । अठारहवीं लोकसभा भाजपा के नेतृत्व में बनी जिसके प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी रहें । भारत की वर्तमान चुनाव प्रणाली में निम्न लिखित चुनौतियां और समाधान बताने का प्रयास किया है मैंने -

जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। भारत में 62 करोड़ से अधिक मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। भारत में अब तक लोकसभा के 18 चुनाव हो चुके हैं। किन्तु इस दौरान भारतीय चुनाव प्रणाली की कुछ चुनौतियां भी दिखलायी पड़े जिनका विवरण इस प्रकार है-

(1) चुनाव में बाहुबल और हिंसा-

भारतीय चुनाव में एक और गम्भीर चुनौती और समस्या है चुनाव में बाहुबल का प्रयोग। नेता चुनने में हिंसा बढ़ती जा रही है। चुनाव में बाहुबल और हिंसा का प्रयोग विशेषकर हरियाणा, पश्चिमी बंगाल, जम्मू-कश्मीर तथा बिहार आदि राज्यों में हो रहा है। विधानसभा और लोकसभा के चुनावों में बम विस्फोट, छुरेबाजी औंर गोली का प्रयोग होता है। मतदाताओं को डराया-धमकाया जाता है और उन्हें एक विशेष दल के पक्ष में वोट

डालने के लिए कहा जाता है। मतदान केंद्रों पर कब्जा किया जाता है। चुनाव के दिनों में आम आदमी सुरक्षित महसूस नहीं करता। मतदान केन्द्रों पर कब्जा बड़े नियोजित ढंग से किया जाता है।

(2) चुनाव याचिका के निपटारे में देरी :-

साधारणतः यह देखा गया है कि चुनाव याचिका के निपटारे में बहुत अधिक समय लग जाता है। कई बार तो उम्मीदवार का कार्यकाल समाप्त होने को आता है और चुनाव याचिका का निर्णय ही नहीं होता।

(3) सरकारी तंत्र का दुरुपयोग :-

भारतीय चुनाव व्यवस्था की एक ओर गम्भीर त्रुटि सामने आयी है। मंत्रियों द्वारा दलीय लाभ के लिए सरकारी तंत्र का प्रयोग किया जाता है। वोट बटोरने के लिए मंत्रियों द्वारा लोगों को तरह-तरह के आश्वासन दिए जाते हैं। विभिन्न वर्गों के लिए अनेकानेक रियायतों और सुविधाओं की घोषणा की जाती है। अनेक प्रकार की विकास योजनाओं की घोषणा की जाती है; जैसे-कारखानों, स्कूलों, कॉलेजों, अस्पतालों व पुलों के शिलान्यास आदि की घोषणा करना। सरकारी कर्मचारी के वेतन-भत्ते आदि में वृद्धि की जाती है। कर्जे माफ किए जाते हैं।

(4) मतदाताओं की अनुपस्थिति :-

चुनावों में बहुत से मतदाता भाग लेते ही नहीं। मतदाता चुनावों में रुचि लेते ही नहीं। उनके लिए वोट डालना एक समस्या बन गई है। वह मतपत्र का प्रयोग करते ही नहीं। मतपत्र का प्रयोग न करना एक प्रकार से लोकतंत्र को धोखा देना ही है। अक्सर देखने में आता है कि 60 प्रतिशत मतदाता ही वोट डालते हैं। मतदान का प्रतिशत कई चुनावों में तो 60% अथवा इससे भी कम रहता है।

(5) राजनीति का अपराधीकरण :-

पिछले कुछ वर्षों में भारतीय चुनाव-प्रणाली में एक ओर चुनौतीपूर्ण मोड़ आया है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों ने ऐसे बहुत-से उम्मीदवार चुनाव में खड़े किए, जिनका अपराधों की दुनिया में नाम था। ऐसे व्यक्तियों ने राजनीति में अपराधीकरण को बढ़ावा देने का काम किया और लोगों को भय दिखाकर वोट माँगे तथा गोली के बल पर विरोधियों को न चुनाव लड़ने दिया और न ही वोट डालने दिया। जब अपराधी, तस्कर और लुटेरे पहले किसी दल के सक्रिय सदस्य तथा बाद में विधायक बन जाएँ तो उस देश के भविष्य के उज्ज्वल होने की आशा नहीं की जा सकती।

(6) चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका :-

भारतीय चुनाव-प्रणाली का सबसे बड़ा दोष चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका है। भारतीय चुनावों में धन का अंधाधुंध प्रयोग और दुरुपयोग ने भारत की राजनीति को काफी भ्रष्ट किया है। भारत में काले धन का बड़ा बोलबाला है और उसका चुनावों में दिल खोलकर प्रयोग किया जाता है। मतदाताओं के लिए शराब के दौर चलाए जाते हैं, मत खरीदे जाते हैं, उम्मीदवारों को धनी लोगों द्वारा खड़ा किया जाता है। और पैसे के बल पर बिठाया जाता है तथा मतदाताओं को लाने व ले जाने के लिए गाड़ियों का प्रयोग किया जाता है। आज का चुनाव पैसे के बल पर ही जीता जा सकता है और इस धन ने मतदाताओं, राजनीतिक दलों तथा प्रतिनिधियों सबको भ्रष्ट बना दिया है।

(7) जाति और धर्म के नाम पर वोट :-

भारत में सांप्रदायिकता का बड़ा प्रभाव है और इसने हमारी प्रगति में सदैव बाधा उत्पन्न की है। जाति और धर्म के नाम पर खुले रूप से मत माँगे और डाले जाते हैं। राजनीतिक दल भी अपने उम्मीदवार खड़े करते समय इस बात को ध्यान में रखते हैं और उसी जाति और धर्म का उम्मीदवार खड़ा करने का प्रयत्न करते हैं, जिस जाति का उस निर्वाचन-क्षेत्र में बहुमत हो। भारत में अब तक जो चुनाव हुए हैं, उनके आँकड़े भी इस बात का समर्थन करते हैं।

(8) मतदाता सूचियों के बनाने में लापरवाही :-

यह भी देखा गया है कि भारत में मतदाता सूचियों के बनाने में बड़ी लापरवाही से काम लिया जाता है और कई बार जान-बूझकर तथा कई बार अनजाने में पूरे-के-पूरे मोहल्ले सूचियों से गायब हो जाते हैं। मतदाता सूचियाँ अधिकतर राज्य सरकार के कर्मचारियों द्वारा बनायी जाती हैं और वे इसे फिजूल का काम समझते हैं। पटवारी तथा स्कूल के अध्यापकों से ये काम करवाया जाता है। एक मतदाता का नाम अनेकों बार तथा जाली मतदाताओं के नाम मतदाता सूची में जोड़ दिए जाते हैं। चुनाव प्रणाली के सम्मुख उपस्थित चुनौतियों के समाधान हेतु निम्न उपाय अपनाए जा सकते हैं

- फर्जी मतदान तथा चुनाव-केन्द्रों पर कब्जा करने की घटनाओं को सख्ती के साथ निपटना चाहिए।
- सभी उम्मीदवारों तथा राजनैतिक दलों को प्रचार करने के लिए रेडियो तथा मीडिया का प्रयोग करने दिया जाए।
- चुनावी राजनीति मतदान अनिवार्य कर देना चाहिए।
- चुनाव-याचिका थोड़े समय में ही निपटा देनी चाहिए।
- चुनावों में धन की भूमिका को कम करने के लिए चुनाव खर्च राज्य द्वारा किया जाना चाहिए।
- चुनावों में सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग पर सख्त पाबंदी लगाई जाए।
- उन उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोक दिया जाए जो चुनाव में धर्म तथा जाति का प्रयोग करते हैं।

निष्कर्ष:-

निष्कर्ष के रूप में अक्सर आम आदमी के लिए चुनाव में कोई दंग का विकल्प होता ही नहीं क्योंकि दोनों प्रमुख पार्टियों की नीतियां और व्यवहार एक जैसे ही होते हैं, बड़ी पार्टियों की अपेक्षा छोटे दलों तथा निर्दलीय उम्मीदवारों को कई तरह की परेशानियां उठानी पड़ती हैं । अलग - अलग दलों पर कुछेक परिवारों तथा उनके रिश्तेदार आसानी से टिकट प्राप्त कर लेते हैं । जो उम्मीदवार टिकट लेना चाहते है उनको आसानी से प्राप्त हो जाए ऐसा मेरी दृष्टि में होना चाहिए । विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने की वजह से भारत के लिए नागरिकों की ज्यादा भागीदारी के साथ स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना अनिवार्य है और इसने विश्व के सामने अनुकरण हेतु एक उदाहरण भी आज दिया हैं।

संदर्भ-सूची :-

1. '1951 - 52 से 2014 तक भारतीय निर्वाचकों का तुलनात्मक विवरण '.सूचना कार्यालय. भारत सरकार 23 फरवरी 2014. अभिगमन तिथि. 24 फरवरी 2014
2. 'इंडियन जनरल इलेक्शन एक्सपेंडिचर, फ्रॉम ईसी आई वेबसाइट 8 फरवरी 2005 को मूल से पूरा लेखित.अभिगमन तिथि 26 मार्च 2011
3. 'The Recurring miracle of Indian democracy ' .New straits - shashi tharur (16 अप्रैल 2009)
4. Archieved. 13/11/2008
5. 'रिप्रेजेंशन ऑफ दी पीपुल एक्ट .1950 पीडीएफ मूल से 25 /12/2018 को पुरालेखित.अभिगमन तिथि 26/11/2011
6. गजट नोटिफिकेशन
7. नॉन रेसिडेंट्स इंडियंस वोटिंग इन इंडियंस इलेक्शंस
8. पीपुल फॉर लोकसत्ता-एनआईआर वोटिंग कैंपेन मूल से 26/01/2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 26/03/2011

सरवनगाथा – भरत लाल बड़गईहा पौनी

प्रीतम सिंह मेरावी*
डॉ. दीपशिखा पटेल**

सारांश

श्रवण कुमार राजा सन्तानु और सत्यवती की वरदानी पुत्र थे। राजा सन्तानु के पास धन दौलत की कोई कमी नहीं थी। लेकिन उनके आंगन और महलों में एक किलकारीवान पुत्र की कमी थी। तब पति–पत्नि पुत्रवर मांगने, भगवान षंकर जी के पास गये, वे दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन पूर्वक कहे! हे प्रभु! आप के कृपा से हमारे पास सब कुछ है लेकिन एक पुत्र की कमी है।

भगवान षंकर जी ने कहा (तथास्थु पुत्र भवः) जाओं तुम दोनों को पुत्र दर्षन नही होगा, अर्थात अंधी–अंधा बन जाओगें, तब रानी राजा ने कहा, कोई बात नही भगवान जी, लेकिन हमें पुत्र चाहिए। तब भगवान षंकर जी के द्वारा दी गई वरदानी पुत्र की प्राप्ति होते ही माता–पिता अंधे हो गये। सावन महिना में जन्म होने के कारण उनका नाम श्रवण कुमार रखा गया।

श्रवण कुमार के माता–पिता एक दिन तीर्थ यात्रा करने का योजना बनाये, कहे! बेटा श्रवण कुमार हमें तीर्थ यात्रा करने की बड़ी सौंख लगी है। हमें तीर्थ घुमा लाओं, माता–पिता की ऐसी मधुरवाणी सुनकर श्रवण कुमार आचम्भित हुआ, लेकिन हिम्मत नहीं हारा! उन्होने कहा – सभी तीर्थो की तरह माता है, सभी देवों की तरह पिता है, अतः माता–पिता का आत्म भाव से सेवा करना चाहिए।

आदर्श भाव के धनी श्रवण कुमार माता–पिता को तीरथ घुमाने निकल पड़े। रास्ते में उनके माता–पिता को बड़ी जोर से प्यास लगी, तब बोले ! बेटा श्रवण कुमार हमें पानी पिला दे! प्रस्तुत है चतुर राम साहू का गाया लोक भजन।

// तुमा के पानी पिया देते ग–2
// ये तुमा के पानी पिया देते ग–2
बेटा सरवन ग तुमा के पानी पिया देते–2
1. अंधी अंधा के एक झन बेटा
सरवन हवय नाव–2
माता–पिता ल, तीरथ बरथ
घुमाये चारो धाम
माता–पिता ल तीरथ बरथ,
घुमाये चारों धाम–
बेटा सरवन ग–तुमा के पानी पिया देते।

श्रवण कुमार प्यासे माता–पिता को एक वृक्ष की छाया में बैठा कर जल के तलास में सरयू नदी की ओर निकल पड़े। उसी नदी में राजा दषरथ षिकार खेलने बैठा था। तुम्बी से जल भरते समय श्रवण कुमार को षब्द भेदी बाण से मारा गया। श्रवण कुमार, हे राम, कहकर अपना प्राण त्याग दिया। समय के अनुरूप छत्तीसगढ़ के हर–घरों मे श्रवण कुमार गाथा गायन का व्यापक प्रचार–प्रसार होना चाहिए।

हमारे देश में भगवान से वरदान मांगने की परम्परा कई जन्मों से चला आ रहा है। उसी में से एक वरदानी पुत्र सरवन कुमार भी है।

एक समय की बात है, राजा संतानु और सत्यवती वरदान मांगने, ब्रम्हा जी के पास गये और वर मांगे, कहे हे प्रभु हमारे पास सब कुछ है, लेकिन हमारे गोदी में पुत्र नही हैं। तब ब्रम्हा जी उनकों विष्णु जी के पास भेज दिये विष्णु जी रानी–राजा के शंकर जी के पास भेज दिये तब शंकर जी से हाथ जोड़कर कहे

* शोधार्थी, लोकसंगीत एवं कला संकाय, इं. क. सं. वि. वि. खैरागढ़, छ. ग.
** शोध निर्देशिका, लोकसंगीत एवं कला संकाय, इं. क. सं. वि. वि. खैरागढ़, छ. ग.

भगवान जी, हमारे पास धन–दौलत सब है लेकिन पुत्र नहीं है, तब शंकर जीने आर्शिवाद दिया (तथास्तु पुत्र भवः)

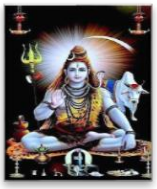

जाओं तुम दोनों को पुत्र का दर्शन नही होगा अर्थात अंधी–अंधा बन जाओंगे तब रानी–राजा ने कहा कोई बात नही, लेकिन हमें पुत्र चाहिए। तब रानी–राजा को भगवान शंकर के द्वारा दी गई वरदानी पुत्र का प्राप्ति होते ही माता–पिता अंधे हो गये।

सरवन कुमार का जन्म सावन महिने में हुआ था, इसलिए उनका नाम श्रवण कुमार पड़ा। लेकिन श्रवण कुमार के जन्म होते ही माता–पिता अंधे हो गये। उन्होने अपने पुत्र का चेहरा नहीं देख पाये। श्रवण 12 वर्ष के हुए और शिकार खेलना शुरू कर दिये, और अंधी–अंधा को शिंकार करके मांस खिलाने लगे।

श्रवण कुमार शादी योग्य हो गये तब रानी–राजा ने एक ब्राम्हण और नाई को बहु खोजने बोल दिये, तब ब्राम्हण राजा–धननजय की बेटी से विवाह तय करवा दिया, विवाह की सम्पूर्ण तैयरियां हो गई।

द्वारप्रवेश मंत्रोचारण :–

मुर्गा बोले बसदेव बालक जागे
बाजे श्री कृष्ण की पैजनिया
उठे जजमान बांटे दान
नाती बेटा पहरे गजमोतीयन हार

सरवनगाथा

एकादशी को सरवन लगून,
द्ववादूज को मण्ढ़प तेल जय गंगान।
धन तेरस को सजी बरात,
चौदस को भांवर डार–जय गंगान।
पुनो दिना विदा करवाये,
पिंगला पत्नि घर में लाये–जय गंगान।
सास–ससुर की पिंगला रानी,
करने लगी अच्छी सेवा–जय गंगान।
धीरे–धीरे अंधी–अंधा के प्रति,
होने लगे मन मोटाव–जय गंगान।
वह भी एक राजा की बेटी,
बनी रानी सरवन के आज–जय गंगान।
एक दिन रानी पिंगला के
मन में कुछ विचार आया–जय गंगान।

मेरे मायके में एक लाख गाय,
और रहती सवालाख भैंस–जय गंगान।
पति देव को भूरी भैंस का,
रोज निर्मल दूध पिलाउंगी–जय गंगान।
हरि रजाई ओढ़ने दूंगी,
बैठो चाबो बंगलिया पान–जय गंगान।
चलो चली मायके चले,
सरवन को पिंगला कहने लगी–जय गंगान।

भले प्राण मेरे चले जाय,
मैं नहीं जाउंगा ससुराल–जय गंगान।
तिरिया हट में आ गई,
घर छोड़ने मन में आई–जय गंगान।
प्रायोजन बनाई रानी पिंगला,
कुम्हार के पास जाने का–जय गंगान
जाके कुम्हार से कहती है,
तुम मायके के भाई भतीजा,
ससुरे के लागे देवर–जेठ–जय गंगान।
दुई बुढ़वा मोर जीव के काल,
दो पेट हण्डी दे–दो बनाय–जय गंगान।
कुम्हार बोले, सास–ससुर तोरे लागे,
मामा ससुर लागे हमार–जय गंगान।
कैसे हण्डी देऊ बनाय
द्वेश भेद पर तिरिया रहे–जय गंगानं
दूर तिरिया भाग चंडाल,
मैं नही गढ़ो पापनी हांड़–जय गंगान।
भगी नार महल को जाय,
महल में बैठ कुलचा करले –जस गंगान।
मोहन माला गले के चैन,
सवा लाख के बिंदिया लेत–जय गंगान।
नौ लाख के हार लेत,
और जो धन माया सरवन के–जय गंगान।
बांध गठरिया ओ धरेल,
अब फिर गया कुम्हार के घर–जय गंगान।
लेव कुम्हार धन घर बैठो खाव
आप खाओं और खाय परिवार–जय गंगान।
धन के लोभी जग संसार,
धन देख कुम्हार लोभियाय–जय गंगान।
तब कुम्हार ने करे करार,
तीन दिनों में दो पेट हण्डी देहु बनाय–जय गंगान।
अब घर लेलगी, धोय मांज हांड़ी अनमासे,
एक मं रांधे खोवा खीर,
एक मं रांधे खट्टी महीर–जय गंगान।
कुचर–कुचर कर भेलवा तेल,
और शक्कर के धोखे, नदी के रेत–जय गंगान।
फिर माता–पिता दुबले होते देख,
मंन में सरवन करे विचार–जय गंगान।
कौन सोच दायी को,
कौन सोच ददा को–जय गंगान।
काबर दायी गये दुबराय,
काबर ददा मरले बर लाग–जय गंगान।
घर बदनाम के कारण से,
घर के भेद नहीं बतलाय–जय गंगान।
घर के मरम बताये कौन,
लोग सुने घर निंदा होय–जय गंगान।

बहु बेटन के लाजन होई,
तेखर ले भली हमी मर जान–जय गंगान।
सोच पिता रहे उपवास,
बाप और बेटा करे उपवास–जय गंगान।
खाना बैठे बाप बेटा,
तब भोजन थाली बदल दिये–जय गंगान।
पहले कौर जब सरवन खाय,
डगमग डोले बत्तीसो दांत–जय गंगान।
पहेला कौर अंधा खात,
जुग–जुग जियो सरवन लाल–जय गंगान।
आज पुत्र ने खवाया खीर,
सरवन बेटा बनो बलवीर जय गंगान।

दूसरा कौरा सरवन खाय,
असुवन के धार हे जाय–जय गंगान।
तीसरा कौरा सरवन खाय,
थाली उठाय फेंक के मार–जय गंगान।
उठे सरवन चुल्हा को जाय,
हांडी को जब मारन लात–जय गंगान।
ओ हांडी के दो ठन पेट,
एक में खट्टा महीर, दूसर खोवा खीर–जय गंगान।
ये तिरिया की कुट नीति,
उस तिरिया को मार लात–जय गंगान।
तुरते नारी देत निकाल,
मोर द्वार ले हट ज नार–जय गंगान।

अंधी–अंधी के सपुत कुमार,
तोर अस नारी करव हजार जय गंगान।

एक बेटा सरवन कुमार को अब अंधी–अंधा तीरथ जाने का लगी साध बेटा सर्वन तीरथ धुमादो, सरवन माता–पिता के बात सुनकर अत्यधिक खूश हुआ।

श्लोक :– सर्व तीर्थ मयां माता, सर्व देवमयः पिता,
मातरं पितरं तस्मात, सर्व यत्येन पूज्येत्।।

अर्थ – सभी तीर्थो की तरह माता, सभी देवों की तरह पिता है। अतः माता–पिता की पूजा आत्म भाव से करनी चाहिए।

रिफ्रेंस :– संस्कृत 7 वीं, प्रकाशन वर्ष 2023 रा,शै,आक,प्रसि,परि,रायपुर पृष्ठ कमांक 01
लेखक मंडल– श्री बी.पी.तिवारी, श्री आर.पी मिश्रा, श्रीमती श्वेता शर्मा, डॉ विद्यावती चन्द्राकर।

हमकों बेटा तीरथ घुमाओ,
चंदन काँवर लाओं काट–जय गंगान।
इच बीच हीरा बीच में,
लाल बीचय गढ़य कमल का फूल–जय गंगान।
रेशम डोरी डारे भांज,
मखखन गद्दा दिया बिछाय–जय गंगान।

एक पला अंधी बैठा दूजे पला बुढ़वा बाप–जय गंगान।
तब रास्तें में लगा प्यास,
कैसे कँरू मैं जल तलास–जय गंगान।
बरवृक्ष से निवेदन कर,
टंगा दिया शेर के डर जय गंगान।
खाली कमंडल लेकर हाथ,
जल खोजय सरवन कुमार–जय गंगान।

मिरग घाट में सरवन जाय,
गऊ घाट को गए भूलाय–जय गंगान।
जहाँ बैठे दशरत रखवार,
वहाँ पहुंच गए सरवन लाल–जय गंगान।
हाथ–पैर धोकर के, तुमा कमंडल लिये डुबाय,
बुडूर–बुडूर करे पानी तुमा आवाज–जय गंगान।
सून परे दशरत के कान,
अइचे धनुवा खंईचे बान–जय गंगान।
जाय बान सरवन को लगे,
सरवन लगे कलेजा बान–जय गंगान।
हाय राम कह सरवन गिरे
मंन में दशरत करे विचार–जय गंगान।

का मैं मारेव अंश परवार,
का मैं मारेव कपला गाय–जय गंगान।
फेक धनुष देखे ल जाय,
जाके देखे सगा भनेजा–जय गंगान।
ऊठ मोर भांचा गोद में आओं,
ऊठ मोर भांचा पानी पियो–जय गंगान।
मिरगा के धोखे मैं मारेव बान,
पापी बान भांचा को लगे–जय गंगान।
अब सरवन जी बोले बात,
का पापी के गोद में आव–जय गंगान।
अब सरवन जी बोले बात,
का पापी के गोद मे आव–जय गंगान।
का पापी के पानी पीयवं,
भांचा मार पाप कर लीम्हें–जय गंगान।
का पापी के पानी पीयवं,
मोर जीवरा बर झन पसता–जय गंगान।
दाई–ददा मोर मरत पियास,
जिन ल जाके नीर पीयाव–जय गंगान।
इतना कहके तजे परान,
लहे कमंडल दशरत जाय–जय गंगान।
धमर–धमर धरनी पग बोल,
अंधी कहिथे राकस भूत,
अंधरा कहिथे सरवन पूत–जय गंगान।

खेलत कूदत बालक आथय,
मूक्का बन के पानी देय–जय गंगान।
अंधरी–अँधरा कहन लगे,
मुख बोलव तो पानी पीबो–जय गंगान।
नामूख बोलव तो देहू श्राप,
डर के मारे दशरत बोलय–जय गंगान।

सुन ले बहिनी भाटो बात,
ना मैं राकस ना मैं भूत,
नहीं तुम्हारा सरवन पूत जय गंगान।
मैं राजा दशरत बलवीर,
शिव पर्वत में चलगय तीर–जय गंगान।
मिरग धोखे मारेव बान,
जाय बान सरवन को लगे–जय गंगान।
सरवन लगे कलेजा बान,
हायराम कर सरवन गिरे–जय गंगान।
अंधी–अंधी सुनके बात,
हायराम कर रोवत लाग–जय गंगान।
है–है राजा दशरत पापी,
जो का कीन्हें तैं चंडाल–जय गंगान।
दोई अंधरन के लकड़ी एक,
बीच बन खण्ड में डोर टोर–जय गंगान।
रहो पापी, हम देबे बताय,
कहां पड़े मोर सरवन लाल–जय गंगान।
लिए कावड़ी दशरत जाय,
सरवन तीर में दे मढ़ाय–जय गंगान।
तमड़–तमड़ के अंधरी रोय,
तमड़–तमड़ के बुढ़वा बाप–जय गंगान।
अंधी–अंधा दशरत को
जनम–जनम तक दिये श्राप–जय गंगान।
पुत्र शोक में हम मरथन,
वैसे पुत्र शोक में तैं मरबे–जय गंगान।

टीप :– अंधी–अंधी को राजा दशरत ने दाह संस्कार अपने बाया हाथ के गदेली पंजा में किया था, इसलिए बाया हाथ में भोजन नहीं करते। (भरत लाल बड़गईहा पौनी)

गाथा बंद करने का 10 महामंत्र

1. ऊँ परमतत्वाय नमः
2. ऊँ परमपराय नमः
3. ऊँ गुरूवाय नमः
4. ऊँ गुरूभ्याय नमः
5. ऊँ आदित्याय नमंः
6. ऊँ मित्राय नमः
7. ऊँ भवने नमः
8. ऊँ जारायेण नमंः
9. ऊँ सुरूजाय नमः
10. ऊँ भास्कराय नमः

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भरत लाल बड़गईहा (मौखिक सरवनगाथा)
2. राजकुमार कपाड़ीया (मौखिक सरवनगाथा)
3. माटी के फूल, लोक भजन की प्रस्तुती (चतुर राम साहू)
4. सुरभिः कक्षा 7वी चतुदर्षः पाठः श्रवणकुमारस्य कथा पृ.क्र. 29
राज्य षैक्षिक अनुसंधान प्रषिक्षण परिशद छत्तीसगढ़ रायपुर।

पटना विश्वविद्यालय की स्थापना और उच्च शिक्षा का विकास 1917 –1947 ईस्वी

डॉ. रश्मि कुमारी*

सारांश

1917 में पटना विश्वविद्यालय की स्थापना भारतीय उच्च शिक्षा के इतिहास में एक मील का पत्थर सिद्ध हुई इस विश्वविद्यालय ने बिहार और पूर्वी भारत में उच्च शिक्षा के विस्तार अनुसंधान की भावना तथा आधुनिक विचारधारा की विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया 1947 तक का कालखंड विश्वविद्यालय के गठन संगठन पाठ्यक्रम सुधार और सामाजिक चेतना के निर्माण का युग था यह लेख यह आलेख 1917 से 1947 तक पटना विश्वविद्यालय की भूमिका शैक्षिक विकास और समाज पर उसकी प्रभाव का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द:- पटना विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा औपनिवेशिक भारत बिहार 1917-1947 ऐतिहासिक अध्ययन।

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन काल में भारत की शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन का दौरा 19वीं साड़ी के मध्य से आरंभ हुआ कोलकाता 1857 मुंबई 1857 और मद्रास 1857 विश्वविद्यालय के बाद बिहार में एक ऐसे संस्थान की आवश्यकता महसूस की गई जो क्षेत्रीय स्तर पर उच्च शिक्षा का सशक्त बना सके इसी पृष्ठभूमि में अक्टूबर 1917 को पटना विश्वविद्यालय की स्थापना हुई यह पूर्वी भारत का पहला और भारत का सातवां विश्वविद्यालय था।

पटना विश्वविद्यालय ने न केवल बिहार बल्कि उड़ीसा बंगाल और असम जैसे क्षेत्र के विद्यार्थियों को भी उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान किये।[1]

पटना विश्वविद्यालय की स्थापना की पृष्ठभूमि:-

पटना विश्वविद्यालय की स्थापना की प्रेरणा 1902 की भारतीय विश्वविद्यालय अनुदान की अनस संस्थाओं तथा 1913 की सैडलर आयोग की रिपोर्ट से मिली।"

बिहार और उड़ीसा में उच्च शिक्षा के अभाव को देखते हुए सरकार ने पटना में विश्वविद्यालय स्थापित करने का निर्णय लिया।" 1 अक्टूबर 1917 को इस विश्वविद्यालय की स्थापना लार्ड हार्डिंग के शासनकाल में की गई। "प्रारंभ में यह एक परीक्षा आधारित विश्वविद्यालय था परंतु धीरे-धीरे यह एक शिक्षक एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ।"[2]

संरचना एवं संलग्न महाविद्यालय 1917-47:-

प्रारंभिक काल में पटना विश्वविद्यालय के अधीन केवल कुछ महाविद्यालय थे।

पटना कॉलेज 1839 पटना साइंस कॉलेज 1927 बिहार नेशनल कॉलेज 1879 बी कॉलेज मुजफ्फरपुर प्रेसीडेंसी कॉलेज कोलकाता (प्रारंभिक संबंध था के रूप में)

इन कॉलेज के माध्यम से स्नातक और स्नातक उत्तर शिक्षा दी जाती थी। "1920 के दशक में विश्वविद्यालय ने कानून विज्ञान चिकित्सा तथा वाणिज्य जैसे विषयों को भी शामिल किया।"[3]

उच्च शिक्षा का विकास 1917-1947 :-

इस अवधि में विश्वविद्यालय ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित उपलब्धियां प्राप्त की।

* इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

शैक्षिक पाठ्यक्रमों में सुधार:--

"1920-1930 के दशक में आधुनिक विषय जैसे गणित विज्ञान इतिहास अर्थशास्त्र वाणिज्य और मनोविज्ञान को पाठ्यक्रम में जोड़ा गया।"

संशोधन एवं अनुसंधान को बढ़ावा:-

अनुसंधान प्रोत्साहन के लिए रिसर्च स्कॉलरशिप और फिर से दी जाने लगी।"[4]

महिला शिक्षा का विस्तार:-

1940 के दशक तक पटना विश्वविद्यालय के अधीन महिला महाविद्यालयों की स्थापना हुई जिससे महिलाओं को उच्च शिक्षा में भागीदारी का अवसर मिला।"

राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ाव :-

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। "बिहार के शिक्षित युवाओं में देशभक्ति और सामाजिक चेतना का प्रसार पटना विश्वविद्यालय के वातावरण से प्रभावित हुआ।"

सांस्कृतिक एवं साहित्यिक योगदान:-

विश्वविद्यालय से जुड़े अनेक विद्वानों ने हिंदी संस्कृत उर्दू और अंग्रेजी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया जैसे डॉ राजेंद्र प्रसाद डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिंह डॉक्टर श्री कृष्णा सिंह आदि।"[5]

चुनौतियां:-

- 1917-1947 के बीच विश्वविद्यालय को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा।
- आर्थिक संसाधनों की कमी
- शिक्षकों की नियुक्ति में विलंब
- राजनीतिक अस्थिरता
- औपनिवेशिक नियंत्रण के कारण स्वायत्तताका अभाव।
- इसके बावजूद यह विश्वविद्यालय पूर्वी भारत में शिक्षा को अग्रदूत बना रहा।"[6]

निष्कर्ष

पटना विश्वविद्यालय की स्थापना ने बिहार में उच्च शिक्षा के इतिहास को नई दिशा दी। "1917 से 1947 के बीच यह विश्वविद्यालय न केवल शिक्षा का केंद्र बना बल्कि राष्ट्रीय चेतना सामाजिक सुधार और आधुनिक विचारधारा के प्रसार का माध्यम बिरहा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसने भारत में उच्च शिक्षा के विकास का सशक्त आधार तैयार किया।"

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1- रघुनाथ सिंह बिहार में उच्च शिक्षा का इतिहास 1957 1947 पटना पटना विश्वविद्यालय प्रकाशन 1983 पृष्ठ संख्या 45-102.
2- सुरेंद्रनाथ चौधरी पटना विश्वविद्यालय का इतिहास 1917 1967 पटना बिहार रायड पाठ्य पुस्तक निगम 1970 पृष्ठ संख्या 12-78
3- डीएन शर्मा औपनिवेशिक भारत में शिक्षा और समाज नई दिल्ली ओरिएंट ब्लैक स्वान 1992 प्रश्न संख्या 65-97.
4- राजेंद्र प्रसाद आत्मकथा पटना जैन मंडल लिमिटेड 1957 की संख्या 90- 118.
5- के. के मिश्रा एजुकेशन इन बिहार पटना पटना यूनिवर्सिटी जनरल वैल्यू नंबर 3rd 1946 पृष्ठ संख्या 33-71.
6- सैडलर कमिशन रिपोर्ट कोलकाता 1919 पृष्ठ संख्या 15-42

महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह द्वारा महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलताः औरंगाबाद जिला, बिहार का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सुमित कुमार मिश्रा*

सार–

प्रस्तुत अध्ययन ''महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह द्वारा महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलताः औरंगाबाद जिला, बिहार का तुलनात्मक अध्ययन'' है। यह अध्ययन औरंगाबाद जिले के ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह द्वारा संचालित 'महिला संवाद कार्यक्रम' की प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का फोकस विशेष रूप से 35–55 वर्ष आयु वर्ग की 120 महिलाओं पर केंद्रित है, जिसमें 60 महिलाएं निम्न आय वर्ग से और 60 महिलाएं मध्यम आय वर्ग से चुनी गई हैं। स्वयं सहायता समूह के अंतर्गत संचालित महिला संवाद कार्यक्रमों का उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और निर्णय–निर्माण के स्तर पर सशक्त बनाना है। यह अध्ययन विभिन्न सामाजिक संकेतकों जैसे निर्णय लेने की क्षमता, घरेलू हिंसा के प्रति जागरूकता, वित्तीय स्वायत्तता, शिक्षा, स्वास्थ्य, और सरकारी योजनाओं से जुड़ाव जैसे विषयों को ध्यान में रखकर किया गया है। शोध से यह ज्ञात हुआ कि महिला संवाद कार्यक्रम से जुड़ी महिलाएं अधिक जागरूक, आत्मविश्वासी और सामाजिक रूप से सक्रिय हैं। विशेष रूप से मध्यम आय वर्ग की महिलाएं SHG कार्यक्रमों से बेहतर लाभ ले रही हैं, जबकि निम्न आय वर्ग की महिलाओं में भी सकारात्मक परिवर्तन की प्रवृत्ति देखी गई। यह अध्ययन बताता है कि यदि स्वयं सहायता समूह कार्यक्रमों को योजनाबद्ध और समुदाय केंद्रित रूप से लागू किया जाए तो यह महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में एक प्रभावशाली साधन बन सकता है।

मुख्य शब्द– स्वयं सहायता समूह, महिला संवाद, सामाजिक सशक्तिकरण, ग्रामीण महिला, औरंगाबाद, आय वर्ग तुलना।

महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण एक ऐसा विषय है जिसने पिछले कुछ दशकों में समाजशास्त्र, विकास अध्ययन, और सार्वजनिक नीति के क्षेत्रों में अत्यधिक महत्व प्राप्त किया है। सामाजिक सशक्तिकरण का तात्पर्य केवल महिलाओं को अधिकार देना ही नहीं है, बल्कि उन्हें ऐसे संसाधन, अवसर, और समर्थन प्रदान करना है जिससे वे अपनी जीवनशैली, सामाजिक भूमिका और निर्णय लेने की क्षमता को बेहतर बना सकें। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में जहां परंपरागत सांस्कृतिक बाधाएं और आर्थिक असमानताएं अधिक प्रबल हैं, महिलाओं के सशक्तिकरण की आवश्यकता और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

स्वयं सहायता समूह भारत में एक सफल सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण मॉडल के रूप में उभरे हैं।[1] ये समूह महिलाओं को संगठित कर सामाजिक, आर्थिक, और स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों पर सामूहिक रूप से काम करने का अवसर देते हैं। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं को न केवल आर्थिक सहायता मिलती है, बल्कि वे स्वास्थ्य, शिक्षा, और सामाजिक जागरूकता जैसे विषयों पर संवाद भी करती हैं।[2]

* पी–एच0 डी0, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail : sumitmishradev15@gmail.com, Mob. 9504850078

महिला संवाद कार्यक्रम, जो स्वयं सहायता समूहों के अंतर्गत संचालित होते हैं, महिलाओं के लिए संवाद और ज्ञान साझा करने का एक मंच प्रदान करते हैं। इन कार्यक्रमों के जरिए महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक भागीदारी को बढ़ावा मिलता है।[3]

आय वर्ग के आधार पर महिलाओं की सामाजिक सशक्तिकरण की स्थिति में भिन्नताएँ हो सकती हैं। निम्न आय वर्ग की महिलाएं आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अधिक संवेदनशील होती हैं, जबकि मध्यम आय वर्ग की महिलाएं कुछ हद तक आर्थिक रूप से स्थिर होती हैं।[4]

शर्मा, आर., और गुप्ता, एम. (2018) ने अध्ययन में यह विश्लेषण किया गया है कि माइक्रोफाइनेंस सेवाओं के माध्यम से महिलाओं को कैसे आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है। स्वयं सहायता समूहों के जरिए महिलाओं को छोटी–छोटी ऋण सुविधाएँ दी जाती हैं, जिससे वे छोटे व्यवसाय शुरू कर पाती हैं।[5]

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2019), यह रिपोर्ट वैश्विक स्तर पर महिला स्वास्थ्य और सशक्तिकरण की स्थिति को दर्शाती है। इसमें यह बताया गया है कि महिलाओं का स्वास्थ्य सीधे उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों से जुड़ा हुआ है।[6]

मिश्रा, पी., और झा, एस. (2020), यह अध्ययन भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में SHGs द्वारा स्वास्थ्य शिक्षा और जागरूकता फैलाने की भूमिका को उजागर करता है। समूहों ने स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बढ़ाने में सहायक भूमिका निभाई। SHGs की महिलाएं 'स्वास्थ्य कार्यकर्ता' के रूप में भी उभरीं। यह अध्ययन दिखाता है कि SHGs न केवल आर्थिक बल्कि स्वास्थ्य सुधार की दिशा में भी एक प्रभावी माध्यम बन चुके हैं।[7]

अध्ययन की आवश्यकता– यह अध्ययन निम्न आय एवं उच्च आय वर्गों की महिलाओं में स्वयं सहायता समूह के महिला संवाद कार्यक्रमों के प्रभाव का तुलनात्मक विश्लेषण करता है, जिससे नीति निर्धारकों को बेहतर समझ मिलेगी कि किस प्रकार के हस्तक्षेप अधिक प्रभावी हैं।

कार्यप्रणाली– यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक है, जिसका उद्देश्य स्वयं सहायता समूह (SHG) के महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना और निम्न आय वर्ग तथा मध्यम आय वर्ग की महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण के स्तर की तुलना करना है।

अध्ययन क्षेत्र– बिहार के औरंगाबाद जिले की ग्रामीण जनसंख्या में महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए हैं, लेकिन अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। यहाँ की महिलाएं अक्सर सीमित संसाधनों और सामाजिक बाधाओं का सामना करती हैं। इसलिए, यह अध्ययन इस क्षेत्र में स्वयं सहायता समूह द्वारा महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलता का तुलनात्मक विश्लेषण करता है, विशेष रूप से आय वर्ग के आधार पर।

अध्ययन के उद्देश्य– यह शोध महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलता को मापने के लिए किया गया है, जिससे यह जाना जा सके कि स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं में सामाजिक सशक्तिकरण के कौन–कौन से पहलू प्रभावित हो रहे हैं। साथ ही, यह अध्ययन यह भी विश्लेषित करता है कि आय वर्ग के आधार पर इस प्रभाव में क्या भिन्नताएँ हैं।

1. स्वयं सहायता समूह के महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में।
2. निम्न आय वर्ग और मध्यम आय वर्ग की महिलाओं में सामाजिक सशक्तिकरण के स्तर की तुलना करना, जो स्वयं सहायता समूह महिला संवाद कार्यक्रम में भाग ले रही हैं।
3. महिला संवाद कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास, और सामाजिक भागीदारी में वृद्धि का अध्ययन करना।
4. आर्थिक, शैक्षिक, और स्वास्थ्य संबंधित जागरूकता में महिला संवाद कार्यक्रम के प्रभाव का विश्लेषण करना।

5. शोध के निष्कर्षों के आधार पर स्वयं सहायता समूहों द्वारा संचालित महिला संवाद कार्यक्रम को और प्रभावी बनाने के लिए सुझाव देना।

नमूना आकार और चयन– कुल 120 महिलाएं चयनित की गईं। इनमें से 60 महिलाएं निम्न आय वर्ग से और 60 महिलाएं मध्यम आय वर्ग से आयु वर्ग 35 से 55 वर्ष कि है।

डाटा संग्रह–

क. संरचित प्रश्नावली– सामाजिक सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों जैसे निर्णय क्षमता, आत्मविश्वास, आर्थिक सशक्तिकरण, स्वास्थ्य जागरूकता, और सामाजिक भागीदारी पर प्रश्न शामिल थे।

ख. साक्षात्कार– महिलाओं के अनुभव और महिला संवाद कार्यक्रम के प्रभाव को समझने के लिए अर्ध–संरचित साक्षात्कार किए गए।

ग. फोकस समूह चर्चा– स्वयं सहायता समूह सदस्यों के बीच संवाद और अनुभव साझा करने के लिए आयोजित की गई।

परिकल्पना–

1. स्वयं सहायता समूह द्वारा संचालित महिला संवाद कार्यक्रम महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में सकारात्मक प्रभाव डालता है।
2. मध्यम आय वर्ग की महिलाएं महिला संवाद कार्यक्रम के माध्यम से सामाजिक सशक्तिकरण के उच्च स्तर को प्राप्त करती हैं, तुलना में निम्न आय वर्ग की महिलाओं से।
3. महिला संवाद कार्यक्रम में भागीदारी से महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास और सामाजिक भागीदारी में वृद्धि होती है।
4. महिला संवाद कार्यक्रम महिलाओं की आर्थिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य जागरूकता को बढ़ावा देता है।

परिणाम– आंकड़ों का विश्लेषण स्वयं सहायता समूह द्वारा संचालित महिला संवाद कार्यक्रम की प्रभावशीलता को समझने के लिए किया गया। तुलनात्मक दृष्टिकोण से निम्न आय वर्ग और मध्यम आय वर्ग की महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों पर परिणामों की जांच की गई।

सामाजिक सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों का विश्लेषण :–

(क) निर्णय लेने की क्षमता– मध्यम आय वर्ग की महिलाओं मेंरू 78ः महिलाओं ने बताया कि वे परिवार और समाज में निर्णय लेने में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। निम्न आय वर्ग की महिलाओं मेंरू केवल 52ः महिलाओं ने यह कहा। यह दर्शाता है कि मध्यम आय वर्ग की महिलाएं अधिक सशक्त हैं और संवाद कार्यक्रम ने उनकी निर्णय क्षमता में वृद्धि की है।

(ख) आत्मविश्वास का स्तर– महिला संवाद कार्यक्रम से जुड़ी अधिकांश महिलाओं ने आत्मविश्वास में वृद्धि की रिपोर्ट दी। मध्यम आय वर्ग की 85.00% महिलाएं अपने विचार खुले तौर पर व्यक्त करने में सक्षम हैं, जबकि निम्न आय वर्ग में यह प्रतिशत 60.00% है।

(ग) आर्थिक सशक्तिकरण– 70.00% मध्यम आय वर्ग की महिलाओं ने स्वयं के आर्थिक संसाधन होने की बात कही, जबकि निम्न आय वर्ग में यह 40ः थी। SHG के माध्यम से माइक्रोफाइनेंस और ऋण सुविधा से दोनों वर्गों की महिलाओं को लाभ मिला, परंतु मध्यम आय वर्ग अधिक लाभान्वित हुई।

(घ) स्वास्थ्य जागरूकता– मध्यम आय वर्ग की 75.00% महिलाओं को स्वास्थ्य और पोषण के प्रति जागरूकता मिली, जबकि निम्न आय वर्ग में यह 55.00% थी। टीकाकरण, स्वच्छता, और मातृ स्वास्थ्य जैसे विषयों पर महिला संवाद कार्यक्रम ने प्रभाव डाला।

(ड) सामाजिक भागीदारी– महिलाओं की सामाजिक भागीदारी मध्यम आय वर्ग में 80ः थी, जबकि निम्न आय वर्ग में 50.00%।

महिला संवाद कार्यक्रम ने महिलाओं को पंचायत, सामुदायिक सभा, और सामाजिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया।

आय वर्ग	निर्णय क्षमता	आत्मविश्वास	आर्थिक शक्तिकरण	स्वास्थ्य जागरूकता	सामाजिक भागीदारी
निम्न आय वर्ग	52.00%	60.00%	40.00%	55.00%	50.00%
मध्यम आय वर्ग	78.00%	85.00%	70.00%	75.00%	80.00%

टी–टेस्ट के परिणाम दर्शाते हैं कि दोनों वर्गों के बीच सभी सामाजिक सशक्तिकरण के आयामों में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर है ($p<0.05$)।

महिला संवाद कार्यक्रम की भूमिका–सर्वेक्षण में 90.00% से अधिक महिलाओं ने माना कि महिला संवाद कार्यक्रम ने उनके जीवन में सकारात्मक बदलाव लाए हैं। महिला संवाद के दौरान मिली जानकारियों ने उन्हें न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक और स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं को समझने और हल करने में सहायता दी।

गुणात्मक विश्लेषण (साक्षात्कार और FGD से)– महिलाएं अपने अनुभव साझा करते हुए बताती हैं कि महिला संवाद कार्यक्रम के कारण उनके आत्मसम्मान में वृद्धि हुई है। "हम अब अपने परिवार में अपने अधिकारों के लिए खड़ी हो सकती हैं," एक प्रतिभागी ने कहा। समूह की बैठकें महिलाओं को नई जानकारी पाने और एक–दूसरे के अनुभवों से सीखने का अवसर प्रदान करती हैं।

चुनौतियाँ और सीमाएँ– निम्न आय वर्ग की महिलाओं के लिए आर्थिक बाधाएं और सामाजिक प्रतिबंध अभी भी एक बड़ी चुनौती हैं। संवाद कार्यक्रम की पहुँच और गुणवत्ता में भिन्नता भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा रही। आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि महिला संवाद कार्यक्रम स्वयं सहायता समूह के तहत महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण के विभिन्न पहलुओं में सकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। हालांकि मध्यम आय वर्ग की महिलाएं इस कार्यक्रम से अधिक लाभान्वित हुई हैं, लेकिन निम्न आय वर्ग में भी सकारात्मक बदलाव देखे गए हैं।

चर्चा– इस अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि स्वयं सहायता समूहों द्वारा संचालित महिला संवाद कार्यक्रम महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वयं सहायता समूहों कि महिलाओं को एक मंच प्रदान करते हैं जहाँ वे न केवल आर्थिक सहयोग प्राप्त करती हैं, बल्कि सामाजिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधित मुद्दों पर भी संवाद करती हैं। वहीं विश्लेषण में पाया गया कि मध्यम आय वर्ग की महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता निम्न आय वर्ग की महिलाओं की तुलना में अधिक थी। इसका कारण यह हो सकता है कि मध्यम आय वर्ग की महिलाएं आर्थिक रूप से कुछ अधिक सक्षम होने के साथ–साथ शिक्षा और सामाजिक संपर्कों में भी बेहतर होती हैं। महिला संवाद कार्यक्रम ने इन दोनों वर्गों की महिलाओं में निर्णय क्षमता बढ़ाने में सहायक भूमिका निभाई। आत्मविश्वास महिलाओं के सशक्तिकरण का एक प्रमुख आयाम है। अध्ययन में यह देखा गया कि महिला संवाद कार्यक्रम से जुड़ी महिलाएं अपने विचार खुलकर व्यक्त करने लगी हैं, जिससे उनकी सामाजिक भागीदारी बढ़ी है। यह उनके परिवारों और समुदायों में निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को बढ़ावा देता है।

स्वयं सहायता समूह के माध्यम से वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता ने महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है। हालांकि मध्यम आय वर्ग की महिलाएं इस मामले में अधिक लाभान्वित हुई हैं, निम्न आय वर्ग की महिलाओं में भी आर्थिक सशक्तिकरण के संकेत मिले। इससे यह स्पष्ट होता है कि महिला संवाद कार्यक्रम केवल सामाजिक ही नहीं, आर्थिक रूप से भी महिलाओं को सशक्त बनाने में मददगार है। महिला संवाद कार्यक्रम के दौरान स्वास्थ्य और पोषण से जुड़ी जानकारी देने से महिलाओं में जागरूकता बढ़ी। यह स्वास्थ्य संबंधी बेहतर निर्णय लेने और परिवार की भलाई में सुधार का कारण बना। स्वास्थ्य जागरूकता में यह वृद्धि महिला और बच्चे दोनों के जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में मददगार साबित होगी।

अध्ययन में यह भी देखा गया कि निम्न आय वर्ग की महिलाओं को अभी भी सामाजिक और आर्थिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए स्वयं सहायता समूह और महिला संवाद कार्यक्रमों को और अधिक समावेशी और सशक्त बनाने के लिए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप योजना बनानी होगी। स्वयं सहायता समूह को स्थानीय स्तर पर मजबूत किया जाना चाहिए। महिला संवाद कार्यक्रमों को आय वर्ग विशेष ध्यान देते हुए योजना बनानी चाहिए। आर्थिक सहायता के साथ–साथ शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का समन्वय जरूरी है। समुदाय में जागरूकता और सामाजिक समर्थन बढ़ाने के लिए नियमित कार्यशालाएँ और बैठकें आयोजित की जानी चाहिए।

निष्कर्ष–

महिला संवाद कार्यक्रम स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में प्रभावी साधन साबित हो रहे हैं। यह कार्यक्रम महिलाओं को न केवल आत्मनिर्भर बनाता है, बल्कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक, और स्वास्थ्य के क्षेत्र में बेहतर अवसर प्रदान करता है। ग्रामीण औरंगाबाद के संदर्भ में, इन कार्यक्रमों का विस्तार और सुधार महिलाओं के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

यह अध्ययन स्वयं सहायता समूहों द्वारा संचालित महिला संवाद कार्यक्रम की महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में प्रभावशीलता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करता है। औरंगाबाद जिले के ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं पर किये गए इस शोध से पता चला कि ये कार्यक्रम महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास, आर्थिक सशक्तिकरण, स्वास्थ्य जागरूकता, और सामाजिक भागीदारी को बढ़ावा देने में सहायक हैं।

विशेष रूप से मध्यम आय वर्ग की महिलाओं ने महिला संवाद कार्यक्रमों से अधिक लाभ प्राप्त किया, किन्तु निम्न आय वर्ग की महिलाओं में भी सकारात्मक प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे गए। यह इस बात का संकेत है कि महिला संवाद कार्यक्रम व्यापक स्तर पर महिलाओं के जीवन को सुधारने में सक्षम हैं, यदि उन्हें उचित संसाधन और समर्थन प्राप्त हो।

शोध के दौरान सामने आई कुछ चुनौतियाँ, जैसे निम्न आय वर्ग की महिलाओं की आर्थिक कठिनाइयाँ और सामाजिक प्रतिबंध, इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को सीमित कर सकती हैं। अतः यह आवश्यक है कि इन बाधाओं को दूर करने के लिए स्थानीय स्तर पर अधिक संवेदनशील और समावेशी नीतियाँ बनाई जाएं।

अंत में, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिला संवाद कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण के लिए एक प्रभावशाली माध्यम हैं, जो महिलाओं को न केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाते हैं, बल्कि सामाजिक और व्यक्तिगत निर्णयों में उनकी भागीदारी को भी मजबूत करते हैं।

सुझाव–

स्वयं सहायता समूहों का सुदृढ़ीकरण– शासन और गैर–सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे स्वयं सहायता समूह को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और प्रबंधन कौशल विकास पर विशेष ध्यान दें।

आय वर्ग के अनुसार लक्षित कार्यक्रम– महिला संवाद कार्यक्रमों को निम्न और मध्यम आय वर्ग की महिलाओं की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुए डिजाइन किया जाना चाहिए, ताकि सभी वर्गों को समान रूप से लाभ मिल सके।

आर्थिक सशक्तिकरण के अवसर– स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं को स्वरोजगार, माइक्रोफाइनेंस, और उद्यमिता संबंधी प्रशिक्षण उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो सके।

स्वास्थ्य और शिक्षा पर विशेष फोकस– महिला संवाद कार्यक्रमों में स्वास्थ्य, पोषण, और शिक्षा से संबंधित विषयों को प्रमुखता दी जानी चाहिए ताकि महिलाओं और उनके परिवारों का जीवन स्तर सुधर सके।

सामाजिक जागरूकता बढ़ाना– स्थानीय समुदायों में महिलाओं के अधिकारों, घरेलू हिंसा रोकथाम, और सरकारी योजनाओं की जानकारी बढ़ाने के लिए नियमित अभियान और कार्यशालाएँ आयोजित की जानी चाहिए।

स्थानीय नेतृत्व को प्रोत्साहन– महिलाओं में नेतृत्व कौशल को बढ़ावा देने के लिए महिला संवाद कार्यक्रमों में नेतृत्व विकास कार्यशालाएँ और प्रेरणादायक सत्र शामिल किए जाएं।

निगरानी और मूल्यांकन– कार्यक्रमों की प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए नियमित रूप से निगरानी और मूल्यांकन की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि आवश्यक सुधार समय पर किए जा सकें।

संदर्भ सूची–

1. बोस, ए., और सिंह, आर. (2021), महिला संघ में स्वयं सहायता समूह की भूमिकारू एक अध्ययन। भारतीय सामाजिक विज्ञान जर्नल, 15(2), 45–62।
2. कुमार, एस., और वर्मा, पी. (2019), ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में स्वयं सहायता समूहों की प्रभावशीलता– बिहार का एक केस स्टडी। ग्रामीण विकास जर्नल, 38(1), 89–103।
3. सिंह, एन., और तिवारी, ए. (2020), महिला संवाद कार्यक्रम का सामाजिक विकास में योगदान। महिला अध्ययन पत्रिका, 10(4), 112–128।
4. बिहार सरकार (2022), बिहार राज्य महिला सशक्तिकरण नीति। पटना, महिला एवं बाल विकास विभाग।
5. शर्मा, आर., और गुप्ता, एम. (2018), महिला सशक्तिकरण पर स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से माइक्रोफाइनेंस का प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड इकोनॉमिक रिसर्च, 3(7), 276–288।
6. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2019) महिला स्वास्थ्य और सशक्तिकरणः वैश्विक परिप्रेक्ष्य। जिनेवारू डब्ल्यूएचओ प्रकाशन।
7. मिश्रा, पी., और झा, एस. (2020) ग्रामीण महिलाओं में स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाने में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका। इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी हेल्थ, 32(3), 205–213।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में लय और लयकारी का विकासात्मक अध्ययन

विनय सिंह*

सारांश –

भारतीय संगीत में 'लय' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह संगीत को जीवन देती है, उसकी गति और अनुशासन को निर्धारित करती है। 'लयकारी' लय की वह कलात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कलाकार ताल के निर्धारित ढाँचे में रहकर विविध गणनात्मक एवं रचनात्मक प्रयोग करता है। वैदिक युग के सामगान से लेकर आधुनिक युग के फ्यूज़न संगीत तक लय और लयकारी की अवधारणा में निरंतर विकास हुआ है। इस शोध आलेख में लय एवं लयकारी की उत्पत्ति, विकास, विभिन्न कालों में उसका स्वरूप, घराना-परंपराओं में योगदान तथा आधुनिक समय में उसकी अभिव्यक्ति का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना - भारतीय संगीत की तीन प्रमुख आधारभूत तत्व हैं — **स्वर**, **लय** और **भाव**। यदि स्वर आत्मा है, तो लय शरीर और भाव प्राण। संगीत में लय ही वह तत्त्व है जो संगीत के सभी अंगों को गति और अनुशासन प्रदान करता है।

'लय' शब्द संस्कृत धातु "ली" से बना है, जिसका अर्थ है — मिलना या विलीन होना। इस प्रकार लय का तात्पर्य उस गति या प्रवाह से है जिसमें सभी स्वरों और तालों का समन्वय होता है। भारतीय संगीत में लय केवल गणना का विषय नहीं है, बल्कि यह एक **अनुभवात्मक एवं आध्यात्मिक तत्व** है, जो संगीत को आत्मा प्रदान करता है।

लय की संकल्पना और स्वरूप- लय को संगीत की गति या प्रवाह कहा जा सकता है। नाट्यशास्त्र, संगीतरत्नाकर, संगीत दर्पण आदि ग्रंथों में लय को अत्यंत विस्तार से परिभाषित किया गया है। शार्ङ्गदेव (13वीं शताब्दी) ने 'संगीतरत्नाकर' में लिखा है: "लया नाम गतिर्वाच्या, तत्र कालः प्रवर्तकः।" अर्थात — लय गति का नाम है और काल उसका प्रेरक तत्त्व है।

लय के मुख्य तीन प्रकार हैं —

1. **विलंबित लय (Slow tempo):** धीमी गति जिसमें भाव और गहराई प्रमुख होती है।
2. **मध्य लय (Medium tempo):** संतुलित गति, जिसमें रचना की स्थिरता और सहजता बनी रहती है।
3. **द्रुत लय (Fast tempo):** तीव्र गति, जो तकनीकी कौशल और उर्जस्विता का परिचायक है।

इसके अतिरिक्त, अतिविलंबित और अतिद्रुत जैसी उपश्रेणियाँ भी देखी जाती हैं, विशेषकर तबला और पखावज वादन में।

लय का ऐतिहासिक विकास- भारतीय संगीत की परंपरा में 'लय' का विकास अत्यंत प्राचीन और निरंतर प्रक्रिया रही है। लय केवल संगीत की गति नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक लय का स्वरूप समयानुसार परिवर्तित और परिष्कृत होता रहा है। इस विकास को चार प्रमुख कालों में विभाजित किया जा सकता है — वैदिक एवं प्राचीन काल, मध्यकाल, मुगल और उत्तर-मुगल काल, तथा आधुनिक काल।

वैदिक और प्राचीन काल: भारतीय संगीत का प्रारंभिक स्वरूप वैदिक काल में दिखाई देता है। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में निश्चित स्वर और मात्रा का प्रयोग होता था, जिससे लय की एक मूलभूत संरचना निर्मित हुई। विशेष रूप से सामवेद को संगीत की जननी माना जाता है, क्योंकि इसमें स्वर, ताल और लय तीनों का प्रारंभिक समन्वय विद्यमान है। सामगान में मंत्रों का गायन निश्चित गति और ताल के साथ किया जाता था, जो आज की लयबद्ध गायकी का प्रारंभिक रूप है।

उस समय लय का प्रयोग केवल संगीतिक आनंद के लिए नहीं, बल्कि धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों और वेदपाठ में समय और अनुशासन बनाए रखने के लिए किया जाता था। लय को दिव्यता और ब्रह्माण्डीय गति का प्रतीक माना जाता था।

प्राचीन ग्रंथों जैसे नाट्यशास्त्र (भरतमुनि, लगभग 2वीं शताब्दी ई.पू.) में लय को नाट्यसंगीत का अनिवार्य अंग बताया गया है। भरत मुनि के अनुसार, लय के तीन प्रकार हैं — विलंबित, मध्य और द्रुत, और इन तीनों का प्रयोग संगीत की स्थिति और भाव के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार लय की अवधारणा उस समय तक सैद्धांतिक रूप से भी स्थापित हो चुकी थी।

* एम.पी.ए., नेट (संगीत), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, मो. 87700237797

मध्यकाल: मध्यकालीन भारत में संगीत का स्वरूप अधिक संगठित और शास्त्रीय बन गया। इस युग में ध्रुपद गायकी और पखावज वादन के कारण लय को अत्यधिक परिष्कृत रूप प्राप्त हुआ। ध्रुपद में ताल और लय का अनुशासन सर्वोपरि माना गया।

इस काल में अनेक तालों का विकास हुआ — जैसे चौताल (12 मात्राएँ), धमार (14 मात्राएँ), सूलताल (10 मात्राएँ), आरताल (6 मात्राएँ) आदि।

शार्ङ्गदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर (13वीं शताब्दी) में लय और ताल की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। उन्होंने लय को संगीत का प्राण बताया और ताल प्रणाली को व्यवस्थित रूप दिया। इस काल में संगीत और गणित का घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ — जिससे गणनात्मक लयकारी की नींव पड़ी।

मुगल और उत्तर-मुगल काल: मुगल शासनकाल में संगीत को शाही संरक्षण मिला। इस युग में अमीर खुसरो (13वीं सदी) का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने पारसी और भारतीय संगीत परंपराओं का संगम कर ताल और लय में अनेक प्रयोग किए। सदरा, खयाल, और कव्वाली जैसी नई शैलियों में लय का उपयोग नए ढंग से हुआ।

17वीं से 18वीं शताब्दी में तबला का आविष्कार हुआ, जिसने लय और ताल के स्वरूप को एक नई दिशा दी। पखावज की जगह तबले ने प्रमुखता प्राप्त की, और वाद्य-संगीत में लयकारी के सूक्ष्म और जटिल प्रयोग संभव हो सके। तबला घरानों — दिल्ली, लखनऊ, अजराड़ा, बनारस और फर्रुखाबाद — के उद्भव ने लय को विविध शैलीगत रूप प्रदान किया।

आधुनिक काल: आधुनिक युग में लय और लयकारी का स्वरूप अत्यंत विकसित और वैश्विक हो गया है। उस्ताद अहमदजान थिरकवा, पं. किशन महाराज, पं. सामता प्रसाद, पं. अनोखेलाल, और उस्ताद जाकिर हुसैन जैसे महान कलाकारों ने लयकारी को तकनीकी उत्कृष्टता और कलात्मक ऊँचाई पर पहुँचाया।

अब लय केवल शास्त्रीय संगीत तक सीमित नहीं रही। यह फ्यूज़न, फिल्म संगीत, और जुगलबंदी तक विस्तृत हो चुकी है। डिजिटल उपकरणों, इलेक्ट्रॉनिक तबला और मेट्रोनोम के प्रयोग से लय का अभ्यास और प्रस्तुति दोनों अधिक सटीक हुए हैं।

इस प्रकार, आधुनिक काल में लय का स्वरूप पारंपरिक गहराई के साथ-साथ वैज्ञानिक, तकनीकी और वैश्विक दृष्टि से भी परिपक्व हुआ है।

लयकारी की संकल्पना- लयकारी का शाब्दिक अर्थ है — लय का कुशल प्रयोग।

यह वह तकनीक है जिसके माध्यम से कलाकार निश्चित ताल-मात्रा के भीतर विभिन्न गणनात्मक संयोजन करता है, जिससे प्रस्तुति में नवीनता और रोमांच उत्पन्न होता है।

लयकारी के प्रमुख प्रकार:

1. **दुगुन (Double speed)**
2. **तिगुन (Triple speed)**
3. **चौगुन (Quadruple speed)**
4. **आड़-लय (1.5x speed)**
5. **ढाईगुन, साढ़ेतीनगुन आदि**
6. **तिहाई (तीन बार पुनरावृत्ति)**

तिहाई का उदाहरण: यदि किसी ताल की 16 मात्राएँ हैं, और कोई बोल तीन बार इस प्रकार दोहराया जाए कि वह सम (पहली मात्रा) पर समाप्त हो, तो यह तिहाई कहलाती है।

उदाहरण — धा तिन तिन ना | धा तिन तिन ना | धा तिन तिन ना (सम) लयकारी का उद्देश्य मात्र गणितीय जटिलता नहीं, बल्कि संगीतिक सुंदरता और भावात्मक विस्तार है।

घराना परंपरा और लयकारी - हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में "घराना" परंपरा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। घराना न केवल एक भौगोलिक पहचान है, बल्कि यह संगीत की विशिष्ट *शैली, तकनीक, सौंदर्यबोध और प्रस्तुति-पद्धति* का प्रतीक है। विशेषकर तबला घरानों के माध्यम से लय और लयकारी की जो समृद्ध परंपरा विकसित हुई, उसने भारतीय संगीत को गहराई, विविधता और विशिष्ट पहचान प्रदान की।

तबला वादन में प्रत्येक घराने ने लय की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से की है — कहीं शुद्धता पर बल दिया गया, कहीं सौंदर्य पर, तो कहीं गणनात्मक प्रयोगों पर। निम्नलिखित प्रमुख घरानों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार लयकारी का स्वरूप विभिन्न परंपराओं में विकसित हुआ।

(क) दिल्ली घराना- दिल्ली घराना को तबला वादन की सबसे प्राचीन परंपरा माना जाता है। इसका उद्भव 18वीं शताब्दी में दिल्ली दरबार के परिवेश में हुआ। इस घराने की वादन-शैली में ताल की शुद्धता, बोलों की स्पष्टता और संतुलित लयकारी प्रमुख गुण हैं। यह घराना "कायदा-बोल-बनाव" की परंपरा के लिए प्रसिद्ध है, जहाँ प्रत्येक रचना को व्यवस्थित ढंग से विकसित किया जाता है। दिल्ली शैली में धा धिन धिन धा, तिन तिन ना जैसे बोल स्पष्ट उच्चारित किए जाते हैं, जिससे ताल का ढाँचा दृढ़ और पारदर्शी बनता है। इस घराने के प्रमुख कलाकारों में उस्ताद सिद्दार खान, उस्ताद अहमदजान थिरकवा, और बाद में उस्ताद इंसार हुसैन खान जैसे महान तबलावादक हुए। दिल्ली घराने की विशेषता यह है कि इसकी लयकारी संयमित और रचनात्मक दोनों है— इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि गणित और सौंदर्य का अद्भुत संतुलन देखा जाता है।

(ख) लखनऊ घराना- लखनऊ घराना का उद्भव अवध दरबार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हुआ, जहाँ नृत्य और संगीत दोनों को समान महत्व प्राप्त था। इस घराने पर कथक नृत्य की गहरी छाप है। यहाँ की लयकारी अत्यंत सौंदर्यपूर्ण, कोमल, नफासतपूर्ण और नृत्यात्मक होती है। इस घराने में तबले की नाटकीयता और भावाभिव्यक्ति प्रमुख हैं। लखनऊ घराने की रचनाओं में "गुजारी" (धीमी गति में भावपूर्ण प्रस्तुति) और "कायदा-बोल" की सजावट विशेष रूप से दिखाई देती है। मुख्य विशेषता — सजावट, नज़ाकत, भावनात्मक लयकारी और नृत्यात्मक गति। प्रमुख कलाकार: उस्ताद अबिद हुसैन, उस्ताद वज़ीर खान, और पं. स्वपन चौधरी आदि।

(ग) बनारस घराना- बनारस घराना को तबला वादन की सबसे ऊर्जस्वी और जीवंत परंपरा माना जाता है। यह घराना अपने द्रुत लय वादन, रेला, टुकड़ा, और कायदा के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की लयकारी अत्यंत सशक्त, तीव्र और गणनात्मक होती है। बनारस घराने के तबलावादक 'रेला' के माध्यम से गति और शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन करते हैं। इस घराने की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यहाँ लय में ताल-मात्रा का पूर्ण नियंत्रण और समय-गणना की गहराई होती है। पं. किशन महाराज, पं. सामता प्रसाद (गुड्डे महाराज), पं. आनंद गोपाल जोशी, और पं. अशुतोष भट्टाचार्य इस घराने के प्रमुख कलाकार रहे हैं। यह घराना "लय में ऊर्जा और उत्सव" का प्रतीक माना जाता है।

(घ) फर्रुखाबाद घराना - फर्रुखाबाद घराना को तबला वादन की सबसे संतुलित और संगीतात्मक परंपराओं में से एक माना जाता है। इसका उद्भव 18वीं शताब्दी में फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इस घराने की प्रमुख विशेषता है — संगीतात्मकता, संयम, गंभीरता और ताल की शुद्धता। यह घराना न तो दिल्ली की तरह शुद्ध गणनात्मक है, न ही बनारस की तरह अत्यंत ऊर्जस्वी, बल्कि यह दोनों का संतुलित मिश्रण है। फर्रुखाबाद शैली में 'कायदा' और 'रचना' के साथ-साथ 'लयकारी' अत्यंत सधी हुई और मृदुल होती है। प्रमुख कलाकार: उस्ताद हमीद हुसैन, पं. संदीप दास, और उस्ताद नवाब अली खान।

(ङ) अजराड़ा घराना- अजराड़ा घराना दिल्ली के समीप अजराड़ा नामक गाँव में विकसित हुआ। यह घराना दिल्ली घराने की शाखा माना जाता है, किंतु इसने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई। इस घराने की लयकारी अत्यंत गणनात्मक, सूक्ष्म और बौद्धिक है। यहाँ समय-गणना की सटीकता और ताल-व्यवस्था का गहन ज्ञान अपेक्षित है। अजराड़ा शैली में रचनाएँ अधिकतर विलंबित लय में विकसित की जाती हैं, जिससे प्रत्येक बोल को पर्याप्त समय और अभिव्यक्ति मिलती है। प्रमुख कलाकार: उस्ताद हबीबुद्दीन खान, उस्ताद मिराज हुसैन, और उस्ताद मोहम्मद हनीफ।

लयकारी के मनोवैज्ञानिक और सौंदर्यशास्त्रीय पहलू: लयकारी न केवल गणना है, बल्कि यह अनुभव की गहराई से जुड़ी है। जब कलाकार लय में पूर्णतः डूब जाता है, तो वह 'समाधि अवस्था' को प्राप्त करता है। भारतीय सौंदर्यशास्त्र में यह 'रसानुभूति' का ही एक रूप है — जहाँ गणना, भावना और कलात्मकता का अद्भुत समन्वय होता है।

आधुनिक युग में लय और लयकारी का स्वरूप- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में लय और लयकारी का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, किंतु आधुनिक युग में इसका स्वरूप बहुआयामी और तकनीकी दृष्टि से परिष्कृत हो चुका है। आज लय मात्र ताल-मात्राओं की गणना नहीं रह गई है, बल्कि यह एक **रचनात्मक, प्रयोगधर्मी और वैश्विक अभिव्यक्ति का माध्यम** बन चुकी है। आधुनिक कलाकारों ने पारंपरिक सीमाओं से आगे जाकर लयकारी को नई दिशा, नवीन रूप और नवीन सन्दर्भ प्रदान किए हैं।

आधुनिक युग की सबसे प्रमुख विशेषता है — **तकनीकी सटीकता और रचनात्मक विविधता**। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पं. किशन महाराज, पं. सामता प्रसाद, उस्ताद अहमदजान थिरकवा, उस्ताद जाकिर हुसैन, पं. आनंद गोपाल बंधोपाध्याय आदि कलाकारों ने लय को न केवल साधना का विषय बनाया बल्कि उसे प्रदर्शन-कला का एक वैज्ञानिक रूप दिया। इन कलाकारों ने परंपरागत घराना-शैली को आधुनिक मंचीय रूप प्रदान किया, जिससे लयकारी अब केवल विद्वानों की परिधि तक सीमित न रहकर जनसामान्य की समझ में भी आने लगी।

आधुनिक लयकारी का स्वरूप तकनीकी दृष्टि से अत्यंत सशक्त है। आज कलाकार लय में **जटिल गणनात्मक प्रयोग** करते हैं — जैसे ढाईगुन, साढ़ेतीनगुन, अड़-लय, तिहाई, कुंठन और विकुंठन आदि। डिजिटल युग में 'मेट्रोनोम' और 'इलेक्ट्रॉनिक तबला' जैसे उपकरणों ने लय की सटीकता को सुनिश्चित किया है। इससे कलाकार अभ्यास के समय प्रत्येक मात्रा की समानता और ताल की निरंतरता बनाए रख सकते हैं।

संगीत शिक्षा के क्षेत्र में भी लय का महत्व बढ़ा है। विश्वविद्यालयों और संगीत संस्थानों में अब ताल प्रशिक्षण और लय संवेदना (Rhythmic Sense) पर विशेष पाठ्यक्रम पढ़ाए जाते हैं। कई आधुनिक शोधकर्ता लयकारी के गणितीय पक्ष पर कंप्यूटर मॉडल और ग्राफिक विश्लेषण के माध्यम से अध्ययन कर रहे हैं। इस प्रकार लय का अध्ययन अब शुद्ध कलात्मक विषय न रहकर **वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक** दृष्टि से भी किया जा रहा है।

आधुनिक प्रस्तुतियों में लयकारी का उपयोग केवल शास्त्रीय संगीत तक सीमित नहीं है। **फ्यूज़न संगीत**, **जुगलबंदी**, और **फिल्म संगीत** में भी भारतीय ताल प्रणाली ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। ए.आर. रहमान, शंकर–एहसान–लॉय, और ज़ाकिर हुसैन जैसे कलाकारों ने लयकारी के भारतीय सिद्धांतों को पश्चिमी लयबद्ध संरचनाओं के साथ जोड़कर एक नया वैश्विक संगीत रूप निर्मित किया है। इससे भारतीय लय प्रणाली अब अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी आदर के साथ प्रस्तुत की जाती है।

नृत्य, नाटक और वाद्य-संयोजन के क्षेत्र में भी आधुनिक लयकारी ने नयी संभावनाएँ खोली हैं। कथक, भरतनाट्यम, ओडिसी जैसे नृत्य रूपों में लय के प्रयोगों ने आधुनिक प्रस्तुति को आकर्षक बनाया है। विशेष रूप से "जुगलबंदी" में स्वर और वाद्य के बीच लयकारी संवाद दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देता है।

सारांशतः, आधुनिक युग में लय और लयकारी का स्वरूप पारंपरिक गहराई और आधुनिक तकनीक का अद्भुत संगम है। आज यह केवल ताल की सीमित परिधि न होकर एक **सजीव, प्रयोगशील और अंतरराष्ट्रीय कला रूप** बन चुकी है। यह भारतीय संगीत की परंपरा का निरंतर प्रवाह है, जो आधुनिक चेतना, तकनीक और वैश्विक दृष्टि से समृद्ध होता जा रहा है।

- **फ्यूज़न संगीत** – जहाँ भारतीय तालों का पश्चिमी बीट्स के साथ मिश्रण किया जाता है।
- **फिल्म संगीत** – एस.डी. बर्मन, ए.आर. रहमान, शंकर-एहसान-लॉय आदि ने भारतीय तालों को आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया।
- **जुगलबंदी** – स्वर और वाद्य के बीच लयकारी का संवाद।
- **डिजिटल युग** – मेट्रोनोम, ताल-मशीन, और डिजिटल तबला ने अभ्यास और प्रदर्शन दोनों को तकनीकी रूप से सशक्त बनाया।

निष्कर्ष- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में लय और लयकारी का विकास केवल तकनीकी नहीं बल्कि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आध्यात्मिक यात्रा का परिणाम है। लय संगीत को जीवन देती है और लयकारी उसे अभिव्यक्ति का नया आयाम प्रदान करती है। वैदिक मंत्रोच्चार से लेकर आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक प्रस्तुतियों तक, लय ने संगीत को एकता, गति और अनुशासन का प्रतीक बनाए रखा है।

संदर्भ सूची-

1. नारायण, भातखंडे, विष्णु. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, खण्ड 1–4, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद।
2. ठाकुर, ओंकारनाथ. संगीतांजली, खण्ड 1–6, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली।
3. मिश्र, रमाशंकर. ताल प्रबंध, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद।
4. शार्ङ्गदेव. संगीत रत्नाकर, संपादक: पं. सुधाकर द्विवेदी, नाग प्रकाशन, वाराणसी।
5. ठाकुर, ओंकारनाथ. भारतीय संगीत का इतिहास, प्रयाग संगीत समिति।
6. बर्मन, नीना. Rhythm in North Indian Music, Oxford University Press, 1999.
7. देसाई, एन. एच. भारतीय संगीत में लय और ताल का विकास, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली।
8. आर., श्रीनिवास, Indian Rhythm ology: Concepts and Traditions, Motilal Banarsidass, 2005.
9. भट्टाचार्य, संजय. तबला घरानों की परंपरा और विकास, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2010।
10. पं. किशन महाराज. लय और लयकारी: एक अनुभव, वाराणसी संगीत शोध पत्रिका, 1987।
11. उस्ताद जाकिर हुसैन. The Art of Tabla and Rhythm, Bombay, 2002.
12. भरतमुनि. नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।

दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति

पूजा विश्वकर्मा*

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है जिसका विश्व के अलग–अलग देशों में भारतीयों द्वारा प्रसार किया गया। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण दक्षिण–पूर्व एशिया भारतीय संस्कृति से सबसे ज्यादा प्रभावित रहीं है। दक्षिण–पूर्व एशिया के अन्तर्गत इण्डोनेशिया (जावा, सुमात्रा, बोर्नियों, बाली), मलेशिया (मलय), स्याम (थाईलैंड), वर्मा (म्यांमार), इण्डो–चाइना (कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम) इत्यादि क्षेत्र सम्मिलित थे। इन देशों के साथ भारत के ऐतिहासिक सम्बन्ध प्राचीन काल से चले आ रहे है तथा यह सम्पूर्ण क्षेत्र सांस्कृतिक साम्राज्य का महत्वपूर्ण अंग था।

इतिहासकारों के अनुसार 'इतिहास का यह सर्वमान्य नियम है कि जब किसी अवनत सभ्यता का उन्नत सभ्यता के साथ सम्पर्क होता है, तो अवनत सभ्यता के लोग उन्नत सभ्यता को अपनाने लगते हैं और धीरे–धीरे उसी को आत्मसात् कर लेते है'[1]। भारत पर आक्रमण करने वाले यूनानी, शक, कुषाण और हुण इत्यादि लोगों ने इसी के अन्तर्गत भारत के धर्म, भाषा, संस्कृति व सभ्यता को ग्रहण कर लिया था तथा इसी संस्कृति के फलस्वरूप अरबों के सम्पर्क में आकर मध्य एशिया की तुर्क जातियां भी इस्लाम धर्म में परिवर्तित हो गयी थी। यही प्रक्रिया दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों के साथ हुआ। वहां के स्थायी निवासी जब भारतीय उपनिवेशों के सम्पर्क में आये तो उन्होंने भारत के धर्म, भाषा व संस्कृति को ग्रहण कर लिया। मलाया, जावा बोर्नियों आदि देशों से कुछ राजाओं के प्राप्त अभिलेखों से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि वे भारतीय राजाओं की ही भाँति संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे, याज्ञिक कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करते थे, पौराणिक देवी–देवताओं की पूजा करते थे तथा दान–दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों का सम्मान किया करते थे। ये राजा जातीय दृष्टि से पूर्णतया भारतीय नही बन पाये लेकिन धार्मिक व सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्णतया भारतीय बन गये थे। दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ भारत के ऐतिहासिक सम्बन्धों का विवरण निम्नलिखित हैं–

व्यापारिक एवं आर्थिक सम्बन्ध–दक्षिण–पूर्व एशिया के विविध देशों के साथ भारत का सम्बन्ध सर्वप्रथम व्यापार के द्वारा ही जुड़ा था। धनार्जन के उद्देश्य से गये भारतीय व्यापारी इन देशों की ओर आकर्षित हुये। वहां उन्हे मसाले, स्वर्ण आदि बहुमूल्य धातुयें, किमती काष्ठ, खनिज आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ काफी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते थे। इन वस्तुओं का क्रय–विक्रय कर भारतीयों ने प्रभूत धन अर्जित किया तथा इसी कारण उन्होंने इन स्थानों का नाम सुवर्णभूमि एवं स्वर्णद्वीप रख दिया।[2] इनके अतिरिक्त इन प्रदेशों के रूप्यकद्वीप, ताम्रद्वीप, लंकाद्वीप, शंखद्वीप, कर्पूरद्वीप, नारिकेल द्वीप जैसे विभिन्न नाम भी साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त होते है। प्राचीन भारत में दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध विशेष रूप से मौर्यकाल और गुप्त कालों के दौरान स्थापित हुये थे। भारतीय व्यापारियों और नाविकों ने विभिन्न वस्तुओं (मसाले, किमती पत्थर, वस्त्र) के आदान–प्रदान को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव– भारतीय संस्कृति और धर्म विशेषकर हिन्दू धर्म व बौद्ध धर्म का दक्षिण–पूर्व एशिया के सांस्कृतिक दृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब भारतीयों ने अपने उपनिवेश यहां बसाये तो वे अपनी धर्म, संस्कृति को भी अपने साथ ले गये जिसे उस क्षेत्र के स्थायी निवासियों ने भी आत्मसात् किया। प्रारम्भ में इन क्षेत्रों में हिन्दू धर्म का विशेष प्रभाव था। बोर्नियों में विभिन्न भारतीय हिन्दू देवी–देवताओं (शिव, गणेश, नंदी, स्कन्द आदि) की मूर्तियाँ पूजा हेतु मन्दिरों में प्रतिष्ठापित की जाती थी।[3] कम्बुज देश में आठवीं सदी तक पौराणिक हिन्दू धर्म की प्रधानता थी जिसके स्पष्ट पुरातात्त्विक प्रमाण वहां से प्राप्त हजारों मूर्तियों व उनके खण्ड से मिलता है। इसके अतिरिक्त वहां वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण इत्यादि प्राचीन भारतीय साहित्य का भी अध्ययन–अध्यापन कार्य होता था।[4] कम्बुज में स्थित अंकोरवाट का विष्णु मन्दिर (यह विश्व का विशालतम हिन्दू मन्दिर है) स्पष्ट रूप से वहां भारतीय संस्कृति के प्रभाव को दर्शाता है। जावा तथा मलाया में मिले शिलालेख से भी यही ज्ञात होता है कि इन प्रदेशों में याज्ञिक कर्मकाण्डों तथा पौराणिक हिन्दू धर्म की प्रधानता थी। स्याम से भी हिन्दू मन्दिरों के अवशेष प्राप्त हुये है।[5]

* शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर 273009 (उत्तर प्रदेश)

दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों की भाषाओं पर भी भारतीय प्रभाव था। इन देशों की राजभाषा संस्कृत थी। स्याम की भाषा के सैकड़ों शब्द संस्कृत तथा पालि से लिये गये है। वहां के मंत्री को मोंत्री, पुरोहित को परोहित, अग्रमहिषी को अकखमहेसी, अश्व को असुसव कहा जाता है।[6] इसी प्रकार बोर्नियो से प्राप्त अनेक अभिलेख संस्कृत में है[7] तथा जावा, मलय आदि राज्यों की भी भाषा शुद्ध संस्कृत में थी और उसे ब्राह्मी लिपि में लिखा जाता था। कम्बुज के अभिलेखों में भी शुद्ध संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है तथा उसमें उन नियमों का भी पालन किया गया है, जो पाणिनी की अष्टाधायी तथा पंतजलि के महाभाष्य में प्रतिपादित है।[8]

भाषाओं की तरह लिपियां भी दक्षिण–पूर्व एशिया तक पहुँच गयी थी। दक्षिणी भारत के पल्लव लिपि दक्षिण–पूर्व एशिया के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि विभिन्न दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों की कई लिपि पल्लव लिपि से उत्पन्न हुई है जैसे की बाली, जावानीस और दक्षिण–पूर्व एवं पूर्वी एशिया में पायी जाने वाली कई अन्य लिपियों की उत्पत्ति भी ब्राह्मी लिपियों से हुई है। ब्राह्मी लिपि भारत की प्राचीनतम लिपियों में से एक है जिसकी उत्पत्ति 8वीं से 7वीं शताब्दी ई०पू० में हुई थी।

बौद्ध धर्म का प्रसार–भारत से दक्षिण–पूर्व एशिया तक बौद्ध धर्म का प्रसार एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आदान–प्रदान था। सिंहली ग्रन्थ के अनुसार दीपवंश तथा महावंश में उल्लेख मिलता है कि मौर्य शासक अशोक के शासन काल में पाटलिपुत्र में बौद्ध धर्म की तृतीय बौद्ध संगीति मोग्गलिपुतिस्स की अध्यक्षता में हुई तथा विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु बौद्ध भिक्षु भेजे गये जिनमें सोन तथा उत्तर नामक बौद्ध भिक्षु सुवर्णभूमि को भेजे गये।[9] उन्होंने वहां के निवासियों को न केवल अपने धर्म से परिचित कराया वरन् उन्हें बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाया तथा उन्हें उन्नत सभ्यता के मार्ग पर भी अग्रसर किया। हिन्दू धर्म के साथ–साथ ही बौद्ध धर्म भी विकसीत होता रहा है जिसका प्रमाण उन क्षेत्रों में उपलब्ध हुए पुरातात्त्विक सामग्रियों एवं चीनी साहित्य से होता रहा है। जावा में 5वीं सदी के प्रारम्भ में बौद्ध धर्म प्रचलित था। यहा गुणवर्मा ने बौद्ध धर्म के प्रचार का सुत्रपात किया था। इसका वर्णन फाह्यान ने अपने यात्रा विवरण में किया है। शुरू से जावा तथा उसके समीपवर्ती द्वीपों में हीनयान सम्प्रदाय के सर्वास्तिवादी निकाय का प्रचार हुआ था किन्तु 8वीं सदी तक वहा महायान सम्प्रदाय का प्रवेश हो चुका था। 8वीं सदी में जावा पर शैलेन्द्रवंशी राजाओं का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। शैलेन्द्रवंशी राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अतः इनके संरक्षण में बौद्ध धर्म ने प्रमुख स्थान प्राप्त किया। जावा में अनेक बौद्ध मन्दिरों एवं चैत्यों का निर्माण हुआ, जिनमें बोरोबुदूर का बौद्ध मन्दिर सबसे महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही चण्डी कलसन, चण्डी सरी, चण्डी सेबू के मन्दिर भी इसी काल में बने।[10] शैलेन्द्र राजा श्रीबालपुत्रदेव ने नालन्दा (भारत) में एक बौद्ध विहार तथा श्रीमारविजयोतुंगवर्मा ने अपने पिता चुड़ामणिवर्मा के नाम पर नागपट्टनम में एक बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था।[11] शैलेन्द्र राजाओं की राजधानी श्रीविजय बौद्धों का महत्वपूर्ण केन्द्र थी। वहा चीन के बौद्ध भिक्षु भारत आते हुए और चीन जाते हुए प्रायः विश्राम करते थे। कम्बुज में बौद्ध धर्म का सबसे प्राचीन प्रमाण प्रसत त कम अभिलेख (791ई0) है। वहां के राजा जयवर्मा सप्तम् के अनेक अभिलेखों के प्रारम्भ में बुद्ध की स्तुति की गयी है। इसी तरह चम्पा, स्याम आदि क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्त्विक स्त्रोंतो से बौद्ध धर्म के प्रसार का विवरण मिलता हैं। इस प्रकार भारत के बौद्ध प्रचारक एवं व्यापारियों ने बौद्ध शिक्षाओं के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिसके फलस्वरूप दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हुआ।

दक्षिण–पूर्व एशिया पर भारतीय प्रभाव–दक्षिण–पूर्व एशिया के अनके द्वीपों का प्राचीन भारतीय साहित्य में उल्लेख हुआ है, जिनमें सुवर्ण भूमि व स्वर्णद्वीप जाने वाले साहसी व्यापारियों की कहानियाँ विद्यमान है। इनमें जातक ग्रन्थों, वृहतकथा, मिलिन्दपन्हों, निद्देश, पेरीप्लस तथा टालमी आदि में इनके विवरण प्राप्त होते हैं। महाजनक जातक में मिथिला के एक राजकुमार द्वारा कुछ अन्य व्यापारियों के साथ सुवर्णभूमि की यात्रा का उल्लेख मिलता है।[12] रामायण में यव द्वीप (जावा, सुमात्रा) का उल्लेख मिलता हैं जहां पर सोने की खान थी।[13] इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र, कथासरित्सागर, पुराण आदि ग्रन्थों से भी दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त होती हैं। ह्वेनसांग, इत्सिंग तथा अलबरूनी ने भी सुवर्णद्वीप का उल्लेख किया हैं। इस प्रकार भौगोलिक निकटता तथा दक्षिण–पूर्व एशिया की समृद्ध संसाधनों ने भारतीयों को आकर्षित किया तथा इन क्षेत्रों में उपनिवेश बसाये। बड़ी संख्या में भारतीय लोग व्यापारिक तथा बौद्ध मिशनरी गतिविधियों के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में बस गये। सातवीं शताब्दी के चीनी स्रोत लिआंग–शू के अनुसार पन–पन मलय प्रायद्वीप में स्थित एक छोटा सा राज्य था, जहां पर कई भारतीय सांस्कृतिक प्रवेश आमतौर पर शांतिपूर्ण और गैर–राजनीतिक था। दक्षिण–पूर्व एशियाई लोंगो ने स्वेच्छा से उन भारतीय सांस्कृतिक तत्वों को स्वीकार किया जो उन्हे पसंद थे।[14] प्राचीन भारतीय महाकाव्यों रामायण तथा महाभारत का इन देशों की

सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्पराओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन महाकाव्यों का स्थानीय रूपान्तरण कई एशियाई देशों में सांस्कृतिक विरासत का एक अभिन्न अंग बन गया। रामायण का मलय संस्करण 'हिकायत सेरी राम' है। रामायण का थाई संस्करण 'रामकियेन' है। इसमें हनुमान जी को अधिक महत्व दिया गया है। इसे थाईलैंड का महाकाव्य माना जाता है और थाई साहित्य, संस्कृति और कला पर गहरा प्रभाव है।[15] रामायण के बर्मी संस्करण को 'यम जटडॉ' के नाम से जाना जाता है। यह म्यांमार का अनौपचारिक राष्ट्रीय महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त रामायण, जावा में रामायण का 'कावीन' नाम से जावानी भाषा में रचित है। यह दक्षिण–पूर्व एशिया की सबसे प्राचीन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है। लाओस की संस्कृति पर भारतीयता की गहरी छाप है। यहा रामकथा पर आधारित चार रचनायें उपलब्ध है–फ्रलक–फ्रलाम (राम जातक),ख्वाय थोरफी, ब्रह्मचक्र और लंका नोई। लाओस की अधिकांश कहनियां भारतीय कथा पंचतन्त्र से ली गई है जिनका उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि रामकथा की प्रारम्भिक धारा सर्वप्रथम दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रवाहित हुई।

भारतीय धर्मों के साथ–साथ भारतीय शासन संस्थाओं तथा सामाजिक आचार–विचार का भी इस क्षेत्र के प्रदेशों में प्रवेश हुआ। भारत की ही भांति बालि तथा कम्बुज में चतुवर्ण व्यवस्था थी, जिनमें ब्राह्मण वर्ण का स्थान सर्वोपरि था। कम्बुज की एक प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार कोडिण्य नामक भारतीय ब्राह्मण ने वहां की नागा राजकुमारी संग वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपना राज्य स्थापित किया था।[17] उस समय कम्बुज के मूल निवासी प्रायः असभ्य और जंगली थे, भारतीयों के सम्पर्क में आकर उन्होंने सभ्यता व संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति की तथा भारत के ही धर्म, आचरण व संस्कृति को अपना लिया। इस अनुश्रुति की पुष्टि चीनी साहित्य से भी होता है। इस प्रकार खान–पान, भोजन, विवाह आदि सामाजिक जीवन के समस्त अंगो का जो रूप दक्षिण–पूर्व एशिया के विविध प्रदेशों में था, वह भारत से काफी समानता रखता है।

वर्तमान में थाईलैंड की राजधानी बैंकाक हवाई अडडे के नाम सुवर्ण भूमि रखा गया तथा इस हवाई अडडे पर समुद्र मंथन की अद्भुत दृश्य को अंकित किया गया है। थाईलैंड का राष्ट्रीय प्रतीक गरुण (हिन्दू देव विष्णु का वाहन) है। एक इण्डोनेशिया एयरलाइन्स का नाम भी गरूण है। वहां अभिवादन का व्यवहार भी भारतीयों के समान है। अतः विभिन्न अनुश्रुतियों, पुरातात्त्विक अवशेषों तथा साहित्यिक स्त्रोतों से यह विदित होता है कि भारतीय संस्कृति का दक्षिण–पूर्व एशियाई सभ्यताओं के विकास पर स्थायी प्रभाव पड़ा तथा भारतीय संस्कृति ने धर्म, वास्तुकला और साहित्य के क्षेत्रों में दक्षिण–पूर्व एशिया को प्रभावित किया है जिसे आज भी देखा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

01. विद्यालंकार, सत्यकेतु, दक्षिण–पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति–2015,पृ०–48 ।
02. हाल, केनेथ. आर, ए हिस्ट्री ऑफ अर्ली साउथ ईस्ट एशिया–2011, पृ०–03 ।
03. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पृ०–42।
04. सिंह, रघुनाथ, दक्षिण–पूर्व एशिया–पृ०–211
05. वही, पृ०–124।
06. विद्यालंकार, सत्यकेतु–पृ०–283।
07. हाल, डी.जी.इ., ए हिस्ट्री ऑफ साउथ–ईस्ट एशिया, 1955, पृ०–15।
08. सिंह, रघुनाथ, दक्षिण–पूर्व एशिया, पृ०–23 ।
09. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ०–233 ।
10. हाल, डी.जी.इ., पृ०–44।
11. वही, पृ०–44।
12. महाजनक जातक (कावेल–6,22)।
13. यत्नवंतो यवद्वीपं सप्तराज्योंपशोभितम्।
    सुवर्ण रूप्स्कद्वीपं सवर्णाकारमंडितम।। वाल्मीकि रामायण, कांड–2।
14. मिश्रा, पतित पावन, स्प्रींग–2021, इण्डियाज हिस्टोरिकल इम्पैक्ट आन साउथ–ईस्ट एशिया।
15. जे.इ.टी.आई. आर, जर्नल ऑफ इमरजिंग टेक्निकलोजिस एण्ड इनोवेटिव रिसर्च–वाल्यूम–6।
16. सरकार, एच.बी. एशियन वैरिएशन इन रामायण–पृ0–207।
17. हाल, डी.जी.इ., पृ०–20–21 ।

बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में किसानों की जागरूकता तथा जैविक खेती को अपनाने में बाधाओं का सामाजिक–आर्थिक अध्ययन

डॉ. आभा सिन्हा*

सार–

यह शोध पूर्वी चंपारण जिले में किसानों की जैविक खेती के प्रति जागरूकता और इसे अपनाने में आने वाली सामाजिक–आर्थिक बाधाओं का अध्ययन करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार किसान जैविक खेती को अपनाने के निर्णय में प्रभावित होते हैं और किन कारकों के कारण यह प्रक्रिया कठिनाइयों का सामना करती है। इस अध्ययन में 120 किसानों को लक्षित कर प्राथमिक डेटा संग्रहित किया गया। डेटा संग्रह के लिए संरचित प्रश्नावली और साक्षात्कार विधि का उपयोग किया गया। अध्ययन में सामाजिक और आर्थिक पहलुओं जैसे आय, शिक्षा स्तर, पारंपरिक कृषि अनुभव, प्रशिक्षण, वित्तीय संसाधन, और सरकारी योजनाओं की पहुँच का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से पता चला कि किसानों की जागरूकता का स्तर मध्यम है और आर्थिक संसाधनों की कमी, उच्च लागत, प्रशिक्षण और मार्गदर्शन की कमी, बाजार की अनिश्चितता और पारंपरिक दृष्टिकोण जैविक खेती को अपनाने में प्रमुख बाधाएँ हैं। वहीं, उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त किसान, साथ ही सरकारी योजनाओं और बाजार सुविधा की उपलब्धता, जैविक खेती को अपनाने में अधिक प्रेरित करते हैं। यह शोध न केवल किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और कृषि प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है, बल्कि नीति–निर्माताओं और कृषि विकास संस्थाओं के लिए सुझाव भी प्रस्तुत करता है। अध्ययन के निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि जागरूकता बढ़ाने, प्रशिक्षण देने और बाजार व्यवस्था सुधारने से जैविक खेती को व्यापक स्तर पर अपनाना संभव है।

विशिष्ट शब्द–जैविक खेती, किसानों की जागरूकता, सामाजिक–आर्थिक अध्ययन, उत्पादन लागत, प्रशिक्षण और मार्गदर्शन, एवं कृषि अपनाने की प्रवृत्ति आदि।

भारत एक कृषि प्रधान देश है और उत्तर बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। इस क्षेत्र में पारंपरिक रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जैविक खेती एक टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरी है।

बिहार राज्य, विशेषकर उत्तर बिहार का पूर्वी चंपारण जिला, कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख उदाहरण है। यहाँ की मिट्टी उपजाऊ है और जलवायु वर्षा पर आधारित होने के कारण फसल उत्पादन पर अत्यधिक प्रभाव डालती है। हालांकि, हरित क्रांति के बाद रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग किसानों द्वारा किया गया, जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई, परंतु इससे मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता में कमी, जल स्रोतों का प्रदूषण और पर्यावरणीय असंतुलन जैसे गंभीर नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न हुए।

ऐसे परिदृश्य में जैविक खेती एक टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल विकल्प के रूप में उभरती है। जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का सीमित या नगण्य उपयोग किया जाता है। इसके स्थान पर जैविक खाद, कम्पोस्ट, जैविक कीटनाशक और पारंपरिक कृषि तकनीकों का प्रयोग होता है। जैविक खेती न केवल पर्यावरण को सुरक्षित रखती है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता, जल संरक्षण और लघु किसानों की आर्थिक स्थिरता में भी योगदान करती है।

पूर्वी चंपारण जिले में किसान अक्सर पारंपरिक कृषि पद्धतियों और रासायनिक उत्पादों पर निर्भर हैं। इसके पीछे कई सामाजिक और आर्थिक कारण हैं। सबसे प्रमुख कारण किसानों की जागरूकता का अभाव है। अधिकांश किसानों को जैविक खेती के सिद्धांत, लाभ और प्रक्रिया की पर्याप्त जानकारी नहीं है। इसके अतिरिक्त, आर्थिक जोखिम, उच्च लागत, बाजार में जैविक उत्पादों की अनिश्चित मांग, प्रशिक्षण की कमी और तकनीकी मार्गदर्शन की कमी जैविक खेती अपनाने में बाधा डालते हैं।

* पी–एच0डी0, अर्थशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob. No. 96085 43358, E-mail Id : abhasinha30@gmail.com

सरकारी योजनाओं और एनजीओ प्रयासों के बावजूद, जैविक खेती का प्रसार अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पाया है। इसके लिए आवश्यक है कि किसानों को जागरूक किया जाए, प्रशिक्षण और मार्गदर्शन प्रदान किया जाए, और जैविक उत्पादों के लिए स्थायी बाजार व्यवस्था की जाए। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी किसानों के पारंपरिक दृष्टिकोण को बदलना महत्वपूर्ण है, ताकि जैविक खेती को अपनाना सहज और लाभकारी हो।

जैविक खेती और किसानों की जागरूकता पर किए गए पिछले अध्ययनों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि जैविक खेती अपनाने में सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी बाधाएँ प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

इस शोध का उद्देश्य पूर्वी चंपारण जिले के किसानों में जैविक खेती के प्रति जागरूकता का स्तर मापना, उनके सामाजिक–आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करना और जैविक खेती अपनाने में आने वाली बाधाओं को पहचानना है। 120 कृषकों पर आधारित इस अध्ययन में प्राथमिक डेटा संग्रहण के लिए प्रश्नावली और साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष से स्पष्ट होगा कि जागरूकता बढ़ाने, प्रशिक्षण प्रदान करने और बाजार प्रबंधन सुधारने से जैविक खेती को अपनाने में मदद मिल सकती है।

अतः यह अध्ययन न केवल किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और उनकी कृषि प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है, बल्कि नीति–निर्माताओं और कृषि विकास संस्थाओं के लिए महत्वपूर्ण सुझाव भी प्रस्तुत करता है। इससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि पूर्वी चंपारण में जैविक खेती को सफलतापूर्वक अपनाया जाए और क्षेत्र में सतत कृषि विकास को बढ़ावा मिले।

कुमार, आर. और सिंह, पी. (2021) ने बिहार में जैविक खेती अपनाने की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया। उनके अनुसार, किसानों में जागरूकता की कमी और उच्च लागत मुख्य बाधाएँ हैं।[1]

सिंह, एस. (2020) ने उत्तर भारत में जैविक खेती के सामाजिक–आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण किया। उनके अध्ययन में पाया गया कि छोटे किसानों के लिए जैविक खेती अपनाना आर्थिक रूप से जोखिम भरा हो सकता है।[2]

एफ.ए.ओ. (2022) ने दक्षिण एशिया में जैविक कृषि की स्थिति और संभावनाओं पर रिपोर्ट प्रकाशित की। इसमें बताया गया कि शिक्षा और प्रशिक्षण की कमी जैविक खेती के विस्तार में मुख्य अवरोध है।[3]

भारत सरकार (2023) की रिपोर्ट में राष्ट्रीय स्तर पर जैविक खेती योजनाओं और उनके प्रभाव का मूल्यांकन किया गया। रिपोर्ट में यह उल्लेख है कि किसानों को जागरूक करने के लिए प्रचार और प्रशिक्षण अभियान आवश्यक हैं।[4]

शर्मा, ए. और वर्मा, पी. (2019) ने मध्य प्रदेश के किसानों में जैविक खेती के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन किया। उनके निष्कर्षों में पाया गया कि पारंपरिक खेती की आदत और बाजार की अनिश्चितता जैविक खेती को अपनाने में बाधा हैं।[5]

राय, डी. (2018) ने बिहार के कुछ जिलों में जैविक खाद और कीटनाशक के उपयोग का विश्लेषण किया। अध्ययन में यह दिखाया गया कि जैविक खाद की उच्च लागत और सीमित उपलब्धता किसानों के लिए चुनौती है।[6]

पटेल, के. और कुमार, एम. (2020) ने ग्रामीण किसानों के लिए प्रशिक्षण और कार्यशालाओं के प्रभाव का अध्ययन किया। उनके अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने वाले किसान जैविक खेती को अपनाने के लिए अधिक प्रेरित हैं।[7]

वर्मा, एस. (2017) ने जैविक खेती के सामाजिक और पर्यावरणीय लाभों का मूल्यांकन किया। उनका निष्कर्ष है कि पर्यावरणीय जागरूकता बढ़ाने से किसानों की रुचि में वृद्धि होती है।[8]

चौधरी, आर. और सिंह, एल. (2016) ने उत्तर भारत में जैविक खेती अपनाने वाले किसानों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया। उनके निष्कर्षों में छोटे किसानों के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता पर बल दिया गया।[9]

भट्टाचार्य, एस. (2015) ने जैविक खेती और पारंपरिक खेती के बीच लाभ–हानि का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में स्पष्ट किया गया कि जैविक खेती दीर्घकालिक रूप से मिट्टी की उर्वरता और उत्पादन स्थिरता के लिए लाभकारी है।[10]

साहित्य से स्पष्ट होता है कि जैविक खेती अपनाने में प्रमुख बाधाएँ हैं जैसे आर्थिक जोखिम और लागत, प्रशिक्षण और मार्गदर्शन की कमी, बाजार में अस्थिरता, और सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँय सभी

शोधों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जागरूकता, प्रशिक्षण, सरकारी योजनाओं और बाजार सुविधा बढ़ाकर जैविक खेती को व्यापक स्तर पर अपनाया जा सकता है।

परिकल्पना–

1. किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और जागरूकता जैविक खेती को अपनाने में सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव डालती है।
2. उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त किसान जैविक खेती को अपनाने में अधिक रुचि रखते हैं।
3. सीमित आर्थिक संसाधन और उच्च लागत वाले किसान जैविक खेती को अपनाने में बाधित होते हैं।
4. पारंपरिक कृषि पद्धतियों में लंबे समय से लगे किसान जैविक खेती अपनाने में कम सक्रिय होते हैं।
5. सरकारी योजनाओं और बाजार सुविधा की उपलब्धता किसानों की जैविक खेती अपनाने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. पूर्वी चंपारण के किसानों में जैविक खेती के प्रति जागरूकता का स्तर मापना।
2. जैविक खेती को अपनाने में आने वाली सामाजिक और आर्थिक बाधाओं की पहचान करना।
3. सरकारी योजनाओं और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
4. किसानों की राय और अनुभवों के आधार पर जैविक खेती के लाभ और सीमाओं का विश्लेषण करना।

इस अध्ययन का उद्देश्य 120 कृषकों के माध्यम से यह अध्ययन करना है कि किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और जागरूकता जैविक खेती को अपनाने में किस प्रकार बाधा डालती है। इस अध्ययन में प्राथमिक डेटा के रूप में प्रश्नावली और साक्षात्कार का उपयोग किया गया। परिणाम दर्शाते हैं कि जागरूकता की कमी, आर्थिक जोखिम, प्रशिक्षण की कमी और बाजार अस्थिरता प्रमुख बाधाएँ हैं।

इस अध्ययन में नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं, जो कि पूर्वी चंपारण जिले में कृषि सबसे मुख्य आजीविका का साधन है। हरित क्रांति के बाद उत्पादन में वृद्धि तो हुई, परंतु रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने मिट्टी की गुणवत्ता और पर्यावरण को प्रभावित किया है। जैविक खेती मिट्टी की उर्वरता, जल संरक्षण और मानव स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अधिक टिकाऊ है।

उत्तर बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक खेती की जानकारी सीमित है। सरकारी योजनाओं और एनजीओ के प्रयासों के बावजूद, अधिकांश किसान पारंपरिक खेती पर निर्भर हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किसान अपनी सामाजिक–आर्थिक स्थिति, शिक्षा, आय के स्रोत, और भूमि–आकार के आधार पर जैविक खेती को अपनाने में कैसे प्रभावित होते हैं।

3. अध्ययन क्षेत्र और नमूना

यह अध्ययन पूर्वी चंपारण जिले के आठ गाँवों में किया गया। 120 कृषक यादृच्छिक पद्धति से चुने गए, जिनमें 60.00% छोटे किसान (1 हेक्टेयर से कम भूमि), 30.00% मध्यम और 10.00% बड़े किसान शामिल हैं।

प्रश्नावली तैयार की गई जिसमें शिक्षा–स्तर, आय–स्रोत, भूमि–आकार, खाद और कीटनाशक उपयोग, प्रशिक्षण–भागीदारी और जागरूकता से संबंधित प्रश्न शामिल थे।

4. अनुसंधान पद्धति

डेटा स्रोत– प्राथमिक और द्वितीयक दोनों।

प्राथमिक डेटा– प्रश्नावली और साक्षात्कार।

द्वितीयक डेटा– कृषि विभाग, जिला सांख्यिकी कार्यालय और प्रकाशित शोधपत्र।

विश्लेषण विधियाँ– प्रतिशत विश्लेषण, औसत, मानक विचलन और गुणात्मक विश्लेषण।

5. परिणाम और चर्चा– किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और जागरूकता जैविक खेती को अपनाने में सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव डालती है, पर विश्लेषण करना है, जिसे ग्राफ–1 में निरूपित किया जा रहा है।

ग्राफ–1

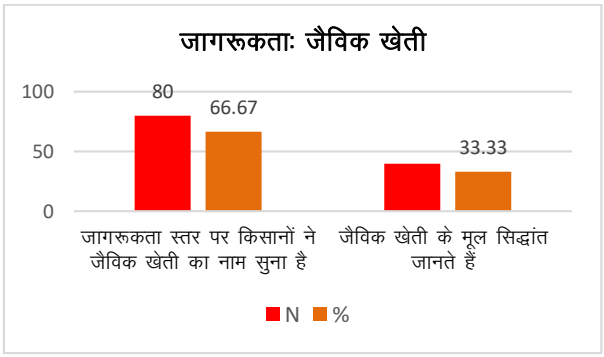

जागरूकता का स्तर पर 66.67% किसानों ने जैविक खेती का नाम सुना है। जब कि केवल 33.33% किसान मूल सिद्धांत जानते हैं। इस लिए जागरूकता मुख्यतः शिक्षित और युवा किसानों में अधिक पाई गई। ज्ञात हो कि पूर्वी चंपारण के किसानों में प्रमुख बाधाएँ–आर्थिक बाधाएँ जैसे जैविक खाद तैयार करने की लागत, उत्पादन लागत और बाजार भाव की अनिश्चितता को देखी जा सकती है। वहीं सामाजिक बाधाओं में पड़ोसी किसानों का सहयोग न मिलना, सामूहिक प्रयासों की कमी। जब कि तकनीकी बाधाओं में प्रशिक्षण और विशेषज्ञ मार्गदर्शन की अनुपलब्धता तथा विपणन संबंधी बाधाएँ जैसे जैविक उत्पाद के लिए अलग बाजार व्यवस्था न होना को माना जा सकता है। अध्ययन से पता चला कि सरकारी योजनाओं की स्थितियों में लगभग 30.00% किसानों ने परंपरागत कृषि विकास योजना के बारे में सुना है। केवल 10.00% किसानों ने जैविक प्रमाणीकरण कराने का प्रयास किया। शेष किसान आज भी परंपरागत कृषि कर रहें है।

इस प्रकार जिन किसानों ने जैविक खेती अपनाई, उन्होंने बेहतर मिट्टी–संरचना, जल–संरक्षण और लागत–नियंत्रण का अनुभव किया। जिस कारण तीन वर्षों के बाद उत्पादन स्तर स्थिर और संतोषजनक पाया गया।

निष्कर्ष– अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि पूर्वी चंपारण के किसानों में जैविक खेती के प्रति रुचि बढ़ रही है, परंतु सीमित जानकारी, आर्थिक जोखिम, प्रशिक्षण की कमी और बाजार अस्थिरता मुख्य बाधाएँ हैं। किसान–शिक्षा, प्रशिक्षण कार्यक्रम और स्थानीय स्तर पर जैविक उत्पाद विपणन केंद्रों की स्थापना से स्थिति में सुधार संभव है।

सुझाव

क). कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा नियमित जैविक खेती प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाएँ।

ख). ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक खाद उत्पादन इकाइयाँ स्थापित की जाएँ।

ग). किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) को जैविक खेती के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

घ). बाजार में अलग "ऑर्गेनिक जोन" की व्यवस्था हो।

ड). स्थानीय विश्वविद्यालयों द्वारा शोध–सहयोग और तकनीकी मार्गदर्शन दिया जाए।

संदर्भ सूची

1. कुमार, आर. और सिंह,पी.(2021), बिहार में जैविक खेती को अपनानारू मुद्दे और संभावनाएँ। भारतीय कृषि अर्थशास्त्र पत्रिका।
2. सिंह, एस. (2020), जैविक खेती में सामाजिक–आर्थिक बाधाएँ। कृषि समीक्षा, 41(2)।
3. एफएओ (2022), दक्षिण एशिया में जैविक कृषि और स्थिरता।
4. भारत सरकार (2023), जैविक खेती योजनाओं पर रिपोर्ट। कृषि मंत्रालय।
5. शर्मा,ए. और वर्मा, पी. (2019), मध्य प्रदेश में जैविक खेती के प्रति किसानों की धारणा। ग्रामीण विकास पत्रिका, 38(1)।
6. राय, डी. (2018), बिहार में जैविक उर्वरकों का उपयोग। कृषि अध्ययन पत्रिका, 10(2)।
7. पटेल, के. और कुमार, एम. (2020), जैविक खेती अपनाने पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रभाव। भारतीय विस्तार शिक्षा पत्रिका, 56(3)।
8. वर्मा, एस. (2017), जैविक खेती के पर्यावरणीय लाभ. पर्यावरण अध्ययन जर्नल, 22(4).
9. चौधरी, आर. और सिंह, एल. (2016),उत्तर भारत में जैविक किसानों की आर्थिक स्थिति. इंडियन इकोनॉमिक जर्नल, 63(1).
10. भट्टाचार्य, एस. (2015), जैविक बनाम पारंपरिक खेती का तुलनात्मक अध्ययन. कृषि विज्ञान समीक्षा, 30(2).

कृषि आधारित उद्योग और ग्रामीण विकास का सूक्ष्म भौगौलिक अध्ययन

विशाल विक्रम सिंह*

कृषि आधारित उद्योग सामान्यतः वे उद्योग होते हैं जिनका कृषि से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध होता है। इसमें कृषि कच्चे माल के साथ–साथ कृषि के आदानों के रूप में जाने वाली गतिविधियों और सेवाओं के आधार पर विभिन्न प्रकार की औद्योगिक, विनिमार्ण और प्रसंकरण गतिविधियों को शामिल किया गया हैं। ग्रामीण परिदृश्य में कृषि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है इसलिए ग्रामीण विकास का आधार हैं कृषि आधारित उद्योग जो इस प्रमुख आर्थिक गतिविधि पर पनपते हैं, ग्रामीण विकास में भी एक महत्वपूर्ण पहलू हैं।

प्रस्तावना

ग्रामीण क्षेत्र को शहरी सुविधाओं के प्रावधान के माध्यम से गांवों का आर्थिक उत्थान एक महत्वपूर्ण विचार बन गया। इसमें कृषि और खाद्य प्रसंस्करण कृषि निर्माण इकाइयों के विकास, कृषि सेवा इकाई द्वारा ग्रामीण देश के सभी हिस्सों के लिए एक विश्वसनीय और गुणवत्तापूर्ण तरीके के बिजली का प्रवाधान ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के सभी विस्तार के लिए शिक्षा और स्वास्थ शामिल है। परमाणु प्रोद्योगिकी, अंतरिक्ष और अवज्ञा प्रौद्योगिकी जैसे रणनीतिक क्षेत्रों का विकास राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास में इसके महत्व को देखते हुए वर्तमान अध्ययन सुक्ष्म स्तर का अध्ययन है। कृषि आधारित उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन में कृषि उत्पाद प्रसंस्करण इकाइयों कृषि–उत्पाद निमार्ण इकाइयों कृषि आदानों, विनिमार्ण इकाइयों और कृषि सेवा केंद्रों पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

ग्रामीण विकास हेतु प्रसंस्करण उद्योग

प्रसंस्करण उद्योग उन गतिविधियों को संदर्भित करता है जो कृषि वस्तुओं को विभिन्न रूपों में परिवर्तित करते हैं जो उत्पाद में मूल्यों जोड़ते हैं। कृषि आधारित उद्योग वे उद्योग हैं जिनका कृषि से प्रत्यक्ष या अप्रयक्ष संबंध है। कृषि प्रसंस्करण उद्योग विशेष रूप से खाद्य निर्माण तंबाकू और कपड़ा प्रसंस्करण वाणिज्यिक औद्योगिक क्षेत्र पर हावी हैं। इस अर्थ में कृषि – प्रसंस्करण को एक समूह के रूप में परिभाषित किया गया है। कृषि उत्पादों के संरक्षण और संचालन के लिए और इसे भोजन ,चारा, फाइबर, ईंधन या औद्योगिक कच्चे माल के रूप में प्रयोग करने योग्य बनाने के लिए निम्नलिखित तकनीकी आर्थिक गतिविधियाँ आदि कृषि–प्रसंस्करण उद्योग गुंजाइश फसल से सभी कार्यों को शामिल करती हैं फसल के अंतिम चरण में सामग्री वांछित रूप मात्रा गुणावता और मूल्य में अंतिम उपयोगकर्ताओं तक पहुंचती हैं। प्राचीन भारतीय शास्त्र भोजन और औषधीय उपयोग के लिए कृषि उपज के संरक्षण का उल्लेख करते हैं और इसका विस्तृत विवरण है प्रसंस्करण के लिए कटाई के बाद और प्रसंस्करण प्रथाओं लेकिन अपर्याप्त ध्यान अतीत में कृषि–प्रसंस्करण क्षेत्र ने उत्पादक और उत्पादन दोनों को नुकसान पहुंचाया वही उपभोक्ता और इसने पर्यावरण को भी नुकासन पहुंचाया।

कृषि आधारित उद्योग परिर्माजन–

कृषि एवं औद्योगिक विकास एक दूसरे के पूरक हैं कृषि के बिना उद्योग धन्धों का विकास नहीं हो सकता हैं और उद्योग धन्धों के बिना कृषि का समुन्नत विकास हो पाना असम्भव हैं। कृषि उद्योग धन्धों के बीच समन्वय होना आवश्यक है अध्ययन क्षेत्र की अर्थव्यवस्था कृषि नियोजन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कार्य किये है। वस्तुतः कृषि नियोजन सम्पूर्ण कृषि समुदाय को उत्पादन की ओर अग्रसर कर आर्थिक वृद्वि के एक उच्च दर को प्राप्त करने का प्रयास होता हैं। कृषि विकास योजना द्वारा भूमि की प्रत्येक इकाई के अनुकूलतम उपयोग को निर्धारित किया जाता है। इस उद्देश्य से नियोजन प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार परिर्माजन एवं संशोधन की सुविधा के साथ ही समयानुसार बदलती परिथितियों के सन्दर्भ में उसमें परिवर्तन की सम्भावना बनी रहती है।

ग्रामीण विकास संकल्पना की वास्तविक रूपरेखा का अभ्युदय कब हुआ, इस संदर्भ में निश्चित एवं प्रामाणित रूप में कुछ कहना, करना कठिन प्रतीत होता है, फिर भी ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्राचीन काल में क्षेत्र के विद्यमान संसाधानों के आर्थिक विकास हेतु प्रादेशिक नियोजन आमतौर पर एक उपागम के

* S/O Bhupal Bahadur Singh, Aaryan Enterprises, S.P.Singh Marg, Civil Lines, Near Jay Mahal Marriage Lawn Gonda 271001
Email Id- vishalsingh16887@gmail.com

रूप में अपनाया जाता था। सामाजिक आर्थिक उन्नयन एवं संरचनात्मक परिवर्तन हेतु पूर्व नियोजन की प्रक्रिया एक अभिनव उपागम है जो मूलतः समाजवादी राष्ट्रों की देन है। भारत में योजनाबद्व ग्रामीण विकास की शुरूआत वर्तमान सदी में ही की गयी। इसका प्रारम्भिक श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को जाता है जिन्होंने 1920 ई में शान्ति निकेतन के पास स्थित कुछ गांवों के विकास हेतु योजना बनाई। महात्मा गांधी ने इसे अधिक यथार्थवाद रूप प्रदान किया, जब उन्होंने ग्रामीणों के आपसी सहयोग और सद्भावना से ग्रामीण क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने का इस प्रयोजना में मेयर महोदय ने ग्रामीण नियोजन के कतिपय आधारभूत मुद्दों, अच्छा आवास विकसित परिवहन एवं संचार तंत्र ग्रामीण उत्पादो की नियमित और शीध्र खपत, जल आपूर्ति एवं सिंचाई व्यवस्था और स्कूल, विकास हेतु कृषि कार्य, संचार शिक्षा स्वास्थ प्रशिक्षण समाज कल्याण एवं गृह सम्बन्धी योजनाओं की समीक्षा प्रस्तुत की इसके बाद लाटन ने 1959 ईं में ग्रामीण क्षेत्रों मे परिवर्तन में विभिन्न भौगोलिक तथ्यों पर तथा नाजियुत्त करीम 1967 ईं समाज में व्याप्त कमियां जो आर्थिक सामाजिक उन्नयन में बाधक के नियन्त्रण पर बल दिया।

1967 ईं में अल इण्डिया रूरल क्रेडिट रिफार्म कमेटी के सुझाव पर कृषिकों के तत्कालिक आवश्यकता एवं विकास के लिए लधु एवं सीमान्त तथा कृषि मजदूर विकास एजेन्सी गठित की गयी। इसके अन्तर्गत बैकों द्वारा भूमि विकास के लिए विभिन्न सुविधायों की गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवसाय के अवसर बढाने हेतु तैयार की गयी नीतियों के अन्तर्गत आर्थिक वृद्वि कृषि का आधुनिकरण एवं ग्रामीण उद्योगों का विकास एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नये अवसर प्रदान करने का लक्ष्य रहा।

ग्रामीण विकास का केन्द्रीय लक्ष्य एक ऐसे विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ करता है जो लोगों के रहन–सहन के स्तर को उँचा उठा सके उनके लिए अधिक समूह और विभिन्नता पूर्ण जीवन की व्यवस्था कर सके। यह नियोजन तार्किक ढंग से भारतीय ग्रामीण विकास की विभिन्न समस्याओं का हल ढूंढता है, ग्रामीण के बीच व्याप्त आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दूर करता है। उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति नियोजन के अभाव में सम्भव नहीं है। विभिन्न क्षेत्रों में विकास सम्बन्धी वरीयताएं रखी गयी है। यह नियोजन प्रजातांत्रिक ढंग से राजकीय निर्देशन में हो रहा हैं ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में निम्न प्रविधियों का प्रयोग हुआ है संगठनात्मक संरचना में परिवर्तन मूल्य नीति के द्वारा साधनों का वितरण पूंजी संग्रह व साख व्यवस्था का विकास वित्तीय नीति का एक यंत्र के रूप में प्रयोग तथा विभिन्न विकास स्तरों पर नियंत्रण अकाल जांच आयोग ने कहा कि कृषि आधारित उद्योग वे है जो न केवल राज्य के औद्योगिकरण में सहायता करते हैं बल्कि खेतों के उत्पादों को संभालने के अलावा कृषि आदानों के साथ खेतों की आपूर्ति में भी शामिल है। नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च 1965 ने कृषि आधारित उद्योग को परिभाषित किया करते हैं। इनमें बीज उर्वरक जरूरतों के लिए कृषि कच्चे माल उपयोग करते हैं इनमें केवल वस्तुएं शामिल हैं, बल्कि कृषि उपकरणों और मशीनरी की मरम्मत और सर्विसिंग भी शामिल है, कृषि आधारित उद्योगों को परिवर्तनकारी प्रक्रियाओं के विभिन्न स्तरों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। सामान्य तौर पर पूंजी निवेश रूपांतरित तकनीकी जटिलता परिवर्तन की डिग्री के अनुपात में बढ़ जाती है। कच्चे माल या भोजन को बदलने का उद्देश्य प्रयोग करे योग्य रूप बनाना, भंडारण क्षमता को बढाना, अधिक आसानी से परिवहन योग्य रूप बनाना, और पौष्टिकता या पोषण गुणवता को बढाना है।

ग्रामीण उद्योग की विशेषताएं–

कृषि आधारित उद्योग अपने कच्चे माल की तीन विशेषताओं के कारण अद्वितीय है– पहला–मौसमी, दूसरा–खराब होने, तीसरा–परिवर्तनशीलता।

लेकिन सभी कृषि आधारित उद्योग इन विशेषताओं को समान रूप से साझा नहीं करते हैं।

कृषि उद्योगों में कच्चे माल की मात्रा और गुणवत्ता में परिवर्तनशीलता होती हैं मौसम में उतार–चढाव मिट्टी की स्थिति आदि के कारण मात्रा अनिशित है। मानवीकरण के कारण गुणवत्ता भिन्न होती हैं, कच्चे माल की मायावी बनी रहती है, भले ही पशु और पौधों के आनुवंशिकी में प्रगति हुई हो। विविधताएं उत्पादन शेडयूलिंग और गुणवत्ता नियंत्रण से संबंधित संचालन के संदर्भ में कृषि–औद्योगिक इकाइयों पर अतिरिक्त दबाव डालती है।

ग्रामीण उद्योग का प्रसंस्करण–

भारत में कृषि – प्रसंस्करण उद्योग आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और स्थानीय जरूरतों और निर्यात आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता रखता हैं। सरकार द्वारा वित्त पोषित ग्रामीण विद्युतिकरण कार्यक्रम और सड़क और दूरसंचार नेटवर्क के माध्यम से बिजली आपूर्ति के मामले में इस उद्योग

के लिए सहायक बुनियादी ढांचा अच्छी तरह से स्थापित है। ग्रामीण कारीगरों और उपयोगकर्ताओं के लिए विनिर्माण में अच्छी तरह से स्थापित कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम भी हैं। हालांकि इस क्षेत्र को वर्तमान में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के खराब प्रदर्शन स्थानिय और विदेशी वित्त दोनों सलाह, सीमित विपणन जानकारी और विश्वसनीय बाजारों की कमी से उत्पन्न कई चुनौतियों का सामान करना पड़ रहा है।

कृषि उद्योग कृषि उत्पादों जैसे कृषि फसलों वृक्ष फसलों, पशुधन और मत्स्य पालन के प्रसंस्करण में मदद करता है और उन्हें भोजन और अन्य उपयोगी रूपों में परिवर्तित करता हें निजी क्षेत्र को अभी तक कृषि उद्योग की पूरी क्षमता का एहसास नहीं हुआ है चीनी कॉफी चाय और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ जैसे सॉस जेली, शहद आदि के लिए वैश्विक बाजार बहुत बड़ा है केवल आधुनिक तकनीक और गहन विपणन के साथ निर्यात बाजार का भी पूरा फायदा उठाया जा सकता है। इसलिए यह जरूरी है कि खाद्य निर्माता बदलती उपभोक्ता प्राथमिकताओं प्रौद्योगिकी आधुनिकरण नवाचार और कृषि – उत्पादन में नवीनतम रूझानों और प्रोद्योगिकी के समावेश को संपूर्ण खाद्य श्रृंखला के साथ समझें भारत और दुनिया में कृषि उत्पादों की कुल उत्पादन क्षमता अगला है। दशक तक दोगुना होने की संभावना है। इसके अलावा फल प्रसंस्करण मंत्रालय ने खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के कार्य योजना की स्थापना की थी। उद्देश्य खराब होने वाले खाद्य पदार्थ के प्रसंस्करण के स्तर को 6 प्रतिशत से बढकर 20 प्रतिशत मूल्यवर्धन को 20 प्रतिशत से 35 प्रतिशत से बढाकर 3 प्रतिशत और वैश्विक खाद्य व्यापार की हिस्सेदारी को 1.6 प्रतिशत से बढाकर 3 प्रतिशत करना है। कृषि में मशीनीकरण अथवा उन्नत आधुनिक क्रियाओं में बदल जायें यह मात्र एक दिन का कार्य नहीं हैं बल्कि दीर्धकालिक प्रक्रिया हैं। कृषि यंत्रीकरण में ट्रैक्टर सबसे महत्वपूर्ण कृषि – उद्योग में मुख्य रूप से मध्यवर्ती या अंतिम उपभोग के लिए कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और संरक्षण की कटाई के बाद की गतिविधियाँ शामिल हैं। यह दुनिया भर में एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त तथ्य है, विशेष रूप से औद्योगिक विकास के संदर्भ में कृषि – उद्योगों का महत्व कृषि के सापेक्ष बढ़ता है क्योंकि अर्थव्यवस्थाएं विकसित होती हैं। इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि भोजन केवल उत्पादन नहीं हैं। भोजन में प्रसंस्कृत उत्पादों की एक विस्तृत विविधता भी शामिल है। इस अर्थ में कृषि उद्योग विकाशील देशों में विनिमार्ण क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण हिस्सा है और औद्योगिक क्षमता निर्माण का साधन हैं।

कृषि आधारित उद्योग की समस्याएं–

हर साल लाखों गरीब परिवार काम की तलाश में पलायन करते हैं। गांवों में आजीविका के धराशायी होने के कारण वे पलायन को मजबूर हैं ये संकटग्रस्त प्रवासी अक्सर अपने धरों को बंद कर लेते हैं, कुछ मामूली सामान ले जाते है और लंबी दूरी तय करते है अपने माता–पिता के साथ जाने वाले बच्चो को स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता हैं। 14 वर्ष से कम आयु के ऐसे बच्चों की संख्या लगभग 9 हर साल लाखों होने का अनुमान है। अपने गाँव से दूर होने के कारण वे उन जगहों से संबंधित नहीं होते हैं जहाँ वे जाते हैं और तेजी से अपने ही गाँवों में स्वीकृति खो देते हैं वे अपने समुदाय, संस्कृति और परंपराओं से अलग हो गए है, त्यौहारों ,मेलों, धार्मिक और सामाजिक कार्यो में भाग लेने में असमर्थ हैं। जो उनके जीवन का एक अभिन्न अंग हैं और इस प्रकार उनकी पहचान की भावना खो देते हें। राज्य की सीमाओं को परा करने वाले लोगों की भेद्यता और भी अधिक है क्योंकि वे खुद को अपने ठेकेदारों की दा पर अधिक से अधिक पाते हैं।

परंपरगत रूप से, किसान प्राकृतिक संसाधानों, श्रम कौशल और ज्ञान के साथ–साथ अपने निवेश का उपयोग करके या तो अपनी बात या वित्तीय ऋण से खाद्य और अन्य कृषि उत्पादों के उत्पादन होते हैं। लेकिन कुछ किसान दूसरों की तुलना में गरीब हैं। आमतौर पर वे भूमिहीन किसान होते हैं जिन्हें दूसरे लोगों की जमीन किराए पर देनी पड़ती है या दिहाड़ी मजदूर बन जाते हैं कृषि उत्पादों को आमतौर पर स्थानीय बिचौलिया या दलालों को निर्देशित किया जाता है, जो कभी–कभी बड़े राष्ट्रीय आपूर्तिकर्ताओं को वितरित करने से पहले किसानों को ऋण और बंधी हुई शर्तों के साथ उत्पादन के कारक प्रदान करते हैं। ये लोग फिर उत्पादों को बाजारों में बेचेगे। इस बाजारोन्मुखी ढांचे के तहत ज्यादतर किसान कीमत लेने वाले होते हैं। दुर्लभ परिस्थितियों को छोड़कर उनकी सौदेबाजी की शक्ति कम होती है जैसे कि बहुत जल्दी या देर से मौसम या उस अवधि के दौरान जहां आपूर्ति की कमी होती हैं। बाजार की मांग का जवाब देने की आवश्यकता है, लेकिन कोई सीधी पहुंच नहीं है, आसानी से खराब होने वाले उत्पादों से निपटना और ऋणी होना इस कम सौदेबाजी की शक्ति में योगदान करने वाले प्रमुख कारक है।

वर्तमान परिपेक्ष में–

वर्तमान में कॉर्पोरेट ने उत्पादन पक्ष को नियंत्रित करने में एक प्रमुख हिस्सा ले लिया है। कॉर्पोरेट द्वारा कृषि आमतौर पर बड़े पैमाने पर और राष्ट्रीय बाजारों या बाहरी बाजारों तक सीधी बाजार पहुंच होती है। कई कॉरपोरेट को स्थानिय बिचौलियों द्वारा कृषि उत्पादों की आपूर्ति की जाती है जबकि अन्य का किसानों के साथ अनुबंध हो सकता है। मालिको और कारपोरेटों में काम करने वाले लोगों के लिए, कृषि सिर्फ एक आर्थिक क्षेत्र है और उनकी मूख्य चिंता उनकी आजीविका का एक अभिन्न अंग होने के बजाय हानि लाभ और वित्तीय लाभ के बारे में है। राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर पर कृषि की स्थिति के बारे में चर्चा करते समय आपूत्रि श्रृंखला में विभिन्न खिलाड़ियों, कॉर्पोरेट, बिचौलियों और छोटे और मध्यम किसानों के बीच अंतर करना चाहिए– ताकि उन पर प्रभाव और किसी विशेष स्थिति के प्रति उनकी प्रतिक्रिया को उनके संदर्भों के तहत स्पष्ट रूप से समझा जा सके। और वर्तमान बाजार संरचनाएं। समायोजन खाद्य आपूर्ति खाद्य मूल्य छोटे पैमाने पर कृषि उत्पादन व्यवसाय, लाभ आदि। संसाधन आधार जैसे। बीज, पानी, भूमि, जंगल, जैव विविधता आदि। कॉर्पोरेट कृषि मूल्य, जीवन का तरीका, संस्कृति संबंध, आय आदि।

निष्कर्ष–

वर्तमान स्वरूप एवं ग्रामीण विकास के दृष्टिगत चयनित किया गया है वस्तुतः विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के कृषि एवं औद्योगिक विकास विचार के विश्लेषण के लिए आन्तरिक एवं वाह्य गुणाकों को सम्मिलित किया जाता है। सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन क्षेत्र के दृष्टिगत जिन विचारों का चयन किया गया हैं उनमें कृषि एवं विकास के विभिन्न पक्षों को समाहित करने का प्रयास किया गया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- रुझान और विकास प्रभाव", अंतर्राष्ट्रीय कृषि–उद्योग फोरम के लिए व्यापक पेपर, नई दिल्ली ,अप्रैल 2008 ।
- खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) , वैश्विक संगठन ,"सामाजिक आर्थिक विकास और आर्थिक, स्थिति में कमी के लिए कृषि–व्यवसाय का महत्व", संपत्ति विकास पर विश्व संगठन आयोग के लिए चर्चा पत्र , सोलहवां सत्र, न्यूयॉर्क, मई, 5 – 16, 2008.
- ए.ओ. कमसंरं " खाद्य निर्माण में सामग्री उत्पादकता", यांक जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल सोशल साइंस, वॉल्यूम। 74, नंबर 1, फरवरी 1992, पीपी. 177–185।
- आर.ई. लोपेज, " कनाडाई खाद्य प्रक्रिया उद्योग के भीतर आपूर्ति प्रतिक्रिया और निवेश", अमेरिकन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल सोशल साइंस, वीओ। 67, नंबर 1, फरवरी , 1985, पीपी. 40–47
- एस.एम. डाइट्ज़ और एस. मती, एसेसमेंट ऑफ़ द स्मॉल स्केल फूड प्रोसेस सब सेक्टर इन तंजानिया और अफ्रीकी राष्ट्र, आईएसबीएन , 2000।
- Journal of the Association of North Indian Geographers Vol. 36, No. 1 June 2006,pp. 136.
- Prakash Rao, V.L.S. (1963) Regional Planning Theoretical Approach, Calcutta, P. 5.
- Kuklunski, A.K. (1978), Some Basic Issues in Regional Planning and National Development in Mishra R.P. et. Al. (eds.) Vikas Publication, New Delhi, pp.5.
- Mayer, A. and Associate (1959) : Pilot Project India the study of Rural Development of Etawah, Uttar Pradesh Univ. of Calfornia Press, Berkeley and Los Angeles, 367.
- Dubey, S.C. (1958) India's Changing Villages, Bombay.
- Lawtan, G.H. (1958-59), India's Changing Villages, Royal Geographical Society of Australia South Austrailian Branch paer (60), P. 17-24.

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में साहित्यिक संघर्ष और संवेदना

डॉ. जगत सिंह कठायत*

भगवान दास मोरवाल का जन्म 23 फरवरी, 1960 नगीना, मेवात (हरियाणा) में हुआ । वे आधुनिक समय के प्रसिद्ध उपन्यास तथा कहानी लेखक है । मोरवाल जी ने राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए.की पदवी प्राप्त की । उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र मे डिप्लोमा भी किया । उन्हें कई सम्मान प्राप्त हो चुके हैं । मोरवाल जी के लेखन क्षेत्र में मेवात प्रदेश की ग्रामीण समस्याएं ,संघर्ष तथा उनकी संवेदनाओं का चित्रण अधिक मात्रा में उपलब्ध होता हैं । उनके कथा - साहित्य के पात्र हिन्दू - मुस्लिम सभ्यता के गंगा जमुनी किरदार होते हैं । कंजरों की जीवन शैली पर आधारित उपन्यास रेत को लेकर अधिक विरोध का सामना भी करना पड़ा ,लेकिन इसके लिए लेखक मोरवाल जी को यू के कथा सम्मान द्वारा सम्मानित भी किया गया है ।

भगवानदास मोरवाल हिंदी साहित्य में समाज के यथार्थ को संघर्ष ,और संवेदना को अभिव्यक्ति देने वाले रचनाकार के रूप में खूब जाने जाते हैं। उपन्यास और कहानी लेखन के माध्यम से समाज के सत्य को उद्घाटित कर कई प्रश्नों को उठाते हैं। इनके उपन्यास है 'काला पहाड (1999), 'बाबल तेरा देश में (2004), रेत' (2008), 'नरक मसीहा (2014), (2015), 'सुर बंजारन (2017), 'वेचना' (2019), 'सकुशिका (2020), 'ना' (2021)। इनके उपन्यासों में समाज के विभिन्न पक्षों तथा ग्रामीण जीवन, राजनैतिक स्थितियों, स्त्री जीवन, जनजातीय जीवन को अभिव्यक्ति मिली है। यह शोध -पत्र उनके उपन्यास इन उपन्यासों पर केन्द्रित है। इन उपन्यासों में लेखक ने पीड़ा, संघर्ष का चित्रण विविद पक्षों को ध्यान में रखकर किया है। दहेज प्रथा, लिंग -भेद इत्यादि के माध्यम से ही जीवन उपेक्षा का शिकार होता है। 'बाबल तेरा देश' उपन्यास मुस्लिम धर्म में स्त्री की स्थिति पर केन्द्रित है। यह उपन्यास समाज की उन परतों को उधेड़ता है जिस कारण स्त्री शोषण का शिकार होती है। सोच को सहन कर वह जीवन भर उठा-पटक में जीवन जीती है। विवेच्य उपन्यास में स्त्री शोषण के साथ-साथ नारी -चेतना को भी बुलन्द आवाज मिली है।

'दण्ड प्रहार' उपन्यास में हिंदू लोगों का मुस्लिम, ईसाई, कम्युनिस्टों और नेहरू - कांग्रेस के प्रति होनेवाली घृणा तथा विरोध कब दलितों - शूद्रों - पिछड़ों पर आकर टिक जाता, किसी को इसकी जानकारी ही नहीं होती । इस उपन्यास में दलितों के प्रति संवेदना को व्यक्त किया गया है ।

भगवानदास मोरवाल के 'काला पहाड़' उपन्यास की कथा हरियाणा राज्य के मेवात क्षेत्र के एक गाँव 'नगीना' को केन्द्र में रखकर लिखी गई है । ' नगीना ' एक गाँव नहीं ,पूरी मेवाती संस्कृति का प्रतीक है । पर्व ,त्यौहार , जीवन - मरण ,शादी - ब्याह यह सब कुछ सब लोगों का है । इस उपन्यास के केन्द्र में है माना गुरु और मां नलिन्या की कंजर और उसका जीवन । कंजर याने कानन चर अर्थात जंगल में घूमनेवाला । अपने लोक - विश्वासों तथा लोकाचारों की धुरी पर अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करती एक विमुक्त जन जाति । इस उपन्यास में जनजाति समाज का संघर्ष तथा संवेदना को व्यक्त किया गया है । 'रेत' उपन्यास भारतीय समाज के उन अनकहे ,अनसुलझे , अंतर्संघर्षों की कथा है ,जो घनश्याम कृष्ण की ' कुत्तों फेना ' साइकिल के करियर पर बैठ गाजुकी नदी के बीहड़ों से होती हुई आगे बढ़ती है । यह सफलताओं के शिखर पर विराजती रुक्मिणी कंजर का ऐसा लोमहर्षक आख्यान है जो अभी तक इतिहास के चौखटों तथा हदों को तोड़ता हुआ ,संघर्ष करता हुआ एक नये अध्याय की शुरुआत करता है । इस उपन्यास में लेखक ने राजस्थान और हरियाणा के सीमावर्ती क्षेत्रों में बसनेवाली कंजर जनजाति के जीवन - संघर्ष और द्वंद्व को उजागर करने का प्रयास किया है । कंजर जनजाति के इतिहास ,रीति - रिवाजों और उनके सामाजिक जीवन का प्रामाणिक वर्णन करने के लिए लेखक को बहुत मेहनत करनी पड़ी । स्वतंत्रता के बाद भी तथा कथित सभ्य - समाज के धनवान और शक्तिशाली लोगों द्वारा ,सर्वोपरि पुलिस द्वारा इन जनजातियों पर नृशंस दमन होते रहा । उनके चरित्र पर लगा धब्बा अभी भी नहीं समाप्त हुआ और न ही उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ ।

* विभागाध्यक्ष हिन्दी, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, एल.एस.एम. परिसर, पिथौरागढ़

लेखक ने इस उपन्यास में यह चित्रित किया है कि कंजर जाती का मुख्य व्यवसाय शराब बनाना और अपने समाज की कुंवारी लड़कियों द्वारा वेश्यावृत्ति कराना ही रहा है । कभी - कभी चोरी भी करते हैं उसको भी उजागर किया है । ग्रामीण जीवन का कोई भी रंग चाहे वह धर्म , समाज, जाति,तीज त्यौहार,लोक परंपरा,लोक गीत ,संस्कृति उनकी नज़र से अदृश्य नहीं हुई हैं । यही वजह से उनके उपन्यासों की विवेचना करते समय मेवात प्रदेश मूर्त हो उठता है । इस जगह की संस्कृति तथा समाज को गहराई से जानने के लिए मोरवाल जी के उपन्यास सबसे अधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज का काम करते हैं ।

समाज में स्त्री शोषण को लेकर संघर्ष होता रहता है । साहित्यकार भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'बाबल तेरा देश में में मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति, संघर्ष और पीड़ा का चित्रण किया है। लेखक ने स्त्री पड़ा और शोषण का चित्रण किया है ।

'बाबल तेरा देश में' उपन्यास में लेखक ने दहेज प्रथा की प्रताड़ना झेलती स्त्री के संघर्ष का चित्रण किया है। दहेज प्रथा हमारे समाज में सदियों से स्त्री जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है। इस कुप्रथा के दुष्प्रभाव और इससे स्त्री के जीवन में उपजे दर्द का चित्रण विवेच्य उपन्यास में हुआ है। स्त्री के साथ-साथ उसका परिवार भी इस पीड़ा को झेलकर भी विवशता वश दहेज देकर बेटी के वैवाहिक जीवन को बचाए रखना चाहता है। जैनब इस उपन्यास में दहेज के चलते प्रताडित होती है और उसे मायके भेज दिया जाता है तब वह खुलासा करती है कि उसकी ननद और सास शादी में मोटर साइकिल लेना चाहती थीं - "हाँ, एक दिन मेरी सार सास और नणद में कुछ ऐसी बात हो रही है कि विवाह में मोटर साइकिल और मिल जाती तो...।"[1] विवेच्य उपन्यास में स्त्री मानसिकता पर प्रहार है जो स्त्री का ही शोषण करने से नहीं चूकती। जैनब के घर को बसाए रखने के लिए परिवार झुकने के लिए तैयार हो जाता है। जैनब की माँ जमीला अपने जेवर बेचने को तैयार हो जाती है। और खेत गिरवी रखने की बात करती है - "बूढ़ी माई, मैं अपणा सारा जेवर बेच दूंगी, एकाध हेत ए गिरवी रखबा दूँगी पर अपणा या जिगर का टुकड़े की जिन्दगी सगुफ्ता ताई सवार न होण दूंगी।"[2] इस कुप्रथा के विरुद्ध यूनुस और जैनब के दादा वली मोहम्मद आवाज़ उठाना चाहते हैं कि यह मांग पूरी न की जाए परन्तु स्थिति यह कि जैनव को पूरा जीवन झेलना न पड़े इसके चलते सब चुप्पी साध लेते हैं -"कानून तो दहेज को लेकर भी बहुत सख्त बने हुए हैं और वह चाहे तो दहेज-निरोधक के तहत मौलवी अस्तर अली सहित, उसके पूरे परिवार को जेल की सलाखों के पीछे भी करवा सकता है लेकिन अन्ततः इसका परिणाम बेकसूर जैनब को ही भुगतना पड़ेगा।"[3] यह विडम्बना है हमारे समाज की कि कुप्रथा के लिए बने बड़े-से-बड़े कानून के बावजूद समाज आवाज उठाने से डरता है क्योंकि समाज नहीं चाहता कि स्त्री को जीवन भर तानों का सामना करना पड़े।

स्त्री उत्पीड़न चर की चारदीवारी के भीतर ही शुरू हो जाता है। शोषण करने वाले भी इस चारदीवारी के भीतर अपने ही होते हैं जिन पर वह आँख मूंद भरोसा करती है। इस पर भी इस पीड़ा को वह किसी से कहें उसे मुंह बंद रखने को कहा जाता है। विवेच्य उपन्यास में इस संवेदना यथार्थ चित्रण हुआ है। उपन्यास की पात्र जुम्मी अपने ससुर के शारीरिक शोषण की शिकार है। मुँह बंद रख ये सब सहन कर वह जीवन भर प्रताड़ित होती है -"में चाला सू पीछे आई ही तो एक दिन वली मोहम्मद खेत में सू या हाजी ने घर भेज दियो और इकली पाके में धर दबोची। मैंने छूटना की खूब कोशिश करी, लाख दुहाई दी, खूब हाथ-पाँव मारा पर सब बेंकार।"[4] अपनों से ही अपनी रक्षा करना कितना मुश्किल हो जाता है स्त्री के लिए कि वह चाहकर भी अपने साथ हुए शोषण को कह नहीं पाती। शोषण सहन करके भी न कहने में भी उसकी विवशता है क्योंकि समाज स्त्री को दोषी ठहराता है। जुम्मी इसी विवशता में बोलने से रह जाती है -"एक बार सोची भी के रौल मचा दूँ पर फिर ई सोच के ग्रुप लगागों के या मरद को तो कुछ न बिगड़ेगी, उल्टी दुनिया मेरो हो में काला करेगी के जब खसम से पेट न भरो तो सुसरा जा पकड़ी। बस पाही बदनामी का डर से खून को घूंट पीके रहगी...।"[5] हसीना उपन्यास की एक अन्य स्त्री पात्र है जिसकी इज्जत पर हाथ उसका ससुर ही डालता है परन्तु घर की औरतें ही परिवार की इज्जत का हवाला देकर चुप रहने को कहती हैं। दादी जैतूनी हसीना को समझाते हुए कहती है- "हसीना, बेटी अगर तू चाहते है के या हवेली का पाड़-तिवाड़ (बँटवारा) न होएँ और हम बड़ा बूढ़ान की पाग न उछले, वो मेरी हाथ जोड़ा सू गुजारस है के अपणी छाती पे घूँसो मार ते। तू यही सोच के सबर कर

ले के तेरे साथ कुछ हुओई ना।"[6] हमारे समाज की मानसिकता का खुलासा यहाँ लेखक कर रहे हैं कि स्त्री का शोषण पुरुष करे तब भी बदनामी और लांछनों का डर स्त्री को ही है क्योंकि स्त्री ही दोषी कही जाती है। परिवार की इज्जत का हवाला देकर स्त्री को ही चुप रहने के लिए भावनात्मक स्तर पर विवश किया जाता है। इस विडंबना का चित्रण उपन्यासकार ने किया है।

समाज के यथार्थ को लेखक ने बेबाकी से चित्रित किया है। इस उपन्यास की एक अन्य पात्र चन्द्रकला भी इस पीडा और शोषण को घर में ही होते देखती है और घर जहाँ स्त्री अपने को सुरक्षित समझती है वहीं पर उसके शौषण वो अभेदा किले में तबदील हो जाता है। चन्द्रकला की पीडा उसके शब्दों में अभिव्यक्त होती है -"कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि अपना ही घर अवैध सम्बन्धों का एक अभेद्य किला बन जाएगा। घर की दीवारे आदमखोर और हिंस भेड़ियों की शरणस्थली बन जाएँगी।"[7]

परिवारजनों के इस शोषण को स्त्री बोलेगी भी तो कैसे इसका चित्रण चन्द्रकला की भाभियों के हो रहे शोषण के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है। चन्द्रकला अपनी भाभियों के कहने पर अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु घर से भाग जाती है।

दूसरी तरफ उपन्यास में लिंग भेद की समस्या पर भी उपन्यासकार ने अपनी लेखनी से यथार्थ स्थिति को चित्रित किया है। बेटे की चाह ही प्रत्येक स्त्री के जीवन को कष्ट में डालती है। बेटा ही चाहिए की भावना इस तरह समाज की मानसिकता में घर कर गई है कि स्त्री स्वयं भी इससे अछूती नहीं रहीं। बत्तों के तीन बेटियां हैं परन्तु बेटा न होने से वह अपने आप को समाज की बनी बनाई परिपाटी के अनुसार ही देखती है और दादी जैतूनी से कहती है- "नां कार्यर, या बीरबानी की जात की बिना सपूत जने कोई कदर ही ना है।"[8] सामाजिक ढाँचा ही ऐसे पक्के गढ़ की तरह मजबूत है कि जहाँ पुत्र को जन्म दिए बिना स्त्री का महत्व नहीं।

स्त्री चेतना का संघर्ष भी इस उपन्यास में चित्रित हुआ हैं। स्त्री जहाँ रूढ़ मानसिकता के कारण शोषण की शिकार है वहीं उसकी चेतना उसे इन विपरीत स्थितियों में भी बल देती है। यदि स्त्री चेतन हो तो वह इन परिस्थितियों से ऊपर उठकर अपने जीवन को महत्व दे सकती है। शिक्षा प्राप्त कर वह जीवन को नए आयाम दे सकती है। इसलिए आवश्यक है कि स्त्री शिक्षा के महत्व को समझा जाए। आलोच्य उपन्यास में लेखक ने शकीला के माध्यम से स्त्री शिक्षा को महत्व देने का प्रयास किया है। वह अपने मोहल्ले में लड़कियों को इकट्ठा कर पढ़ाती है ताकि वे अपने पैरों पर खड़ी हो जिम्मेदार और चेतन बनें परन्तु इस कार्य में बाधा भी है क्योंकि समाज स्त्री शिक्षा को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करता है। उपन्यास कथा में बत्तों की बेटी मैना की पढ़ाई को रोककर उसके गौने की बात की जाती है परन्तु आडे आती है वही दकियानूसी सोच। मैना के ससुर को समझाने पर जी उत्तर मिलता है वह हतप्रभ कर देने वाला है - "आखिर हमारी भी कोई इज्जत आवरू है। एक तो जुआन छोरी ऊपर सु पढ़ी-लिखी। कल के कोई ऐसी-वैसी बात होगी तो हम कहीं में दिखाण लायक भी न रहेगा।"[9]

धर्म को आधार बनाकर स्त्री जीवन को सदैव पीड़ा देने का सुरक्षित रास्ता निकाल लिया जाता है। विवेच्य उपन्यास में मुस्लिम धर्म के द्वारा बनाई गई नियम-व्यवस्था उनके जीवन में महत्वपूर्ण है जिसका विरोध और धर्म को आधार बनाकर स्त्री जीवन को सदैव पीड़ा देने का सुरक्षित रास्ता निकाल लिया जाता है। विवेच्य उपन्यास में मुस्लिम धर्म के द्वारा बनाई गई नियम व्यवस्था उनके जीवन में महत्वपूर्ण है जिसका विरोध और समाप्ति संभव नहीं। इस उपन्यास में विभिन्न मुस्लिम नियमों का चित्रण हुआ है जहाँ स्त्री को मुस्लिम कानून बताकर उसे अलग करवा दिया जाता है। शकीला जब संपत्ति पर अपना अधिकार जताना चाहती है तो युनुस उसे मुस्लिम कानून का हवाला देता हुआ कहता है -"मुस्लिम कानून के मुताबिक बेसक एक बेवा को अपना मरहूम शौहर की जादाद में हक हासिल है, पर याहे ई भी बता देओ के हमारा या मेवात में मेवन के रिवाजे आम के मुताबिक बेटी ए अपना बाप की जादाद में कोई हक हासिल न है।"[10]

शरीअत के कायदों की बात भी आलोच्य उपन्यास में की गई है। मुमताज का वैवाहिक जीवन शरीअत की इन ताकीदों के औरत के हक में होते हुए भी आज पुरुषों को इसको हासिल करने का हक है। मुमताज का शौहर अखलाक नामर्द है। शकीला दादी जैतूनी को बताती है - "आपा, कुछ हालात में जिस तरह मर्द की बीवी से तलाक का

हक दिया गया है, उसी तरह कुछ हालात में औरत को भी मर्द से खुलअ का हक दिया गया है।"..... क्योंकि शरिजत के कायदों के खिलाफ इसको हासिल करना आज मर्दों की मरज़ी पर छोड़ दिया गया ।"[11]

पुरुष मानसिकता का चित्रण भी विवेच्य उपन्यास में हुआ है। स्त्री जहाँ सफलता प्राप्त करती है वहीं पुरुष उस पर अपनी नकेल कसे रखना चाहता है ताकि वह उसके हाथ की कठपुतली बनी रहे। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को आरक्षित रखा जाता है परन्तु पुरुष मानसिकता स्त्री को कभी इन कार्यों के लिए स्वीकार नहीं करती। उपन्यास में चांदमल की जब पता चलता है कि चुनावों में उनके इलाके की सीट महिला के लिए आरक्षित की गई है ती बह छटपटा उठता है। उसका कथन पुरुष मानसिकता को स्पष्ट करता है -"तो याक्को मतलब ई हुओ रामचन्दर के ई मुलक में तो अब इन गाँवन में भी ये बीरबाणी करंगी हमारे ऊपर राज। अब ये देंगी हमले हुकम के हमने कड़ा करनी है।"[12] इस आरक्षण के हो जाने पर जब शकीला को सरपंच चुनाव के लिए खर्ड करने की बात चलती है तो शकीला का पति दीन मोहम्मद पूर्ण विश्वास के साथ उसे अपने हाथ में रखने की बात करता है "बाप, बेसक पढ़ी-लिखी है पर है तो बौरवाणी। तम बाकी फिकर मत करो। आखिर धाकी नकेल रहेगी तो मेरा हाथन में।"[13]

जहाँ उपन्यास में शोषण की शिकार स्त्री का चित्रण है वहीं शोषण के विरुद्ध संघर्ष कर स्त्री अपनी अस्मिता बचाने का प्रयास करती है उसका चित्रण भी दर्ज है जो इस उपन्यास की सफलता है। फत्तु की पत्नी पारों को घर में अकेला पाकर चंडिमल जब उसकी इज्जत के साथ खिलवाड़ करना चाहता है तो पारी उस पर टूट पड़ती है -"फिर क्या था। पारों, पारो नहीं रही। शेरनी की तरह वह चांदमल पर इनती तेज़ी से झपटी कि जब तक वह कुछ समझ पाता, सिर पर बंधे फेंटे का एक सिरा पारों के हाथ में था और बाकी जमीन पर गिरकर दूर तक खुलता चला गया।"[14]

शकीला के सरपंच बनने के बाद जब उसका पति दीन मोहम्मद अपने हाथ में ही सब कुछ रखना चाहता है तो वह जागृत होती है अपने इस्तीफा देने के निर्णय को बदल कर बी. डी.ओ ऑफिस जाती है और सभी महिला पंचों को जागृत करती है।

स्त्री यदि आगे बढ़कर कार्य करती भी है तो पुरुष उस पर लगाम रखना चाहता है। शकीला सरपंच बनती है किंतु उसका पति दीन मोहम्मद उसे अपने अनुसार चलाना चाहता है। उपन्यासकार इस पर प्रकाश डालते हैं-"पंचायत की जो भी कारवाई होती सरपंच के रूप में दीन मोहम्मद ही उसका प्रतिनिधित्व करता।... रात्रीला तथा अन्य महिला पंचों की भूमिका केवल उनके अंगूठे दस्तखत तक सिमटकर रह गई।"[15]

विवेच्य उपन्यास में भगवानदास मोरवाल में मुस्लिम धर्म के भीतर हो रही धोषणा स्त्री की साजिक स्थिति स्त्री की पीडा और संवेदना, दर्द को तो उकेरा ही है साथ ही स्त्री चेहना को कवर दिया है ताकि समाज में उसकी स्थिति को सुधारा जा सके। यह तो सत्य है कि पहले स्त्री को जागरुक होना होगा लेकिन समाज में भी जागृति आवश्यक है। समाज को उसके शोषण पर पुष्प साथ कर प्रतिकार करना होगा जिसके और अमिता की रक्षा हो सके और उसे पीड़ा से मुक्त किया जा सके। विवेच्य उपन्यास स्त्रियों के इर्द-गिर्द घूमती स्थितियों को स्पष्ट करता है।

'नरक मसीहा' उपन्यास 2014 में लिखा गया है । प्रस्तुत उपन्यास में मार्क्सवादी ,गांधीवादी और अंबेडकरवादी झूठे तथा मक्कार वारिसों की कहानी है, जो सिर्फ अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए गरीबों की मानसिकता के साथ खेलते हैं । यह उपन्यास समाज में हो रहे उन मुद्दों को दिखाते हैं जो अन्दर ही अन्दर समाज को खोखला करते जा रहे हैं । यहाँ पर उन्हानें अनछुए समाज का चित्रण किया है । उपन्यास की शुरूआत ही ग्लोबलाइजेशन युग के हथियारों से होती है । ' राष्ट्रीय बाल एवं महिला परिषद ' के पचास वर्ष पूर्ण हो जाने के संदर्भ में स्वर्ण जयंती समारोह को अदभुत बनाने के लिए बनाई गई समिति के सदस्यों द्वारा किए जानेवाले कार्यक्रमों से शुरू होती है ।

कभी मिर्ची झोक आंदोलन गरीब - मजदूर स्त्रियों को सारे दिन अपने - अपने एनजीओज़ के बैनर तले नारे लगाने के लिए मजबूर कर देते हैं और अंत में उन्हें प्राप्त होता है मिर्ची पाउडर के आधा किलो का थैला । इस पर जब एक चैनल रिपोर्टर ने मिर्ची झोक समारोह के बारे में उनके विचार पूछे तो एक महिला के उत्तर ने समारोह की सार्थकता सिद्ध कर दी - " अगर दो घंटे के सौ रुपए ,आधा सेर पिसी मिर्च और बाल - बच्चेन कू कछु खाबे पीबे कू मिल रो है ,तो जामे का टोटो है । कम से कम दो महीनाते जादा को तो काम चलेगा । रही बात या इज्जत - आबर बचाए की ,तो बहना जो हमारी आबरू ए बचाने के हुनर बता री हैं न पहले बे अपनी बचा लेएं ।"[16]

इन सभी वारिसों के बीच एक व्यक्ति है गंगाधर आचार्य, जिसका परिचय केवल उस बच्चे के रूप में है जो बापू की एक तस्वीर में जूहू बीच पर बापू की लाठी पकड़े उनके आगे-आगे चल रहा है । जो इस उपन्यास में कभी-कभी आजादी के बाद समाज में चल रहे वैचारिक-सामाजिक प्रतिबद्धताओं को सहेजने के प्रयास में केवल हलाल होने वाले बकरे के समान है। जिसका अनुमान स्वर्ण जयंती के अवसर पर राजघाट पर अनशन-उपवास वाली बात से लगाया जा सकता है। हमारे वारिसों ने आचार्य जी को गांधी जी के नाम पर अनशन पर बैठने को कहा। तब आचार्य जी उन्हें मुंह तोड़ जवाब देते हुए कहते है कि "गांधीवादी होने का यह अर्थ नहीं है कि उसका जब चाहो, जहाँ चाहो छौंक लगा दो। जहाँ चाहो, जब चाहो पोस्टर की तरह चिपका दो और जब जी चाहे फाड़कर कूड़ेदान में डाल दो। ये वारिस केवल गरीब जनता तक ही सीमित नहीं है बल्कि मौका मिलने पर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए एक-दूसरे की भी टाँग खीचते नहीं झिझकते ।

'हलाला' भगवानदास मोरवालदास का पाँचवा उपन्यास है जो सन् 2016 में लिखा गया है। इस उपन्यास में स्त्री समाज के एक वर्ग पर धर्म की आड़ में हो रहे शोषण की व्याख्या है। मोरवाल जी के उपन्यासों में स्त्री चाहे किसी भी जाति वर्ग की हो उसकी व्यथा की बारीकी से व्याख्या की गई है। इस उपन्यास के अध्याय पाँचों नमाजों के नाम से रखे गए हैं। हलाला, आजादी के बाद भी इतने वर्षों तक मुस्लिम समाज में इस कुप्रथा का होना नारी जाति को तार-तार कर देता है। इस उपन में ऐसे ही धर्म मसीहाओं के बारे में चर्चा की गई है। उपन्यास अनेक किस्सागोईयों से भरा है। जा आज भी गाँव देहातों में सुने व सुनाए जाते हैं। यह उपन्यास दो परिवारों की कहानी है, जो मुस्लिम समाज से हैं। मुख्य पात्र डमरू जो अपने तीनों भाईयों में सबसे छोटा है। बड़ी भाभी (नसीबन) द्वारा उसकी परवरिश अपने बच्चे की तरह की जाती है। किंतु, सबसे छोटी भाभी (आमना) द्वारा उसे केवल ताने ही मिलते। उपन्यास की शुरूवात ही आमना द्वारा अपने देवर को बदसूरत होने के तानों से होती है। साथ ही, वह उसे कलसंडा कहकर उलाहना देती है। अपने भाभी के व्यंग प्रहार उसे बछीं से चुभते हैं। पारिवारिक कलह ना हो जाए, इस वजह से उमरू भाभी की बातों को देवर-भाभी की नोक-झोक सोच कर टाल जाता है।

गाँव के मुख्य नारदों (चाचा लपरलेंडी व चकलेंडी उर्फ फकीरा) के उकसाने पर उमरू घर पर बगावत करने लगता है, जो हज जाने के एवज में फूटती है। हज के खर्चे से भिज्ञ बड़े भाई उसे हज से पहले जमात में जाने का सुझाव देते हैं। बेटे समान देवर के इस फैसले पर नसीबन का मन विचलित हो जाता है, वह भाईयों से उसकी शादी की बात करते हुए कहती है कि - " जब उमर ही जभी याका खुटाँ सू काई ए लाके बाँध देता, तो आज ई नौबत ना आती। तमने तो ईसोच राखी है के मुफत को बधिया बैल है, जोत लेओ जितनो जोतो जार... भाई तो तमने ई कदी मानो ही ना।"[17] पर दोनो छोटी भाभियाँ उमरू की शादी के पक्ष में नहीं थी। जिसका कारण जमीन-जयदाद में होने वाले बंटवारे की अधिकता थी। डमरू के जमात में जाने के निर्णय के बाद से ही छोटी भाभी का व्यवहार भी सकारात्मक हो गया। बीच-बीच में गाँव के नारदों के प्रसंग पाठकों के लिए बड़े ही रुचिकर हैं। डमरू के जाते ही भाभी आमना के काम में आई बढ़ोतरी ने उसे दिन में ही तारे गिनवा दिए। वह डमरू के आने का बेशबरी से इंतजार करने लगी। जिस दिन डमरू वापस घर आया छोटी भाभी आमना की जान में जान आ गई।

'सुर बंजारन' स्पंदन कृति' सम्मान से सम्मानित उपन्यास 'सुर बंजारन हाथरस शैली में सन् 2017 लिखी नौटंकी की अप्रतिम कृति है। यह उपन्यास कलाकार कृष्णा कुमारी माधुर' के जीवन से जुड़े होने के साथ-साथ नौटंकी के आरंभ, मध्य और उसके अंतिम पड़ाव की यात्रा का आख्यान है। यह उपन्यास उन कलाकारों और सुरों को जीवंत बना रहा है जो अब विलुप्त हो चले हैं। उपन्यास का आरंभ बारह-तेरह साल की सांवली लड़की के पारिवारिक माहौल से शुरू होता है। जिसे सरस्वती का अप्रतिम उपहार मिला था। गायकी और अभिनय कला में वह जन्म से ही दक्ष थी । इसके इस कला की परख सर्वप्रथम हिंदुस्तान थिएटर के डायरेक्टर सूरज प्रसाद शर्मा ने की। अपनी अदाकारी और सुंदर आवाज के जरिए रागिनी ने अपनी अलग पहचान बना ली। हिंदुस्तान थिएटर के साथ अनेक शो करने के बाद धीरे-धीरे उसके भविष्य की उड़ान को हवा मिलने लगी। पन्नालाल थिएटर, ब्रजलोक मंच एवं भारत थिएटर आदि ने उसकी प्रगति को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। रागिनी के पति डॉ. वीरेंद्र स्वरूप सक्सेना का उसकी प्रगति में बहुत बड़ा हाथ रहा है। बच्चा होने के बाद भी डॉ. सक्सेना ने उसे अपनी अदाकारी के साथ जुड़े रहने के लिए प्रेरित

किया। नौटंकी, संगीत और स्वाँग के प्रति धीरे-धीरे लोगों की रुचि कम होने से इनके शो भी कम होते जा रहे थे। इन सबके चलते रागिनी ने अपना कला केंद्र खोल लिया। सन् 1971 में 'रागिनी कला केंद्र' खुलकर तैयार हो गया। अपने नए-पुराने कलाकारों को तलाश कर रागिनी ने अपना कला केंद्र पूर्ण किया।

निष्कर्ष रूप में देखें तो भगवानदास मोरवाल विघटित होते मानवीय मूल्यों का सही ढंग से अंकन करने में सफल हुए हैं। उनकी चिंता इस बात को लेकर दिखाई देती है कि गाँवों से लेकर शहरों तक लोगों में स्वार्थी विचारधारा अपने पैर फैलाती जा रही है। अतः जो अमीर है वह अमीर होता जा रहा है और जो गरीब है वह और गरीब। भगवानदास मोरवाल ने गाँव व शहर के जीवन को काफी करीब से देखा है। उन्होंने गरीबी के उस दौर को भी महसूस किया है जब मनुष्य जीवन तक से निराश हो जाता है। इसीलिए उनके कथा-साहित्य में जनसामान्य की पीढ़ा को देखा जा सकता है । कमोवेश आज भी गाँवों व शहरों की स्थितियाँ वैसी ही है। अतः प्रत्येक पाठक को इनके कथा-साहित्य में उदधृत उपन्यासों में अपनी ही कहानी जान पड़ती हैं। इस तरह से भगवान दास मोरवाल ने अपने उपन्यासों में संघर्ष और संवेदना को व्यक्त किया है ।

सन्दर्भ - सूची :-

1. बावल तेरा देस में. भगवान दास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.378. 2004
2. वहीं
3. वहीं. पृ. 378
4. वहीं. पृ. 131
5. वहीं पृ.131 .
6. वही पृ. 102.
7. वहीं. पृ . 137
8. वहीं. पृ.217.
9. वहीं. पृ .294
10. वहीं. पृ . 450
11. वही .पृ . 456
12. वहीं .पृ . 310
13. वही . पृ. 310
14. वहीं .पृ.39
15. वही .पृ. 318
16. नरक मसीहा .भगवानदास मोरवाल .पृ.81
17. हलाला. भगवानदास मोरवाल .पृ.18

राजनीति के केंद्र में डॉ. भीम रॉव अम्बेडकर : एक विश्लेषण

डॉ. राकेश कुमार*

सारांश

भारतीय राजनीति को नई रौशनी प्रदान करने वाले डॉ. भीमराव अंबेडकर अपनी प्रतिभा से विश्व को प्रभावित किया है। उन्हें भारतीय राजनीति और समाज सुधार के महानायक माना जाता है जिनकी दृष्टि केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रही बल्कि वैश्विक राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों तक विस्तारित हुई। उन्होंने सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों को राजनीति का मुल आधार माना। अंबेडकर का मानना था कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति उसकी जनता की समान भागीदारी और आर्थिक स्वतंत्रता में निहित होती है। वे समाज से वर्ग भेद और आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए व्यापक सुधार के सन्दर्भ में अपनी सुझाव दिए हैं उनके पढ़ाई करते समय होने वाले भेद भाव के कारण ही वो सभी को शिक्षा के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता पर बल देते है। सम्पूर्ण समाज का विकास भी तभी होगा जय समाज में सभी को बरावर महत्व दिया जाय।

विशिष्ट शब्द – राजनीति, सामाजिक न्याय, भेद भाव, भारतीय संविधान, समानता इत्यादि।

संवैधानिक लोकतंत्र का मॉडल : संविधान के प्रस्तावना में स्वतंत्रता शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका आशय मानव के सर्वांगीण विकास के लिए स्वतंत्रता का अधिकार अनिवार्य है। भारतीय संविधान में उन्होंने जो अधिकार और स्वतंत्रता सुनिश्चित की, वह विश्व के अन्य लोकतांत्रिक देशों के लिए प्रेरणा बनी। आज भी भारतीय संविधान को विश्व की सबसे बड़ी संविधान मानी जाती है।(1) उन्होंने जाती और धर्म से उपर उठकर सभी के लिए बराबर अधिकार संविधान में अलग–अलग कानून बनाये हैं।

आर्थिक दृष्टिकोणः उन्होंने अंतरराष्ट्रीय व्यापार, कृषि और औद्योगिक विकास को राष्ट्रीय हितों से जोड़कर देखा। यह दृष्टिकोण आज भी वैश्विक आर्थिक नीतियों में प्रासंगिक है। समाज में बड़े आर्थिक भेद भाव को समाप्त करने पर बल देते हैं।(2) भारत की बढ़ती जनसंख्या के हिसाब से खाद्यान्न की भी व्यवस्था के लिए सरकार को कदम उठाने पर बल देते है।

मानवाधिकार और सामाजिक न्यायः भारत में अनेक संगठन है जो मानव के अधिकार की बात करते हैं, पर उनमें से एक मानवाधिकार आयोग भी है जो संवैधानिक नियमों के अनुकूल कार्य करता है। आज भारत में सभी संगठन सामाजिक न्याय की बात करते हैं पर इसी की आड़ में वो अपने लाभ कमाने लगते हैं तभी मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के लिए कार्य कर रहा है जो उनपर अंकुश लगते है। अम्बेडकर ने जाति–व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष को वैश्विक मानवाधिकार आंदोलन से जोड़ा। उसका प्रतिफल है कि आज जातिगत भेदभाव में कमी आई है उनकी सोच ने भारत को न केवल एक लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाया बल्कि विश्व राजनीति में न्याय और समानता की आवाज को भी मजबूत किया।

डॉ. अंबेडकर का राजनीतिक विचारधारा वैश्विक राजनीति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय संविधान में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय को आधार बनाया। यह संविधान आज विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक ढांचे का प्रतीक है।(4)

संवैधानिक योगदान : उनका सबसे बड़ा योगदान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में सबसे बड़ी समस्या थी संवैधानिक प्रावधान बनाना जिससे पूरे देश की सुरक्षा सुनिश्चित किया जाय। अंबेडकर ने भारतीय संविधान में

* सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, एस.पी.वाई कॉलेज, गया जी

मौलिक अधिकारों, समानता और स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया। यह मॉडल संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणापत्र से मेल खाता है।(5)

अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण : भारत के विकास, शांति और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए अम्बेडकर ने भारत की विदेश नीति को न्याय और राष्ट्रीय हितों पर आधारित करने की बात की। उन्होंने पाकिस्तान और कश्मीर जैसे संवेदनशील मुद्दों पर दूरदर्शी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनकी सोच थी कि अंतराष्ट्रीय संबंधों में आर्थिक सहयोग और शांति सर्वोपरि होनी चाहिए।(6)

आर्थिक नीति और वैश्विक व्यापार : आजादी के बाद आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए अम्बेडकर ने कृषि सुधार, औद्योगिक विकास और अंतरराष्ट्रीय व्यापार को भारत की प्रगति का आधार माना। उनका मानना था कि वैश्विक राजनीति में आर्थिक शक्ति ही राष्ट्र की असली ताकत है। देश को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए आर्थिक रूप से मजबूत होना जरूरी है।(7)

सामाजिक न्याय और मानवाधिकार : अपने छात्र जीवन में अनेक कठिनाइयां झेलने के कारण जाति–व्यवस्था के खिलाफ उनका संघर्ष वैश्विक मानवाधिकार आंदोलन से जुड़ा। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक समाज में समानता नहीं होगी, तब तक कोई भी राष्ट्र राजनीति में मजबूत भूमिका नहीं निभा सकता। इसके लिए उन्होंने संविधान में भी अनेक प्रावधान को शामिल किया जिससे शिक्षा ग्रहण करने में किसी को कठिनाई नही हो।(8)

वैश्विक प्रभावः पूरा विश्व परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है फिर भी आज पुरे विश्व में डॉ. अम्बेडकर के विचार को माना जा रहा है। आज भी विश्व राजनीति में अंबेडकर के विचार प्रासंगिक हैं। लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतंत्रता पर उनका जोर संयुक्त राष्ट्र विश्व बैंक और अन्य वैश्विक संस्थाओं की नीतियों में देखा जा सकता है। अंबेडकर ने भारत को वैश्विक राजनीति में न्याय और समानता का प्रतीक बनाया।(9)

निष्कर्ष

संविधान के प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता को स्थिर रखने के लिए बंधुत्व की महता पर जोर दिया गया। डॉ. भीमराव अंबेडकर की भूमिका केवल भारत तक सीमित नहीं रही। उन्होंने वैश्विक राजनीति को यह संदेश दिया कि लोकतंत्र तभी सफल होगा जब उसमें सामाजिक न्याय और समानता का समावेश हो। उनकी सोच ने भारत को एक मजबूत लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाया और विश्व को यह दिखाया कि न्याय और समानता के बिना कोई भी राजनीतिक व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकती। आज जब वैश्विक राजनीति आर्थिक असमानता, मानवाधिकार संकट और सांस्कृतिक संघर्षों से जूझ रही है, अंबेडकर के विचार और भी प्रासंगिक हो जाते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि राष्ट्र की शक्ति केवल सैन्य या आर्थिक ताकत में नहीं बल्कि उनकी जनता की समान भागीदारी और न्यायपूर्ण व्यवस्था में निहित होती है। अंबेडकर वैश्विक राजनीति के केंद्र में न्याय, समानता और लोकतंत्र की स्थायी आवाज बनकर उभरते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० बावा माहव अम्बेडकरः राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड 9. पृष्ठ 2.
2. वसु, डॉ. दुर्गा दास, भारत का संविधान एक परिचय, स्मगक गुडगाव, हरियाणा, 2015, पृष्ठ 27–28.
3. Dr. B. R. Ambedkar and Political Reform: An Academic and Research Analysis
4. Perspective of Dr. B.R. Ambedkar On Global Governance.
5. The Relevance of Dr- BR Ambedkar's Thoughts in Modern India.
6. Ambedkar and the Making of Indian Constitution & Granville Austin
7. डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड 2, पृष्ठ 38
8. The Essential Writings of B.R. Ambedkar & Valerian Rodrigues.
9. United Nations Human Rights Declaration (1948)

भक्ति मार्ग में मीरां का संघर्ष

मनीषा मीणा*

सारांश -

भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज हैं। हमारे समाज में स्त्रियाँ आज भी दोयम दर्जे की स्थिति में है। हालांकि वर्तमान समय में स्त्रियों को बहुत से कानूनी अधिकार दिए गए हैं परंतु क्या वो सामाजिक तौर पर लागू हुए है ? पहली बार आज से कई सौ वर्ष पहले एक स्त्री अपना मार्ग खुद ही तलाशने निकल पड़ती है पितृसत्तात्मक, सामंती राजसत्ता से टकराती है जिसका नाम है मीरां । मीरां जिन्होंने श्री कृष्ण को ही अपना सर्वस्व माना, जिनका नाम सुनते ही भारतीय जनमानस के हृदय में भक्ति भावना का सहज ही संचार होने लगता हैं । मीरांबाई का व्यक्तित्व भारतीय जनमानस पर जादू पैदा करता हैं। उनका भजन 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई, जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई' आज भी लोगों की जुबान पर है । मीरांबाई को भक्त शिरोमणि की श्रेणी में रखा जाता हैं / परंतु इस भक्ति के पथ पर मीरांबाई को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । वो मध्यकालीन सामंती स्त्री जो जोगन बन गई थी, जो साधु संगति करना चाहती थी, अपने आराध्य श्री कृष्ण की भक्ति करना चाहती थी वो राजमहल की दहलीज को लांघकर बाहर आ गई थी। यह पितृसत्तात्मक समाज उसे कैसे स्वीकार कर सकता था अतः वह मीरांबाई को तरह - तरह की यातनाएं देता हैं परन्तु मीरांबाई अपने पथ पर अडिग रहती हैं ये यातनाएं उनकी भक्ति को और प्रगाढ़ करती हैं और अंततः वो अपने आराध्य श्री कृष्ण को प्राप्त कर लेती हैं।

मूल शब्द - राजसत्ता, पितृसत्तात्मक, संघर्ष, लोकलाज, कुलकानी, सामंती समाज, लोकनिंदा, कृष्ण भक्ति , मध्यकालीन समाज, पब्लिक स्फियर आदि ।

मीरांबाई 16 वीं शताब्दी की एक भक्त कवयित्री है जिन्होंने अपने गिरधर गोपाल के प्रति भक्ति भावना को प्रकट करते हुए, उनके प्रति समर्पित होते हुए, लोकलाज की चिंता किए बिना अपने गिरधर के आगे पग घुंघरू बाँध नाचीं । परन्तु यह मध्यकालीन समाज उनकी भक्ति भावना, उनके द्वारा लिए गए निर्णय, उनका घुँघरू बांधकर नृत्य करना, साधु संगति करना, उनका स्वतंत्र रहना कैसे सहन कर सकता था ? अतः उन्होंने मीराबाई को तरह - तरह की यातनाएं देना प्रारंभ कर दिया यहाँ, तक कि राणा ने तो विष देकर उन्हें मारने तक की भी कोशिश की 'विख रो प्यालो राणा भेज्यां, पीवां मीरां हास्यां री' । इस भक्ति के पथ पर या यों कहें की मीरांबाई ने अपनी स्वतंत्रता के रास्ते पर जिन - जिन कठिनाइयों यातनाओं को सहा है उसके पर्याप्त साक्ष्य उनकी कविताओं में मिलते हैं । जिनमें वे इस मध्यकालीन समाज से लड़ती हुई, जूझती हुई, यातनाओं को सहन करती हुई, लोकलाज, लोक रूढ़ियों को नकारते हुए दिखाई देती है । वे कहती हैं 'लोक लाज कूलरा मरजादां जगमां णेक णा राख्यांरी' ।

'मीरा के काव्य में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, लोक रूढ़ि और कुलीनता के विरुद्ध विद्रोह का स्वर जैसा प्रखर है वैसा उस काल के किसी और कवि के यहाँ नहीं । आज भी भारतीय नारी को गुलाम बनाए रखने में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, लोक रूढ़ि और कुलकानी की बहुत बड़ी भूमिका है'।[1], और मीरां इन सब से संघर्ष करती रहती है । मीरां के समय में सती प्रथा का प्रचलन था, परंतु मीरां ने सती होने से इनकार कर दिया 'भजन करस्यां सती न होस्यां मन मोह्यो धणनामी' । मीरां में इतना साहस कहाँ से आया होगा ? मीरां अपने लिए भक्ति का मार्ग चुनती है जो उस युग में स्त्रियों के लिए आसान नहीं था क्योंकि स्त्री को भक्त रूप में ना तो समाज ही

* शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, मो० न० 9643685355, Email : meenamamta049@gmail.com,

स्वीकार करता था ना परिवार और ना ही साधु समाज । उसके लिए मीरां को कठिन संघर्ष से गुजरना पड़ा उसके मार्ग की सबसे पहली चुनौती तो उसका परिवार ही था जो मीरां को घर की चारदीवारी में ही रखना चाहते थे । और सामंती समाज जहाँ स्त्री पुरुष के लिए एक वस्तु थी उसके घर की इज्जत मान मर्यादा थी । वे मीरां को तरह - तरह से सताया करते थे । मीरां लगातार लांछन, अपमान और यातना सहती हुई कृष्णभक्त बनी रही और अपने मार्ग पर लोक रूढ़ियों को समाज की पाबंदियों को नकारते हुए आगे बढ़ती रही वो कहती हैं - 'अपने घर का पर्दा कर ले मैं अबला बौराणी' ।

मीरां की कविता में मीरां का निजी जीवन - संघर्ष, उनका अकेलापन, असुरक्षा, यातना, उनकी मनोभावनाओं आदि का वर्णन है, जो उस समय के लिए बहुत बड़ी बात है। भक्ति करने और भजन गाने की छूट, तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मिल भी सकती थी लेकिन कोई स्त्री कुल की लाज त्याग कर, घुँघरू पहन कर नृत्य करें, साधु संगति करें ऐसी छूट उस समय कहां । यह साहस का काम मीरा ने किया उनके जीवन में जो भी घटित हुआ था उसकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है ।

मीरां सुंदर थी, जवान थी, पब्लिक स्फीयर में आ गई थीं तो स्वाभाविक हैं कि उनका सामना बहुत से मनचलों से हुआ होगा । एक बार कोई साधु मीरा से मिला उसने मीरां से कहा कि मुझे श्रीकृष्ण ने भेजा है आपके साथ विहार करने के लिए, मीरां ने उनका स्वागत करते हुए कहती हैं कि पहले भोजन कीजिए फिर सबके सामने सेज लगाती हूँ संतों के बीच निशंक होकर रस में भीगिये ।

'विषयी कुटिल एक भेष धरि साधु लियो,
कियो यों प्रसंग मो सों अंग संग कीजिए।
आज्ञा मोकों दई आप लाल गिरिधारी,
'अहो शीश धरि लई करि भोजन हूं लीजिए।'
असभनि समाज में बिछाय सेजि बोलि लियो ।
'सक अब कौन की निसंक रस भीजिए'।
सेत मुख भयो, विषै भाव सब गयो,
नयो पायन पै आय, 'मोकों भक्तिदान दीजिए ।'[2]

इस प्रसंग से लगता है कि साधु समाज में भी ऐसे कपटी साधु थे जो मीरां को सताया करते थे उनके सड़क पर आने का, एक स्त्री होने का फायदा उठाने चाहते थे। परंतु मीरां द्वारा दिए गए जवाब ने उस साधु ही क्या उस पूरे पुरुष समाज को दिखा दिया कि स्त्री सिर्फ एक देह नहीं है, उसका भी कुछ अस्तित्व है । मीरां मानो उस साधु से कहना चाहती हो कि मैने तो तुम्हें पहचान लिया है पर क्या तुम मुझे पहचान पाए हो ? मीरां ने इस जवाब से सांप भी मार दिया और लाठी भी नहीं टूटी । इससे पता चलता है कि मीरां का सामाजिक संघर्ष कई स्तरों पर था ।

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' ये कहकर मीरां एक श्रीकृष्ण के स्वीकार में सारी दुनिया, पितृसत्ता, राज्यसत्ता सब का निषेध करती है क्योंकि उन्हें केवल श्रीकृष्ण की भक्ति ही चाहिए उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता की लोग उसके बारे में क्या कहते हैं क्या सोचते हैं - 'कोई निन्दो कोई विन्दो, म्हे तो गोविंद के गुण गास्यां'। मीरांबाई ने लिखा है कि लोग मेरी निंदा करते है, कड़वे बोल बोलकर मेरी हंसी उड़ाते हैं। मीराबाई कहती है कि - 'कड़वा बोल लोक जग बोल्या करस्यां म्हारी हांसी' ।

'मीरा की कविता मैं अमृत विष साथ - साथ अक्सर आते हैं। कहा गया है कि उन्हें विष दिया गया था, उन्होंने पी लिया तो अमृत हो गया । पता नहीं यह सत्य है या असत्य, लेकिन इसका प्रतीकार्थ जरूर है। विषपान मीरा का - मध्यकालीन नारी का - स्वाधीनता के लिए संघर्ष है और अमृत उस संघर्ष से प्राप्त तोष है जो भावसत्य हैं। मीरां का संघर्ष जागतिक, वास्तविक है, अमृत उनके हृदय या भाव जगत में ही रहता है' ।[3]

यदि मीरां राजभवन में ही रहकर भक्ति करती तो किसी को कोई दिक्कत नहीं होती, लेकिन मीरां जब साधु संगति के लिए राजभवन से बाहर निकलकर मंदिरों में कृष्ण भक्ति के गीत गाकर घुँघरू पहनकर नृत्य करती थी तो यह बात राणा को पसंद नहीं थी क्योंकि इससे कुल की मर्यादा नष्ट होती थी । और वो ये कैसे सहन कर सकते थे कि उनकी राजवधु साधु समाज के समक्ष नृत्य करे । मीरां की ननद ऊदाबाई मीरां से कहती है राणा आपसे नाराज हो गए है, आपके इस तरह साधुओं में जाने से बदनामी होती हैं कुल को दाग लगता है, हमारी भरी निंदा हो रही है , तुम साधुओं के साथ वन - वन भटकती हो, सारी लाज गवा दी हैं। इतने बड़े घर में तुम्हारा जन्म हुआ है और तुम ताली दे - दे कर नाचती हो -

'ऊदौ : थाणे बरज बरज मै हारी, भाभी मानो बात हमारी ।
रानो रोस किया था पर साधो में मत जारी ।
कुल को दाग लगे छै भाभी, निन्दा हो रही भारी ।
साधो रे संग बन बन भटको लाज गमाई सारी ।
बड़ा घरां में जनम लियो छै नाचो दे दे तारी' ।[4]

विधवा के साथ भाई - बंधु भतीजे कैसा व्यवहार करते हैं यह जग विदित है। सभी को मीरां ने बाद में छोड़ा होगा सभी ने मीरा को छोड़ना उपेक्षित करना पहले शुरू किया होगा इस जगत को देखकर वे रोती है और साधुओं को देखकर खुश होती है 'साधां संगत हरि सुख पास्यूं जगसूं दूर रह्यां' क्योंकि मीरां जगत से दूर रहकर साधु संगति में हरि सुख पाती हैं। मीरा कहती है कि उन्होंने लोकलाज को तोड़ दिया है लेकिन इसके लिए लोग उन्हें बुरा कहते हैं निंदा करते हैं । उनकी सासू उनसे लड़ती है ननद खिजाती है, पहरा बिठला दिया गया है, ताला जड़ दिया है ताकि मीरां बाहर न जा सके -

'हेली म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाय ।
सास लड़े मेरी ननद खिजावै राणा रह्या रिसाय ।
पहरों भी राख्यो चौकी बिठारयो, तालो दियो जड़ाय' । (पद 42)

(मीरांबाई की पदावली)

मीरां की ये कविताएं केवल शब्द नहीं है, ये मध्यकालीन समय में सामंती समाज, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति को दर्शाता हैं कि किस तरह सामंती समाज स्त्रियों को नियंत्रण में रखता था और जिसकी पहरेदार होती थी एक स्त्री ही उनकी सास ननद । ये सिर्फ कविताएं ही नहीं है ये मीरांबाई की आपबीती है।

मीरां को भारी लोकनिंदा सहनी पड़ी होगी 'लोक निंदा की हालत तो ये है की विश्वप्रसिद्ध और भारत की सर्वाधिक प्रसिद्ध भक्त कवयित्री होने के बावजूद आज भी राजस्थान में ऐसे लोग हैं जो मीरा को अच्छी निगाह से नहीं देखते । पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने मीरा पर काम करने के सिलसिले में राजस्थान यात्रा का अनुभव बताते हुए लिखा है : 'हाँ, इस बात की सूचना मुझे अपनी उदयपुर की यात्रा के ही समय मिली थी कि वहाँ मीरा के प्रति आदरबुद्धि कम है। मुझसे इसकी चर्चा चित्तौड़ दुर्ग के रहने वाले लोगों तक ने की थी । यह हालत आज की है जबकि मीराबाई के मंदिर राजस्थान में ही निर्मित हो चूके है। मीरा के जीवनकाल में लोक निंदा का क्या रूप रहा होगा ?'[5] ये हम समझ ही सकते हैं

'आज, इस 21 वीं सदी में भी स्थिति यह है कि सिसौंदिया खानदान के लोग ये मानने को तैयार नहीं कि मीरा नाम की कोई लड़की इनके खानदान की बहू थी । चित्तौड़गढ़ के करीब डागला का खेड़ा नामक जगह है । वही के करीब की मीरा थी । पड़ोस की औरतें बताती हैं कि कोई ऐसी लड़की उनके खानदान में जन्मी की नहीं, ठीक - ठीक नहीं कहा जा सकता - पर इस नाम की दहशत इतनी है कि पिछले नौ पीढ़ियों में किसी राजपूत ने दूर - दूर तक अपनी बेटी का नाम मीरा नहीं रखा । ब्राह्मण और बनिए अपनी बेटी का नाम मीरा

रख भी लें, राजपूत अभी भी मीरा नाम पर फक्र नहीं करते, उससे शर्मिंदा ही होते हैं । मीरा अब तक उनके दिमाग में एक कुलांगार का नाम है, जिसने कुल - मर्यादा को धता बताई और अपनी शर्तों पर जिंदगी जी' ।[6]

'मीरां श्रीकृष्ण की भक्ति में इतनी तल्लीन हो जाती है कि पैरों में घुँघरू बांधकर नाचने लगती है यह देखकर लोग कहते हैं कि मीरा बावली हो गई है और सास कहती है कि मैं कुल कलंकिनी हूँ इतना ही नहीं राणा तो इतने क्षुब्ध हो गए कि विष का प्याला ही भेज दिया और मीरां ने उसे हंसते हंसते पी लिया

'पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे
पग बांध घुंघरयां णाच्यारी ।
लोक कह्या मीरा बावरी, सासु कह्यां कुलनासी री ।
विष रो प्यालो राणा भेज्यां, पीवां मीरां हासां री'।[7]

राणा से ही नहीं सास ननद और देवर से मीरां के रिश्ते सौहार्द्रपूर्ण नहीं है । मीरा एक सामान्य स्त्री की तरह अपने जीवन के सभी चरणों को, दुख तकलीफ को और कटुताओं को बार बार याद करती है । 'मीरां तकलीफ को महसूस करती है मीरां का वैवाहिक जीवन मुश्किलों से भरा हुआ था । वह एक सामान्य स्त्री की तरह इन मुश्किलों का ब्योरा पेश करते हुए कहती है -

'सासरियो दुख घणा रे सासू नणद सतावै ।
देवर जेठ कुटुम कबीलो, नित उठ राड़ चलावै ।
राजा बरजै, राणी बरजै, बरजै सब परिवारी ।
कुंवर पाटवी सो भी बरजै और सहैल्यां सारी' ।[8]

जब ससुराल में मुश्किलें बढ़ती है उन्हें तकलीफें दी जाती है, प्रताड़ित किया जाता हैं तो मीरा एक सामान्य स्त्री की तरह अपने पीहर पक्ष को भी याद करती है । वे कहती हैं 'म्हारे बाबा सा ने कहियो म्हाने बेगा लेबा आवे'। मीरांबाई दुखी होकर कहती हैं कि सब मेरे बैरी हो गए है कोई मेरा अपना नहीं है - ' सगो सनेही मेरो न कोई, बैरी सकल जहान।'

'राघवदास मीरां के चरित्रनिरूपण में कुछ हद तक यथार्थवादी हैं। उन्होंने मीरां के संबंध में तीन बातों का उल्लेख किया है । एक तो साधुओं के साथ उठने - बैठने से राणा मीरां का शत्रु हो गया और उसने उसे मारने का प्रयत्न किया । दूसरी यह की राणा ही नहीं, लोक भी मीरां का शत्रु था । तीसरी यह है कि स्त्री होकर भी मीरां सन्त सभा में निडर रही' । राघव दास के अनुसार राजसत्ता, लोकसत्ता और धर्मसत्ता, तीनो ही मीरां के विरुद्ध थी और उसको इन तीनों के ही विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा' ।[9]

मीरां विषयक उल्लेख वल्लभ सम्प्रदाय के दो ग्रंथों 84 वैष्णवन की वार्ता और 252 वैष्णवन की वार्ता में आते हैं । 84 वैष्णवन की वार्ता में तीन वल्लभ सम्प्रदाय भक्त शिष्य मीरां का अपमान, अवहेलना और अवज्ञा करते दिखाए गए हैं । पहले मीरां के पुरोहित रामदास हैं जो मीरा को 'दारी - रांड' की गाली देकर फिर कभी उसका मुँह नहीं देखने की शपथ लेकर कुटुम सहित चले जाते हैं । दूसरे अष्ट शाखाओं में से एक कृष्णदास अधिकारी हैं । मीरां महाप्रभु आचार्य की शिष्य नहीं थी इसलिए वे उसका आतिथ्य स्वीकार नहीं करते । तीसरे गोविंद दुबे सांचौरा ब्राह्मण हैं, जो मीरां के यहाँ भगवद् चर्चा करते हुए टिके हुए थे । गुसांईजी का संदेश पाकर वे तत्काल प्रस्थान कर जाते हैं । मीरां की रोकने के लिए की गई अनुनय - विनय का उन पर कोई असर नहीं पड़ता ।

'कुल मिलाकर वंश - परिवार की इज्जत, भौतिक विवाह और कुल से फिर लगाव/ जुड़ाव का अस्वीकार असल में ना सिर्फ इनके द्वारा दी गई शिक्षा व समाज संचालन में वंश के हस्तक्षेप का बल्कि उस समूचे सामाजिक ढांचे का अस्वीकार है जिसमे ये सारी संस्थाएँ गुत्थी हुई है । घर-बार के त्याग से उसने उस मूल प्रभाव क्षेत्र को भी नामंजूर कर दिया, जिसमे काम - भावना को नियंत्रित करने की परंपरा थी'।[10]

मीराबाई ने अपने इस भक्तिभाव के पथ पर, अपने चुने गए रास्ते पर चलने के लिए उस मध्यकालीन समाज, सामंती समाज, पितृसत्तात्मक समाज , समाज की रुढ़ियों, सबसे लोहा लिया । मीरां बहुत निर्भीक निडर रही होगी । हम जानते है कि 15वीं 16वीं शताब्दी में उदयपुर के राणा कहना न मानने वाली विधवा के साथ क्या सलूक कर सकते थे ।

महादेवी वर्मा कहती है - 'मध्य युग के पाषाण युग में वह मेड़ता राजनंदिनी थी, यशस्वी मेवाड़ के राजघराने की वह सजीली राजवधू थी । मर्यादा, लोक - बंधन तथा कट्टर पाषाणी समाज में मीरा का करताल लेकर राज्य प्राचीर से बाहर निकलना तथा जन - जन के साथ मिलकर अपने प्रियतम गिरधर गोपाल के प्रेम का नक्कारा पीटना तत्कालीन समाज के विरुद्ध भीषण एवं गंभीरतम विद्रोह था अतः मीरा को मैं मध्ययुगीन नारी के विद्रोह का प्रतीक मानती हूँ' ।[11]

अतः कहा जा सकता है कि मीरांबाई में अदम्य साहस था क्योंकि एक स्त्री का मध्यकालीन सामंती समाज में एक विधवा राजकुलवधु का करताल लेकर, साधुओ के साथ बैठकर, पैरों मे घुँघरू बांधकर नाचना कोई स्वीकार नहीं कर सकता था । परंतु मीरांबाई अपने कृष्ण भक्ति के पथ पर अड़िग रही और राजसत्ता, पुरुषसत्ता और धार्मिकसत्ता को नकारती हुई या यों कहे की इनकी परवाह किये बिना अपने भक्ति, स्वतंत्रता के मार्ग पर आगे बढ़ती हुई कृष्णभक्त बनी रही । और ये साहस काम केवल मीरां ही कर सकती थी ।

संदर्भ - ग्रंथ सामग्री

1. शीतल कुमारी, मीरा के विद्रोही स्वर, प्रकाशक - अनुज्ञा बुक्स, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 48
2. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 61
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 55
4. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 59
5. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 66
6. महादेवी वर्मा, मीरा और मीरा, महादेवी वर्मा के मीरा विषयक व्याख्यान, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 27
7. संपादक - नवनीत आचार्य, भक्ति के स्त्री - स्वर, (स्त्री भक्त कवयित्रियों का इतिहास और नैतिक भूगोल - अनामिका), वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 79
8. अनुज, मीरांबाई आज के समय में, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली- 110003, प्रथम संस्करण 2022 (शक 1943), पृष्ठ 132
9. माधव हाड़ा, मीरां का जीवन और समाज पचरंग चोला पहर सखी री , वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 122
10. कुमकुम संगारी, मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 57-58
11. महादेवी वर्मा, मीरा और मीरा, महादेवी वर्मा के मीरा विषयक व्याख्यान, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 51

दृश्यकाव्य में समवकार

डॉ. राम कृपाल*

सारांश:

समवकार एक प्रकार का रूपक है जिसमें देवता नायक या दानव भी हो सकते हैं। इसमें बारह नायक तथा तीन अंक होते हैं; जिसका प्रधान रस वीर या श्रृंगार तथा अन्य रस गौण होते हैं। दृश्यकाव्य में विभिन्न रसों एवं भावों का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। दृश्यकाव्य का एक ऐसा रूपक है जिसमें कथानक के साथ-साथ गीत-संगीत,नृत्य पर विशेष बल दिया जाता है। कथानक का समवकार में विशेष महत्व होता है। लोकनाट्य दृश्यकाव्य का सरल रूप है,जिसकी भाषा सरल-सहज स्थानीय नृत्य-संगीत एवं संवाद के माध्यम से लोक पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओं एवं किवंदतियों को प्रस्तुत करने वाला कला संज्ञक है। यह किसी व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि जन-समुदाय की कृति होती है जो पारम्परिक रूप से लोक-मनोरञ्जन का महत्वपूर्ण साधन रहा भी है, जिसमें निश्चित आलेख होने के बजाय कलाकार मौखिक परम्परा के आधार पर संवाद करते हैं। दृश्यकाव्य वह अद्वितीय साहित्य है जिसे आँखों से देखकर एवं कानों से सुनकर आनन्द की अनुभूति होती है,जिसका प्रमुख उदाहरण नाटक है। इसमें कथानक का अभिनय किया जाता है, दर्शक उसे देखकर रस का अनुभव करते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध निबंधकार पण्डित बालकृष्णभट्ट ने संसार महानाट्यशाला' नामक निबन्ध में चराचरात्मक सृष्टि के सूत्रधार परमपिता परमेश्वर को नटराज एवं प्रकृति' को नटी मानते हुए जगत की नाट्यशाला अर्थात् रंगमंच के रूप में निरूपित किया है।[1] भगवान कपिल ने ही स्वप्रचलित एवं स्वप्रवर्तित सांख्य दर्शन में कहा है कि पुरूष के संयोग से प्रकृति में संक्षोभ उत्पन्न होने पर सत्व,रजस्,तमस् नामक गुण-संज्ञक प्राकृत रूप परमाणु सक्रिय होकर सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ करते हैं।आर्थवाणीश्रुति कहती है कि अहं ब्रम्हं स्वरूपिणी। मत्तःप्रकृति पुरूषात्मकं जगत।[2] प्रकृति के परा एवं अपरा दो रूप हैं। पारमार्थिक दृष्टि से तो प्रकृति अजा एवं एका' किन्तु लोहित-शुक्ल-कृष्णा है।[3] सांख्य कारिकाकार ईश्वरकृष्ण का निर्वचन है कि प्रकृति एवं पुरूष दोनों अजा एवं एक होते हुए भी परस्पर एक दूसरे के विरोधी रहते हैं फिर भी कोटिपूरक प्रतीत होते हैं। इसकी कथावस्तु पौराणिक या ऐतिहासिक होती है; इसमें भारतीय काशिकी वृत्तियों का प्रयोग होता है। रूपक के दस भेद होते हैं जिसमें नाटक, प्रकरण,भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन। दृश्यकाव्य में दृश्यात्मक वर्णन प्रमुख होते हैं, इसमें दृश्यात्मक,भावात्मक तथा साहित्यिक उपागमों को प्रमुख स्थान दिया जाता है।

प्रस्तावना:

सांख्यदर्शन का पङ्गवबन्ध न्याय इस सम्बन्ध में विश्व प्रसिद्ध है। प्रकृति एवं पुरूष की अनादिता एवं उपादान तथा निमित्त कारणता के रहस्य का 'महाभारत सारसर्वस्व' तथा 'दर्शनप्रस्थानान्यतम्' गीता में परम वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहा गया है— 'प्रकृर्तिं पुरूषं चैव विद्धयनादी उभावपि' अतः प्रकृति एवं पुरूष दोनों ही 'बीज-वृक्षवत्' अनादि है।[4] जबकि ऐसा न मानने पर अनवस्था अनिवार्य एवं आवश्यक होगी[5]। द्रष्टा,दृष्य,साक्षी की त्रिपुटी 'योगशास्त्र' की दृष्टि से 'सम्प्रज्ञात' समाधि पर्यन्त विद्यमान रहती है।[6] बौद्ध-दर्शन में इसको 'सबीज समाधि' की संज्ञा प्रदान की गयी है।[7] 'निर्बीज समाधि' या 'असम्प्रज्ञात समाधि' मन-मष्तिष्क की गुणातीतावस्था है।[8] यह समाधि की वह अवस्था है जब मन प्रकृति के गुणों (मलों) से सर्वथा पृथक अर्थात् शून्य की स्थित प्राप्त कर लेता है।[9] ऐसी स्थित में द्रष्टा-दृश्य एवं साक्षी अभिन्न हो जाया करते हैं उक्त अवस्था में विद्यमान जीव विधि-निषेधों से परे हो जाता है। 'निस्त्रैगुण्योभवार्जुन' सूत्र में इसी स्थित का श्रीकृष्ण ने उपदेश किया है।[10] श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र श्री शुकदेव समाधि में सदैव तल्लीन रहते थे। इस अवस्था का वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत में 'श्रीसूत' जो स्वयं श्री शुकदेव के सतीर्थ्य तथा पुराणेतिहास नामक वेदार्थवेदक 'पञ्चमवेद' के सहाध्यायी रहे।[11] कहा गया है—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुत्ये उत्तमश्लोक लीलया।
अध्यगान्महादख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः।।[12]

(श्रीमद्भागवत1.2.5)

वास्तव में अनाम,अरूप,अच्छेद्य,अवेद्य,अखण्ड,निर्वघ्राशेष परमतत्व की कूटस्थ नित्यता निर्विवाद है। 'आनन्दो ब्रह्मोति व्यजानात्' 'आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रत्ययभिसंविशन्ति' 'विज्ञानमानन्दं व्रह्म' 'रसो वै सः' 'रसानाम् रसतमं'[13] इत्यादि

* सहायक आचार्य, भारतीय भाषा–विभाग (संस्कृत–भाषा), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र–001 अध्येयताः डी.लिट्., डा.रा.म.लो.अवध विश्वविद्यालय अयोध्या, जनपद–अयोध्या (उत्तर–प्रदेश)

तैत्तिरीयोपनिषद की श्रुतियाँ निरुपाधिक निर्विशेष आनन्द को परब्रह्म घोषित करती हैं, जो परमरस ब्रह्मनन्द है, वही निरतिशय सत्वोद्रेक से ज्ञानानन्द की प्रतीति (अभिव्यक्ति) होती है, जो अशब्द है परन्तु शब्द से ही उसका वर्णन होता है, कवि उसी 'परम रसात्मक सत्यं ज्ञानमनन्तं'[14] ब्रह्म का ही वर्णन करता है जिसका न कोई रूप एवं नाम भी नहीं है, उसका वर्णन 'सर्वात्मना मन्त्रब्राह्मणात्मक' वेद भी नहीं कर सकते हैं तो अन्य की क्या परिचर्चा की जाए।

बीजशब्द:

काव्यं यशसे अर्थकृते, परमरसात्मकं काव्यं, सत्यं ज्ञानमनन्तं,रसातम् रसतमं, सर्वमूलममूलं, मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम् ब्रम्ह्म सत्यं जगन्मिथ्या, व्यवहारविद् ।

शोध-प्रविधि:

प्रस्तुत आलेख में विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध-प्रविधि का उपयोग कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाएँगे।

समवकार तीन अंकों का नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ है,जिसका बिषय देवताओं एवं असुरों के बीच वीरतापूर्ण संघर्षों का वर्णन प्राप्त होता है। यह रूपक नामक प्राचीन नाट्यशास्त्रीय शैली का भेद है; जो वीररस प्रधान होता है। इसकी कथावस्तु देवताओं एवं असुरों के बीच प्रसिद्ध युद्ध या संघर्ष जैसे अमृत-मंथन की कथा का रंगमंचीय वर्णन प्राप्त होता है।समवकार के सम्बंध में आचार्य वार्षगण्य ने चेतनानधिष्ठित प्रकृति को स्वतन्त्र सृष्टि का मूल कारण मानते हैं,उसी मत को नास्तिक बौद्धों ने कपिलाचार्य के नाम से प्रचार-प्रसार किया। आद्य भगवद्पाद ने प्रकृति कारणवाद को कपिलमत मानकर शारीरिक भाष्य में खण्डन किया। यह खण्डन वार्षगण्य का ही है,जो नास्तिक क्षणभंगुरवादी है जो बौद्धमत के अनुकूल चलता है। महामुनि स्वयं भगवदावतार एवं स्वयंभुव मनु की पुत्री देवहुति एवं महर्षि कर्दम के पुत्र थे। श्रीमद्भागवत् का कपिलोख्यान मननीय है। ब्रह्मनन्द चराचर ब्रम्हाण्ड में वाह्यभयन्तर सर्वत्र व्याप्त है। अतः 'चिति' सर्वव्यापिनीसत्ता, निरतिशयव्यापिनी है। अतिचेतनावादी 'जड़' को 'अनुद् बुद्ध चेतन' ही मानते हैं। जगत ब्रह्म का विर्वत स्वरुप है, जो चित्तशक्ति का रमणीय विलास है। जड़ता आनन्द की पराकाष्ठा है। अतः रसानुभूति की पराकाष्ठा के अतिरिक्त जड़ की कोई स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है। रसावस्थपरमभाव ही स्थायी सत्ता होती है—'रसावस्थःपरं भावःस्थायितां परिपद्यतेनु'।[15] ब्रम्हानंद ही परमरमणीय है, वही समस्त प्राणिमात्र का प्रेमास्पद का करण भी होता है। 'ब्रम्हानन्दं परमसुखदं' समस्त प्राकृत उपादान उसी के व्यञ्जक हैं। अप्राकृत आलौकिक आनन्द की अभिव्यक्ति का माध्यम प्राकृत हो सकता है। अतएव कर्मफलोपभोगार्थ जीव को योनि (जाति) आयु तथा भोग की निरंतर प्राप्ति होती है। रमणीय आचरणों से रमणीय तथा कयूप आचरणों से कयूप योनि (जाति) की उत्पत्ति हो सकती है, जिस प्रकार अवतारी विग्रह चिदानन्दमय ही होता है। कर्मफलभोगार्थ प्राप्त योनिज शरीर पृथिव्यादि पञ्च महाभूतात्मक एवं नश्वर होता है। अयोनिज शरीर भी जन्य होते हैं, परन्तु अवतार विग्रहजन्य नहीं होते हैं, इसलिए तिरोभाव ही श्रुत एवं स्मृत हैं। श्रुति का कथन है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया:,समानं वृक्षं परिषप्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्ति,अनश्नन् अन्योऽभि चकाशति।।[16]

उपर्युक्त मंत्र में स्पष्ट निर्देश है कि फलाकांक्षी जीव कर्मफलभोक्ता परतन्त्र है। फलप्रदाता तो स्वयं प्रकाशयुक्त परमात्मा है। जब पिण्डाभिमानी जीव जब कर्म में प्रवृत्त होता है तो फल ही उसके कर्म में प्रवृत्ति का कारण बनता है। 'प्रयोजनमनुदिश्य न मन्दोऽपि प्रकीर्तिता' किन्तु परमात्मा के कर्म में प्रवृत्ति का कारण 'करूणा' है। जीव शिव का परमप्रिय अंश है। 'अंशों नानाव्यपदेशात्' ब्रम्हसूत्र का आनन्द भाष्य उक्त के सन्दर्भ में अवलोकनीय है। व्यष्टि एवं समष्टि पिण्डाभिमानी जीव एवं उन जीवों का प्रेरक,अन्तर्यामी ईश्वर तत्पिण्डाभिमानी जीवों के अन्तःकरणों में विद्यमान रहता है। तत् सृष्ट्वा तद्वानुप्रविशत् हृदेशेऽर्जुने तिष्ठति। गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में सुस्पष्ट करते हुए कहते है कि—

ज्ञानअखण्ड एक सीतावर।उर प्रेरक रघुवंश बिभूषण।।[17]

चराचरात्मक जगत की महानाट्यशाला के सूत्रधार निर्गुण निराकार निर्विशेष अव्याकृत 'सत्' ही परमरस है। 'सदैव सोम्येदमग्र आसीद्रेक मेवाद्वितीयं' ऐसा भेदनिषेधिका श्रुति कहती है। 'नेनानास्ति किञ्चन' वही परमरसात्मक सदभिन्न चिदभिन्न ब्रह्मनन्द चराचर जगत का सारसर्वस्व,समस्त प्राणिमात्र पर प्रेमास्पद 'आत्मा' सर्वोत्कृष्ट, सत्य, निरवधिक, महासमुद्र है उसी में सदानन्द तरंग शब्द और चिदानन्दमय तरंग अर्थ है। 'पश्य देवस्य,काव्यं न ममार न जीर्यति' श्रुतिदेव काव्य को अमर एवं नित्य घोषित करती है, उसके ध्वनि पर वर्ण एवं वाक्य अवयव हैं। यह अखण्ड महावाक्य के रुप में स्वनिष्ठ अखण्ड महावाक्यार्थ का व्यञ्जक है। अखण्ड महावाक्यार्थ ही जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है वहीं वस्तुतःरस है। उसी की ही सत्ता से जगत सत्य प्रतीत होता है। श्रीमद्भागवत के परमसत्य भगवान श्रीकृष्ण रासगोष्ठी के महानायक एवं चराचरात्मक जगत के सूत्रधार भी है, जैसा कि बृहदारण्यक श्रुति एवं श्रीमद्भगवतगीता भी कहती है। आस्तिक दृष्टि से भगवान विष्णु के दशावतारों के आधार पर दशरुपकों को रसाश्रयरुप माना जाता है, अस्तु दृश्यकाव्य ही अभिनेय है,

क्योंकि नट में रसादि स्वरुपों का आरोप होता है, इसलिए कहा गया है—'तद्रूपारोपात्तु रूपकम्'[18] दस प्रकार के रूपक संस्कृत- साहित्य में विद्यमान एवं विख्यात है,अट्ठाइस उपरूपकों को नाट्यशास्त्र में सामान्यतः परिभाषित करता है ,जैसे—

नाटकमथ प्रकरणं भाण व्यायोगसमवकारडिमः।
ईहामृगाक वीथ्यःप्रहसनमिति रूपकाणि दशः॥[19]

इस प्रकार उपरूपक भी हैं— नाटिका त्रोटयं गोष्ठी सट्टकं नाट्य रसात्मकं ।
प्रस्थानोल्लाप काव्यानि प्रकरणं रसात्मकं तथा॥
संल्लापर्वंश्रीगदितं शिलायं च विणासिका।
दुर्गाल्लिका प्रकरणी दृल्लीशो भाणिकेति च॥[20]

समवकार दशविधि रूपकों में परिगणित है। समवकार पद का निर्वचन करते हुए आचार्य कृष्णमोहन ठक्कुर ने साहित्य दर्पण की लक्ष्मी टीका में लिखा है—

स्वकीर्यन्ते कविभि:र्निवध्यन्ते समवकारपूर्वकात् करोति:।
अंकत्तरि च कारके संज्ञायाम् इति पाणिनी सूत्रेण छत्र् प्रत्ययः॥

समवकार को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ जी कहते हैं कि—

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयं।
सन्धयो निर्विमर्शास्तु त्रयोऽजस्रतूचादि मे॥[21]

निष्कर्ष: चराचर जगत की महानाट्यशास्त्र का सूत्रधार निर्गुण निराकार अव्याकृत 'सेतु' ही परमरस है। ध्वनि वाक्य एवं वर्ण अवयव है। यह स्वनिष्ठ अखण्ड महावाक्यार्थ का अभिव्यंजक है। दशरूपक में समवकार की स्वकीय विशेषता का निरूपण जिन आचार्यो ने किया है, उनमें आचार्य विश्वनाथ सर्वप्रमुख है। विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में दृश्यकाव्यों का विश्लेषण करते हुए समवकार की व्याख्या की है। समवकार वृत्तलोक विख्यात एवं मनोरंजनात्मक होना चाहिए, पुराणेतिहास इसके स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'समुद्रमन्थनं' इसका सजीव उदाहरण है। यह एक भारतीय संस्कृत नाट्य का रूप है, जिसमें देवों-असुरों के कथा की अभिव्यंजना होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. साहित्य ज्योत्सना भाग-1, पृ. 26
2. सांख्य कारिका-1/1
3. देव्यापर्वशीर्ष द्वितीय संरकरण पृ. 28
4. श्रीमद्भगवतगीता- तृतीयोध्याय
5. मार्क्सवाद एवं रामराज्य– पृ. 8
6. श्रीमद्भागवतगीता-प्रथम स्कन्द पृ.28
7. विष्णु सहस्रनाम – पृ.18
8. दशरुपक-पृ.32
9. न्यायसिद्धान्त टीका- पृ. 49
10. श्वेतोपनिषद-पृ.54
11. काव्य प्रकाश- राजशेखर – पृ. 48
12. श्रीमद्भगवद्गीता-तृतीय अध्याय
13. न्यायदर्शन सांख्य का टीका- पृ.सं.42
14. तैतिरीयोपनिषद् – 3/4/8
15. रस सिद्धान्त संस्करण-द्वितीय पृ.49
16. राजशेखर कृत काव्यमीमांसा-पृ.28
17. गोस्वामी तुलसीदास, उत्तरकाण्ड
18. साहित्य दर्पण 6/3-4
19. साहित्य दर्पण 6/234
20. साहित्य दर्पण 6/234
21. साहित्य दर्पण 6/104

वर्तमान समय में खाद्य–पदार्थों में अपमिश्रण : एक गम्भीर समस्या

विभा सिंह*
डॉ. सुरेखा जायसवाल**

सारांश :

खाद्य पदार्थों में मिलावट जीव विज्ञान और जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक बढ़ती हुई चिंता का विषय है। यह हानिकारक पदार्थों को मिलाकर या मूल्यवान सामग्री को हटाकर खाद्य उत्पादों में परिवर्तन या संदूषण करने की प्रथा को संदर्भित करता है। जिससे स्वास्थ्य को गंभीर नुकसान होता है। मिलावट के सामान्य उदाहरणों में दूध में पानी, यूरिया या डिटर्जेंट मिलाना, दालों में कंकड़ या मिट्टी मिलाना और तेल में खनिज तेल या सस्ते तेल मिलाना शामिल है। इससे पेट की समस्या से लेकर लीवर, किडनी की क्षति और यहाँ तक कि कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियाँ भी हो सकती हैं और खाद्य सुरक्षा एवं मानकों के नियमों का खंडन करती है। अतः यह लघु शोध भोज्य पदार्थों में मिलावट के उद्देश्यों, कारण, प्रकार एवं मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव का विश्लेषण करता है और भोज्य पदार्थ के गुणवत्ता हेतु मानक एवं नियमों की जाँच की समीक्षा करता है।

शब्द कुंजी– मिलावट, समस्या, गुणवत्ता, मानक, दुष्परिणाम, परीक्षण, खाद्य पदार्थ अधिनियम।

प्रस्तावना :

मानव जीवन की पहली इकाई भोजन है जिसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते, लेकिन भोजन में मिलावट होने से उनकी पौष्टिकता एवं गुणवत्ता कम हो जाती है और कभी–कभी भोज्य पदार्थ विषाक्त हो जाते हैं तथा शरीर पर हानिकारक प्रभाव छोड़ते हैं जैसे– मतली, दस्त, एलर्जी, कैंसर, मधुमेह एवं शारीरिक अपंगता आदि दुष्प्रभाव देखने को मिलते हैं। कई बार तो लोगों को अपनी जान तक गवानी पड़ती है। अतः आज भोजन में मिलावट एक ज्वलंत समस्या बन गई है।

डॉ0 श्रीमती वृन्दा सिंह के अनुसार– ''भोजन में न खाने योग्य पदार्थ तथा निम्न श्रेणी के भोज्य पदार्थों को मिलाना जिससे कि विक्रेता को अधिक आर्थिक लाभ हो परन्तु उपभोगकर्ता को आर्थिक नुकसान के साथ ही साथ स्वास्थ्य पर भी हानिकारक प्रभाव पड़े, भोजन में मिलावट कहलाता है।''

W.H.O. के अनुसार– ''खाद्य पदार्थों में मिलावट का आंशिक रूप से या पूरी तरह से स्वास्थ्य सामग्री या गलत तरीके से उत्पादित ताजा उत्पादों को प्रतिस्थापित करने के लिए प्रतिबंधित पदार्थ को जानबूझकर शामिल करने से समझा जा सकता है।''

डॉ0 देविना सहाय के अनुसार– ''मिलावट एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा खाद्य पदार्थों के गुण, पोषकता अथवा प्रकृति में परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन खाद्य पदार्थों में कोई अन्य मिलता–जुलता खाद्य पदार्थ मिलने अथवा खाद्य पदार्थ में से कोई तत्व निकालने के कारण होता है।''

भोज्य पदार्थों में अपमिश्रण सामान्यतः दो प्रकार से की जा सकती है जो कि निम्न प्रकार से है–

1. ऐच्छिक/जानबूझकर की गई मिलावट– इस विधि में विक्रेता अधिक लाभ कमाने के प्रयास में पूरी तैयारी के साथ जानबूझकर पूरी चालाकी से खाद्य पदार्थों में मिलावट करते हैं कि क्रेता एक बार में पहचान नहीं कर पाता है।

2. अनैच्छिक/अनायास मिलावट– इस प्रकार की मिलावट अपने आप या स्वतः हो जाते हैं जैसे– भोज्य पदार्थों में सूक्ष्म जीवों, जीवाणु, फफूँद, खमीर, कीड़े, घुन आदि हानिकारक जीवों का उत्पन्न हो जाना। इन सबके द्वारा भोजन की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता नष्ट हो जाती है।

उद्देश्य :

1. मिलावटी भोज्य पदार्थों का स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन।
2. मिलावटी भोज्य पदार्थों को रोकने के लिए सरकार द्वारा बनाये नियमों एवं कानून का अध्ययन।

* शोध छात्रा, गृह–विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
** लघु शोध निर्देशिका, गृह–विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भारत में भोज्य पदार्थों में अपमिश्रण पर हाल की घटनाओं पर रिपोर्ट–

1. इंडियन एक्सप्रेस की रिपोर्ट (जुलाई 2025) के अनुसार हाल में 'नकली पनीर' का मामला सामने आया यह 'एनालॉग पनीर' या 'सिंथेटिक पनीर' कहलाता है, जो वास्तविक पनीर जैसी बनावट और स्वाद देता है किन्तु इसमें डेयरी प्रोटीन की जगह गैर–डेयरी तत्व, स्टार्च और रसायन का प्रयोग करते हैं।
2. अप्रैल 2025 में नोएडा से रिपोर्ट बताती है कि 168 खाद्य नमूनों में से 47 पनीर और खोया उत्पाद मिलावटी पाए गये।
3. स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार 2021 से 2024 तक तमिलनाडु में 22% खाद्य नमूने, तेलंगाना में 15% और केरल में 13% नमूने असुरक्षित पाए गये।

ये आंकड़े इस बात का प्रमाण है कि भारत में खाद्य मिलावट कोई आकस्मिक समस्या नहीं बल्कि एक व्यवस्थित और गहरी जड़ें जमा चुकी प्रवृत्ति है।

खाद्य पदार्थों का अपमिश्रण से स्वास्थ्य पर दुष्परिणाम–

खाद्य मिलावट के प्रभाव तात्कालिक एवं दीर्घकालिक दोनों ही हो सकते हैं–

1. तात्कालिक प्रभाव– उल्टी, दस्त, फूड पॉइजनिंग, एलर्जी और त्वचा पर दाने, सिर दर्द, चक्कर आदि।

2. दीर्घकालिक प्रभाव– कैंसर जैसे रोग (कृत्रिम रंग और रसायनों से) गुर्दे, यकृत और हृदय पर प्रतिकूल असर, बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर प्रभाव, गर्भवती स्त्री एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव आदि।

भोज्य पदार्थों की गुणवत्ता हेतु मानक–

- भारत सरकार ने सन् 1954 में खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण की रोक हेतु कानून बनाये जिसे **खाद्य पदार्थ निषेध अधिनियम 1954 (PFA)** कहते हैं।
- मैसूर में **केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान संस्थान** की स्थापना की गई जो कि मिलावटी खाद्य पदार्थों का परीक्षण करता है।
- भोज्य पदार्थों की गुणवत्ता का मानक तैयार करने हेतु– खाद्य एवं कृषि संगठन तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन।
- फल उत्पाद आदेश मानक **(FPO)** फल एवं सब्जियों की गुणवत्ता, स्वच्छता, सफाई, पैकिंग, लेबल लगाना आदि का निरीक्षण करता है।

भारत में मुख्यतः दो ही मानक तैयार किये गये हैं–

1. एगमार्क
2. भारतीय मानक संस्थान प्रमाण चिन्ह (ISI)

सुझाव–

1. सरकारी नियमों एवं कानून को शक्ति के साथ लागू किया जाए।
2. उपभोक्ता को शिक्षित एवं जागरूक करना।
3. निर्धारित खाद्य गुणवत्ता और तय मानकों की सभी दशाओं का गहनता से अध्ययन करने के पश्चात् ही लाइसेंस जारी करना।
4. खाद्य नमूनों की जाँच के लिए देश में लैबोरेट्री की संख्या में वृद्धि की जाए।
5. खाद्य सामग्री खरीदते एवं उपयोग करते समय मानक चिह्नों का ध्यान रखना।

निष्कर्ष–

मिलावटी भोज्य पदार्थों का सेवन करने से हमारे स्वास्थ्य पर अत्यंत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इससे बचने के लिए हमें उच्च गुणवत्ता एवं प्रमाणित मानकों वाले भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए। हमें उपभोक्ताओं एवं गृहणियों को इसके बारे में जानकारी प्रदान करनी चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि हम लोग जिन भोज्य पदार्थों का सेवन करते हैं उनकी पौष्टिकता, संरक्षण, रखरखाव, निर्माण प्रक्रिया व परिष्करण से अनजान होते हैं। खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण एक गंभीर समस्या है, जिससे हर वर्ष लाखों लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है जैसे– कैंसर, यकृत रोग, लेथारिज्म, हृदय रोग व तंत्रिका संबंधी विकारों का कारण बनती हैं।

अतः भारत सरकार को भी चाहिए कि वैश्विक खाद्य मानकों को भारत में संचालित करे। यूरोप जैसे देशों की तर्ज पर कठोर कानून बनाकर कार्यवाही करे ताकि भविष्य में खाद्य मिलावट की घटनाएँ न हो जिससे मिलावटी खाद्य पदार्थ खाने से मानव समाज बच सके और उनका स्वास्थ्य सही रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सिंह, डॉ0 श्रीमती वृन्दा, आहार एवं पोषण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. सहाय, डॉ0 देवीना, आहार विज्ञान, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिकेशन
3. मिश्रा, श्रीमती उषा; अग्रवाल, डॉ0 श्रीमती अलका : आहार एवं पोषण विज्ञान, साहित्य प्रकाशन : आगरा
4. जे0पी0 रॉम्स (रिवाल्यूशन ऑफ मार्डन स्टूडेन्ट, 19 अगस्त 2025.
5. यादव, स्वाति, आई0जे0आर0पी0एस0 जर्नल, 2025
6. कुमारी डॉ0 राखी, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ होम साइंस 2020; 6 (2)– पृ0 452–454
7. वेदान्तु.काम.2025
8. कृषि सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार

ओ०डी०ओ०पी० योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का परिवर्तन

किरन यादव*
प्रो. (डॉ.) रामोद कुमार मौर्य**

सारांश

भदोही, उत्तर प्रदेश का एक छोटा सा जिला, अपनी हस्तनिर्मित कालीनों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यह उद्योग न केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक है, बल्कि लाखों कारीगरों और उनके परिवारों की आजीविका का आधार भी है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा शुरू की गई एक जनपद एक उत्पाद *(ODOP)* योजना ने भदोही के कालीन उद्योग को नई ऊंचाइयों पर ले जाने का प्रयास किया है। इस योजना के तहत कारीगरों को प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, और विपणन के अवसर प्रदान किए गए हैं, जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार की उम्मीद की जाती है। यह शोध पत्र *ODOP* योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करता है, जिसमें उनकी आय, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सम्मान जैसे पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

मुख्य बिंदु :ओ॰ डी॰ ओ॰ पी॰ योजना, कालीन उद्योग, सामाजिक प्रभाव , आर्थिक प्रभाव

परिचय (Introduction)

भारत की सांस्कृतिक और आर्थिक विरासत में हस्तशिल्प उद्योग का विशेष स्थान है और उत्तर प्रदेश का भदोही जिला अपनी हस्तनिर्मित कालीनों के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। भदोही, जिसे श्कालीन नगरी" के नाम से जाना जाता है, न केवल भारत का प्रमुख कालीन उत्पादन केंद्र है, बल्कि यह लाखों कारीगरों और उनके परिवारों की आजीविका का आधार भी है। यह उद्योग अपनी जटिल डिजाइनों, पारंपरिक बुनाई तकनीकों और उच्च गुणवत्ता के लिए जाना जाता है, जो इसे वैश्विक बाजार में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। भदोही के कालीन न केवल सौंदर्यपूर्ण हैं, बल्कि वे स्थानीय संस्कृति, इतिहास और कारीगरों की मेहनत का प्रतीक भी हैं। हालांकि, इस उद्योग से जुड़े कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति लंबे समय तक चुनौतियों से घिरी रही है, जिसमें कम आय, असुरक्षित रोजगार और सामाजिक हाशिए पर होना शामिल है। इस संदर्भ में, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा शुरू की गई एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना ने भदोही के कालीन उद्योग को पुनर्जन्म और कारीगरों के जीवन स्तर को सुधारने का एक महत्वाकांक्षी प्रयास किया है। यह शोध पत्र ODOP योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करता है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने 24 जनवरी 2018 को एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना की शुरुआत की, जिसका उद्देश्य प्रत्येक जिले के पारंपरिक उद्योग को बढ़ावा देना और स्थानीय कारीगरों को सशक्त बनाना है। ODOP योजना के तहत कारीगरों को प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और आधुनिक विपणन के अवसर प्रदान किए गए हैं, जैसे कि ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेलों में भागीदारी। इसके अतिरिक्त, इस योजना ने कारीगरों को तकनीकी उन्नयन, डिजाइन नवाचार और वैश्विक बाजार तक पहुंच प्रदान करने का प्रयास किया है। Zee News (2025) के अनुसार, ODOP योजना ने भदोही के कालीन उद्योग में नई जान फूंकी है, जिससे निर्यात में वृद्धि हुई और कारीगरों की आय में सुधार हुआ। हालांकि, वैश्विक चुनौतियां, जैसे कि अमेरिकी टैरिफ (50% अतिरिक्त टैरिफ), ने उद्योग के विकास को प्रभावित किया है, जिसका असर कारीगरों की आजीविका पर भी पड़ा है।

कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन न केवल उनके आर्थिक कल्याण, बल्कि सामाजिक सम्मान, शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन गुणवत्ता जैसे पहलुओं को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण है। भदोही के कारीगरों में अधिकांश ग्रामीण और कम आय वाले समुदायों से आते हैं, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से सामाजिक और आर्थिक हाशिए पर रखा गया है। पहले के अध्ययनों, जैसे कि Navbharat Times (2025) में उल्लेखित, ने बताया है कि कारीगरों को कम

* शोध–छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औराई, भदोही
** प्रोफेसर (शोध निर्देशक), समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औराई, भदोही

मजदूरी, अनियमित रोजगार और बिचौलियों पर अत्यधिक निर्भरता का सामना करना पड़ता है। ODOP योजना ने इन चुनौतियों को कम करने के लिए कई कदम उठाए हैं, जैसे कि 5565 कारीगरों को 707 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान करना और उन्हें ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म से जोड़ना। इन प्रयासों से कारीगरों की आय में वृद्धि और सामाजिक सम्मान में सुधार की उम्मीद की जाती है। हालांकि, यह भी देखा गया है कि योजना का लाभ सभी कारीगरों तक समान रूप से नहीं पहुंचा है, और कुछ समूह अभी भी सामाजिक भेदभाव और आर्थिक असुरक्षा का सामना कर रहे हैं।

इस शोध का उद्देश्य ODOP योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में आए परिवर्तनों का व्यवस्थित अध्ययन करना है। विशेष रूप से, यह अध्ययन कारीगरों की आय, रोजगार स्थिरता, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सम्मान जैसे पहलुओं पर केंद्रित है। शोध के प्रमुख प्रश्नों में शामिल हैं:

(1) ODOP योजना ने कारीगरों की आय और रोजगार स्थिरता को कैसे प्रभावित किया है?

(2) क्या इस योजना ने कारीगरों के सामाजिक सम्मान और जीवन गुणवत्ता में सुधार किया है?

(3) योजना के कार्यान्वयन में क्या चुनौतियां हैं और इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है?

इस अध्ययन में मिश्रित विधि दृष्टिकोण (Mixed Method Approach) का उपयोग किया गया है, जिसमें प्राथमिक डेटा (प्रश्नावली और साक्षात्कार) और द्वितीयक डेटा (सरकारी रिपोर्ट और समाचार लेख) का विश्लेषण शामिल है। भदोही के 200 कारीगरों को नमूने के रूप में चुना गया, जिसमें ODOP योजना के लाभार्थी और गैर-लाभार्थी दोनों शामिल हैं। इस अध्ययन का महत्व न केवल कारीगरों की स्थिति को समझने में है, बल्कि नीति निर्माताओं को ODOP योजना को और प्रभावी बनाने के लिए सुझाव प्रदान करने में भी है।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

भदोही कालीन उद्योग भारत के हस्तशिल्प क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो अपनी जटिल डिजाइनों और उच्च गुणवत्ता के लिए वैश्विक स्तर पर प्रसिद्ध है। यह उद्योग न केवल आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी भदोही की पहचान का प्रतीक है। Kumar और Sharma (2023) के अनुसार, भदोही का कालीन उद्योग लाखों कारीगरों, बुनकरों, और छोटे उद्यमियों को रोजगार प्रदान करता है, लेकिन कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति लंबे समय से चुनौतियों से घिरी रही है। इन चुनौतियों में कम मजदूरी, अनियमित रोजगार, बिचौलियों पर निर्भरता, और वैश्विक बाजार में बढ़ती प्रतिस्पर्धा शामिल है। Navbharat Times (2025) ने बताया कि अमेरिकी टैरिफ (50% अतिरिक्त टैरिफ) ने भदोही के 17000 करोड़ रुपये के कालीन कारोबार को प्रभावित किया है, जिसका सीधा असर कारीगरों की आय और रोजगार स्थिरता पर पड़ा है। इसके बावजूद, उत्तर प्रदेश सरकार की एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना ने इस उद्योग को पुनर्जनन और कारीगरों को सशक्त बनाने का प्रयास किया है। यह साहित्य समीक्षा ODOP योजना के प्रभाव, कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, और इस क्षेत्र में मौजूदा शोध अंतरालों का विश्लेषण करती है।

Zee News (2025) के अनुसार, ODOP योजना ने भदोही के कालीन उद्योग में नई जान फूंकी है, जिससे निर्यात में वृद्धि हुई और कारीगरों की आय में औसतन 20-30% की वृद्धि दर्ज की गई। Singh (2024) ने अपने अध्ययन में बताया कि ODOP योजना ने कारीगरों को ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म जैसे Amazon और Flipkart से जोड़कर बिचौलियों पर उनकी निर्भरता को कम किया है। इसके अतिरिक्त, सरकार ने आधुनिक बुनाई मशीनों और डिजाइन सॉफ्टवेयर के उपयोग को प्रोत्साहित किया है, जिससे उत्पादन में तेजी और गुणवत्ता में सुधार हुआ है।

कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर केंद्रित साहित्य ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि भदोही के कारीगर सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर रहे हैं। Sharma और Yadav (2021) के अध्ययन में पाया गया कि भदोही के अधिकांश कारीगर ग्रामीण और निम्न-आय समूहों से आते हैं, जिनकी औसत मासिक आय 8000-12000 रुपये के बीच है। इन कारीगरों को न केवल आर्थिक असुरक्षा का सामना करना पड़ता हैए बल्कि सामाजिक भेदभाव और शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुंच भी उनकी चुनौतियों का हिस्सा है। ODOP योजना ने इन समस्याओं को हल करने के लिए कई कदम उठाए हैं, जैसे कि 5565 कारीगरों को 707 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान करना। Medhaj News (n.d.) के अनुसार, इस वित्तीय सहायता ने कारीगरों को कच्चा माल खरीदने और अपने व्यवसाय का विस्तार करने में मदद की है। इसके अलावा, ODOP योजना के तहत आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों ने कारीगरों को नए डिजाइन और आधुनिक तकनीकों से परिचित कराया है, जिससे उनकी बाजार प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार हुआ है।

वैश्विक बाजार में भदोही कालीन उद्योग की स्थिति पर साहित्य ने मिश्रित निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। एक ओर, ODOP योजना ने भदोही के कालीनों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेलों में प्रदर्शित करके उनकी वैश्विक पहुंच को बढ़ाया है। Government of Uttar Pradesh (2022) की एक रिपोर्ट के अनुसार, ODOP योजना के तहत भदोही के

कालीनों को विश्व आर्थिक मंच (2023) जैसे मंचों पर प्रदर्शित किया गयाए जिससे उनकी मांग में वृद्धि हुई। दूसरी ओर, वैश्विक चुनौतियां, जैसे कि अमेरिकी टैरिफ और अन्य देशों (जैसे तुर्की और ईरान) से प्रतिस्पर्धा, ने उद्योग के विकास को बाधित किया है। The Economic Times (2024) ने बताया कि 50% अमेरिकी टैरिफ के कारण भदोही के कालीन निर्यातकों को अमेरिकी आयातकों का नुकसान हुआ, जिसका असर कारीगरों की आजीविका पर पड़ा। इसके अलावा, साहित्य में यह भी उल्लेख किया गया है कि कारीगरों को आधुनिक डिजाइनों और पर्यावरण-अनुकूल सामग्रियों की मांग को पूरा करने के लिए और प्रशिक्षण की आवश्यकता है और यह दर्शाता है कि ODOP योजना के तहत तकनीकी उन्नयन और विपणन रणनीतियों को और मजबूत करने की जरूरत है।

हालांकि, मौजूदा साहित्य में कुछ महत्वपूर्ण अंतराल हैं जो इस शोध को और प्रासंगिक बनाते हैं। पहला, अधिकांश अध्ययन ODOP योजना के आर्थिक प्रभावों, जैसे कि आय और निर्यात में वृद्धि, पर केंद्रित हैं, लेकिन सामाजिक परिवर्तनों, जैसे कि कारीगरों के सामाजिक सम्मान, आत्मविश्वास, और समुदाय में उनकी स्थिति, पर कम ध्यान दिया गया है। दूसरा, महिला कारीगरों और अन्य हाशिए पर रहने वाले समूहों पर ODOP योजना के प्रभाव का विश्लेषण सीमित है। तीसरा, वैश्विक टैरिफ और प्रतिस्पर्धा जैसी बाहरी चुनौतियों के दीर्घकालिक प्रभावों पर शोध की कमी है। यह शोध पत्र इन अंतरालों को भरने का प्रयास करता हैए जिसमें मिश्रित विधि दृष्टिकोण का उपयोग करके कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का समग्र विश्लेषण किया गया है।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

इस शोध का उद्देश्य एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में आए परिवर्तनों का व्यवस्थित अध्ययन करना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, मिश्रित विधि दृष्टिकोण (Mixed Method Approach) अपनाया गया है, जिसमें मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों विधियों का उपयोग किया गया है। यह दृष्टिकोण शोध प्रश्नों की जटिलता को संबोधित करने के लिए उपयुक्त है, क्योंकि यह आर्थिक प्रभावों (जैसे आय और रोजगार स्थिरता) को संख्यात्मक रूप से मापने और सामाजिक परिवर्तनों (जैसे सामाजिक सम्मान और आत्मविश्वास) को गुणात्मक रूप से समझने की अनुमति देता है। Creswell (2014) के अनुसार, मिश्रित विधि दृष्टिकोण जटिल सामाजिक-आर्थिक मुद्दों के अध्ययन में व्यापक और गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। शोध डिज़ाइन में तीन प्रमुख शोध प्रश्न शामिल हैं:

(1) ODOP योजना ने कारीगरों की आय और रोजगार स्थिरता को कैसे प्रभावित किया है?

(2) क्या इस योजना ने कारीगरों के सामाजिक सम्मान और जीवन गुणवत्ता में सुधार किया है?

(3) योजना के कार्यान्वयन में क्या चुनौतियां हैं, और इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है?

इस अनुभाग में नमूना चयन, डेटा संग्रह विधियां, डेटा विश्लेषण तकनीकें, और नैतिक विचारों का वर्णन किया गया है।

नमूना चयन: इस शोध के लिए भदोही जिले के कालीन उद्योग से जुड़े 200 कारीगरों को नमूने के रूप में चुना गया। नमूना चयन के लिए Stratified random sampling तकनीक का उपयोग किया गया, ताकि ODOP योजना के लाभार्थी और गैर-लाभार्थी दोनों समूहों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो। नमूने में 100 कारीगर ODOP योजना के लाभार्थी हैं, जिन्हें प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, या विपणन अवसर प्राप्त हुए हैं, और 100 कारीगर गैर-लाभार्थी हैं, जो इस योजना से प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त नहीं कर पाए। नमूने में लैंगिक और सामाजिक विविधता को शामिल करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया, जिसमें 40% महिला कारीगर और 60% पुरुष कारीगर शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, नमूने में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के कारीगरों का समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया। नमूना आकार का चयन Cochran (1977) के नमूना गणना सूत्र के आधार पर किया गया, जिसमें 95% आत्मविश्वास स्तर और 5% त्रुटि मार्जिन को ध्यान में रखा गया। नमूना चयन में भदोही के प्रमुख कालीन उत्पादन क्षेत्रों, जैसे औराई, भदोही शहर, और गोपिगंज, को शामिल किया गया जो उद्योग का केंद्र हैं।

डेटा संग्रह: इस शोध में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के डेटा का उपयोग किया गया। प्राथमिक डेटा के लिए तीन मुख्य तकनीकों का उपयोग किया गया:

(1) संरचित प्रश्नावली

(2) अर्ध-संरचित साक्षात्कार

(3) फोकस ग्रुप चर्चा।

संरचित प्रश्नावली में 30 प्रश्न शामिल थे, जो कारीगरों की आय, रोजगार स्थिरता, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सम्मान, और ODOP योजना के प्रभाव से संबंधित थे। प्रश्नावली को हिंदी में तैयार किया गया और इसे भदोही के

स्थानीय संदर्भ के अनुकूल बनाया गया। प्रश्नावली की विश्वसनीयता को Cronbach's Alpha ($\alpha = 0.82$) के माध्यम से जांचा गया। अर्ध-संरचित साक्षात्कार 20 कारीगरों (10 लाभार्थी और 10 गैर-लाभार्थी) के साथ आयोजित किए गए, ताकि उनकी व्यक्तिगत कहानियों और अनुभवों को गहराई से समझा जा सके। इसके अतिरिक्त, दो फोकस ग्रुप चर्चाएं (प्रत्येक में 8-10 कारीगर) आयोजित की गईं, जिनमें ODOP योजना की चुनौतियां और अवसरों पर चर्चा की गई। द्वितीयक डेटा के लिए, ODOP की आधिकारिक वेबसाइट, सरकारी रिपोर्ट (Government of Uttar Pradesh, 2022), और समाचार लेख (Zee News, 2025; Navbharat Times, 2025) का उपयोग किया गया।

डेटा विश्लेषण और नैतिक विचार: मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण SPSS सॉफ्टवेयर का उपयोग करके किया गया। आय और रोजगार स्थिरता जैसे चरों की तुलना के लिए t-test और ANOVA का उपयोग किया गया, ताकि ODOP लाभार्थी और गैर-लाभार्थी समूहों के बीच सांख्यिकीय अंतर का पता लगाया जा सके। गुणात्मक डेटा, जैसे साक्षात्कार और फोकस ग्रुप चर्चाओं से प्राप्त जानकारी, का विश्लेषण Braun और Clarke (2006) की थीमैटिक विश्लेषण पद्धति के आधार पर किया गया। इस प्रक्रिया में डेटा को कोड किया गया और प्रमुख थीम्स, जैसे आर्थिक सशक्तिकरण, सामाजिक सम्मान, और तकनीकी बाधाएं, की पहचान की गई। नैतिक विचारों को सुनिश्चित करने के लिए, सभी प्रतिभागियों से सूचित सहमति (informed consent) प्राप्त की गई, और उनकी गोपनीयता और डेटा की सुरक्षा को प्राथमिकता दी गई।

विश्लेषण और परिणाम (Analysis and Findings)

इस शोध का उद्देश्य एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करना है। इसके लिए मिश्रित विधि दृष्टिकोण (Mixed Method Approach) का उपयोग किया गया, जिसमें मात्रात्मक डेटा (प्रश्नावली से प्राप्त) और गुणात्मक डेटा (साक्षात्कार और फोकस ग्रुप चर्चाओं से प्राप्त) का विश्लेषण शामिल है।

मात्रात्मक विश्लेषण: आर्थिक प्रभाव

प्रश्नावली से प्राप्त डेटा के आधार पर, ODOP योजना के लाभार्थी और गैर-लाभार्थी कारीगरों की औसत मासिक आय की तुलना की गई। t-test के परिणामों से पता चला कि ODOP लाभार्थियों की औसत मासिक आय 15,000 रुपये थी, जबकि गैर-लाभार्थियों की आय 11,500 रुपये थी, जो सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर दर्शाता है ($t = 3.24$, $p < 0.05$)। Medhaj News (n.d.) के अनुसार, ODOP योजना के तहत 5565 कारीगरों को 707 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया गया, जिससे कारीगरों को कच्चा माल खरीदने और व्यवसाय विस्तार में मदद मिली। इस वित्तीय सहायता ने लाभार्थियों की आय में औसतन 20-30% की वृद्धि की, जैसा कि Zee News (2025) ने भी उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त, ODOP योजना के तहत ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म (जैसे Amazon और Flipkart) से जुड़ने से बिचौलियों पर निर्भरता कम हुई, जिससे 68% लाभार्थियों ने बताया कि उनकी आय में स्थिरता बढ़ी है। हालांकि, गैर-लाभार्थी कारीगरों में केवल 32% ने आय स्थिरता की सूचना दी। नीचे दिया गया बार चार्ट ODOP लाभार्थी और गैर-लाभार्थी कारीगरों की औसत मासिक आय की तुलना दर्शाता है।

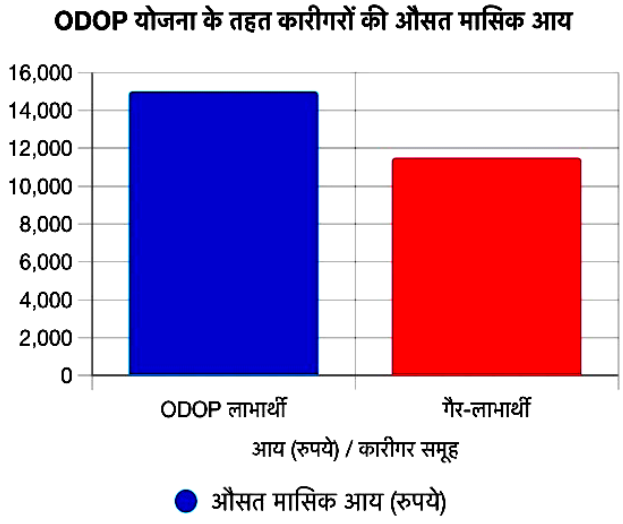

मात्रात्मक विश्लेषण: रोजगार स्थिरता

रोजगार स्थिरता के संदर्भ में, प्रश्नावली से पता चला कि ODOP लाभार्थियों में 72% ने बताया कि उन्हें सप्ताह में औसतन 5-6 दिन काम मिलता है, जबकि गैर-लाभार्थियों में यह आंकड़ा केवल 45% था। Navbharat Times (2025) ने उल्लेख किया कि अमेरिकी टैरिफ (50% अतिरिक्त टैरिफ) के कारण नए ऑर्डर में कमी आई, जिससे कई गैर-लाभार्थी कारीगरों को सप्ताह में केवल 3-4 दिन काम मिल रहा है। ANOVA विश्लेषण से पता चला कि ODOP लाभार्थियों और गैर-लाभार्थियों के बीच कार्यदिवसों की संख्या में महत्वपूर्ण अंतर है ($F = 5.67$, $p < 0.01$)। इसके अलावा, ODOP योजना के तहत प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले 85% कारीगरों ने बताया कि आधुनिक डिजाइनों और तकनीकों के उपयोग से उनकी उत्पादकता बढ़ी है। हालांकि, प्रशिक्षण तक पहुंच में असमानता देखी गई, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और महिला कारीगरों के बीच, जहां केवल 30% महिलाओं ने प्रशिक्षण प्राप्त करने की सूचना दी। नीचे दिया गया पाई चार्ट ODOP लाभार्थियों के बीच प्रशिक्षण प्राप्त करने की स्थिति को दर्शाता है।

चार्ट **2:** प्रशिक्षण की स्थिति

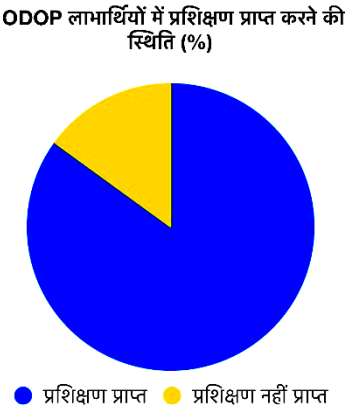

गुणात्मक विश्लेषण**:** सामाजिक प्रभाव

साक्षात्कार और फोकस ग्रुप चर्चाओं से प्राप्त गुणात्मक डेटा का विश्लेषण Braun और Clarke (2006) की थीमैटिक विश्लेषण पद्धति के आधार पर किया गया। तीन प्रमुख थीम्स उभरीं:

(1) आर्थिक सशक्तिकरण
(2) सामाजिक सम्मान में वृद्धि
(3) तकनीकी और सामाजिक बाधाएं।

पहली थीम, आर्थिक सशक्तिकरण, में कारीगरों ने बताया कि ODOP योजना के तहत प्राप्त वित्तीय सहायता और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म से जुड़ने से उनकी आय और आत्मनिर्भरता बढ़ी है। एक लाभार्थी कारीगर ने कहा, श्पहले हमें बिचौलियों को 40% लाभ देना पड़ता था, लेकिन अब हम सीधे ऑनलाइन बेचते हैं।

दूसरी थीम, सामाजिक सम्मानए में 65% लाभार्थियों ने बताया कि प्रशिक्षण और व्यापार मेलों में भागीदारी ने उनके समुदाय में सम्मान बढ़ाया है। हालांकि, कुछ कारीगरों, विशेष रूप से महिला कारीगरों, ने सामाजिक भेदभाव की शिकायत की। एक महिला कारीगर ने कहा, श्प्रशिक्षण में पुरुषों को प्राथमिकता दी जाती है, हमें कम अवसर मिलते हैं"

चुनौतियां और असमानताएं

विश्लेषण से पता चला कि ODOP योजना के बावजूद, कई चुनौतियां बनी हुई हैं। पहली प्रमुख चुनौती वैश्विक टैरिफ है, जिसने कालीन निर्यात को प्रभावित किया है। The Economic Times (2024) के अनुसार, अमेरिकी टैरिफ के कारण भदोही के कालीन निर्यात में 15% की कमी आई, जिसका असर कारीगरों की आय और रोजगार पर पड़ा। दूसरी चुनौती प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता तक पहुंच में असमानता है। ग्रामीण क्षेत्रों के 45% कारीगरों ने बताया कि उन्हें प्रशिक्षण या ऋण के बारे में जानकारी नहीं थी। इसके अलावा, महिला कारीगरों को पुरुषों की तुलना में कम अवसर मिले, जैसा कि Singh (2024) ने अपने अध्ययन में उल्लेख किया। नीचे दिया गया बार चार्ट प्रशिक्षण तक पहुंच में क्षेत्रीय असमानता को दर्शाता है।

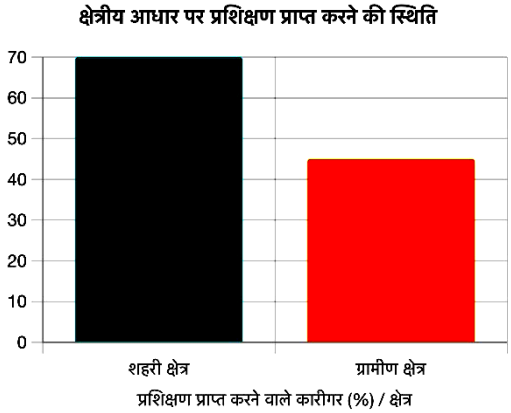

सारांश और निहितार्थ

विश्लेषण से पता चलता है कि ODOP योजना ने भदोही के कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। आय में 20-30% की वृद्धि, रोजगार स्थिरता में सुधार, और सामाजिक सम्मान में वृद्धि इसकी प्रमुख उपलब्धियां हैं। हालांकि, वैश्विक टैरिफ, प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता तक पहुंच में असमानता, और सामाजिक भेदभाव जैसी चुनौतियां बनी हुई हैं।

चर्चा (Discussion)

इस शोध के परिणामों से पता चलता है कि एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना ने भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव डाला है, लेकिन इसकी पहुंच और प्रभावशीलता में कुछ महत्वपूर्ण सीमाएं भी हैं। मात्रात्मक विश्लेषण से पता चला कि ODOP लाभार्थी कारीगरों की औसत मासिक आय में 20-30% की वृद्धि हुई है (15,000 रुपये बनाम गैर-लाभार्थियों की 11,500 रुपये), और रोजगार स्थिरता में सुधार हुआ है, जिसमें 72% लाभार्थियों को सप्ताह में 5-6 दिन काम मिला (Navbharat Times, 2025; Zee News, 2025)। गुणात्मक डेटा ने तीन प्रमुख थीम्स को उजागर किया: आर्थिक सशक्तिकरण, सामाजिक सम्मान में वृद्धि, और तकनीकी व सामाजिक बाधाएं।

आर्थिक सशक्तिकरण और इसकी सीमाएं: ODOP योजना ने कारीगरों की आय और रोजगार स्थिरता में उल्लेखनीय सुधार किया है। वित्तीय सहायता (5565 कारीगरों को 707 करोड़ रुपये का ऋण) और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म से जुड़ने के अवसरों ने बिचौलियों पर निर्भरता को कम किया, जिससे कारीगरों की आय में स्थिरता और वृद्धि हुई (Medhaj News, n.d.)। यह परिणाम Gupta और Verma (2022) के अध्ययन के अनुरूप है, जिन्होंने पाया कि ODOP योजना ने उत्तर प्रदेश के हस्तशिल्प उद्योगों में आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है।

सामाजिक सम्मान और समावेशिता: गुणात्मक विश्लेषण से पता चला कि ODOP योजना ने कारीगरों के सामाजिक सम्मान और आत्मविश्वास में वृद्धि की है, विशेष रूप से उन कारीगरों में जो व्यापार मेलों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग ले चुके हैं। 65% लाभार्थियों ने बताया कि उनके समुदाय में उनकी स्थिति में सुधार हुआ है, जो Sharma और Yadav (2021) के अध्ययन के अनुरूप है, जिन्होंने हस्तशिल्प उद्योग में सामाजिक सशक्तिकरण की भूमिका पर जोर दिया। हालांकि, सामाजिक भेदभाव, विशेष रूप से लैंगिक और जातिगत आधार पर, अभी भी एक चुनौती है। महिला कारीगरों, जो नमूने का 40% थीं, ने बताया कि प्रशिक्षण और अवसरों में पुरुषों को प्राथमिकता दी जाती है (Kumar, 2023)। यह असमानता ODOP योजना की समावेशिता पर सवाल उठाती है। उदाहरण के लिए, एक महिला कारीगर ने साक्षात्कार में कहा, श्हमें प्रशिक्षण के लिए बुलाया जाता है, लेकिन पुरुषों को पहले मौका मिलता है।" इस समस्या को हल करने के लिए, सरकार को लैंगिक-संवेदनशील प्रशिक्षण कार्यक्रम और सामाजिक जागरूकता अभियान शुरू करने चाहिए, ताकि सामाजिक भेदभाव को कम किया जा सके और सभी कारीगरों को समान अवसर मिलें।

तकनीकी और नीतिगत बाधाएं, परिणामों से यह भी पता चला कि तकनीकी उन्नयन और डिजिटल प्लेटफॉर्म तक पहुंच में कमी ODOP योजना की प्रभावशीलता को सीमित कर रही है। केवल 30% महिला कारीगरों और 45% ग्रामीण कारीगरों ने प्रशिक्षण प्राप्त करने की सूचना दी, जो तकनीकी बाधनाओं और जानकारी के अभाव को दर्शाता है।

यह निष्कर्ष Kumar (2023) के अध्ययन से मेल खाता है, जिन्होंने तर्क दिया कि तकनीकी प्रशिक्षण तक पहुंच में लैंगिक और क्षेत्रीय असमानताएं मौजूद हैं। इसके अतिरिकित, वैश्विक टैरिफ और अन्य देशों (जैसे तुर्की और ईरान) से प्रतिस्पर्धा ने भदोही के कालीन उद्योग को प्रभावित किया है। The Economic Times (2024) ने बताया कि टैरिफ के कारण कारीगरों को कम ऑर्डर मिल रहे हैं, जिससे उनकी आय और रोजगार स्थिरता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए, सरकार को निर्यात प्रोत्साहन योजनाओं को बढ़ाना चाहिए, जैसे कि टैरिफ छूट या वैकल्पिक बाजार विकास। साथ ही, तकनीकी प्रशिक्षण को ग्रामीण और महिला कारीगरों तक पहुंचाने के लिए स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जाने चाहिए।

निष्कर्ष और सुझाव (Conclusion and Recommendations)

प्रमुख निष्कर्ष	नीतिगत सुझाव
आय में 20-30% वृद्धि, लेकिन ग्रामीण कारीगरों तक सीमित पहुंच	ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सहायता और प्रशिक्षण केंद्र स्थापित करें।
रोजगार स्थिरता में सुधार (72% लाभार्थियों को 5-6 दिन काम)	वैश्विक टैरिफ के प्रभाव को कम करने के लिए निर्यात प्रोत्साहन योजनाएं शुरू करें।
सामाजिक सम्मान में वृद्धि, लेकिन लैंगिक भेदभाव बरकरार	लैंगिक-संवेदनशील प्रशिक्षण और सामाजिक जागरूकता अभियान चलाएं।
तकनीकी प्रशिक्षण तक पहुंच में असमानता (30% महिलाएं, 45% ग्रामीण)	स्थानीय स्तर पर तकनीकी प्रशिक्षण केंद्र स्थापित करें।

इस शोध ने एक जनपद एक उत्पाद (ODOP) योजना के तहत भदोही कालीन उद्योग में कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में आए रिवर्तनों का गहन विश्लेषण किया है। शोध के परिणामों से पता चलता है कि ODOP योजना ने कारीगरों की आय, रोजगार स्थिरता, और सामाजिक सम्मान में सकारात्मक बदलाव लाए हैं। मात्रात्मक विश्लेषण से पता चला कि ODOP लाभार्थी कारीगरों की औसत मासिक आय में 20-30% की वृद्धि हुई (15,000 रुपये बनाम गैर-लाभार्थियों की 11,500 रुपये), और 72% लाभार्थियों को सप्ताह में 5-6 दिन काम मिला (Zee News, 2025; Medhaj News, n.d.)। गुणात्मक विश्लेषण ने आर्थिक सशक्तिकरण, सामाजिक सम्मान में वृद्धि, और तकनीकी व सामाजिक बाधाओं जैसी थीम्स को उजागर किया। हालांकि, वैश्विक टैरिफ (जैसे 50% अमेरिकी टैरिफ), प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता तक असमान पहुंच, और सामाजिक भेदभाव जैसी चुनौतियां बनी हुई हैं (Navbharat Times, 2025; The Economic Times, 2024)। यह निष्कर्ष अनुभाग शोध के प्रमुख निष्कर्षों का सारांश प्रस्तुत करता है, योजना की सीमाओं पर चर्चा करता है, और भविष्य के लिए नीतिगत सुझाव प्रदान करता है।

नीतिगत सुझाव: इस शोध के आधार पर, निम्नलिखित सुझाव नीति निर्माताओं और हितधारकों के लिए प्रस्तुत किए गए हैं:

1. **समावेशी पहुंच सुनिश्चित करना:** ODOP योजना को ग्रामीण और महिला कारीगरों तक पहुंचाने के लिए स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण केंद्र और जागरूकता अभियान शुरू किए जाएं। विशेष रूप से, लैंगिक-संवेदनशील प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किए जाएं, ताकि महिला कारीगरों को समान अवसर मिलें (Kumar, 2023)।
2. **वैश्विक टैरिफ का सामना:** अमेरिकी टैरिफ जैसे वैश्विक प्रतिबंधों के प्रभाव को कम करने के लिए, सरकार को यूरोप, मध्य पूर्व, और दक्षिण पूर्व एशिया जैसे वैकल्पिक बाजारों में कालीन निर्यात को बढ़ावा देना चाहिए। निर्यात प्रोत्साहन योजनाएं, जैसे टैरिफ छूट या सब्सिडी, लागू की जानी चाहिए (The Economic Times, 2024)।

3. **सामाजिक भेदभाव को कम करना:** सामाजिक और लैंगिक भेदभाव को कम करने के लिए सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रम और कार्यशालाएं आयोजित की जाएं, जो कारीगरों के सामाजिक सम्मान को बढ़ाएं (Sharma & Yadav, 2021)।
4. **तकनीकी उन्नयन:** ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जाएं, और कारीगरों को आधुनिक बुनाई मशीनों और डिजिटल मार्केटिंग उपकरणों तक पहुंच प्रदान की जाए।
5. **दीर्घकालिक प्रभाव का अध्ययन:** भविष्य के शोध में ODOP योजना के दीर्घकालिक प्रभावों का आकलन और अन्य ODOP जिलों के साथ तुलनात्मक अध्ययन शामिल किया जाए।

नीचे दी गई तालिका इन नीतिगत सुझावों को संक्षेप में प्रस्तुत करती है, जो शोध के निष्कर्षों पर आधारित हैं।

नीतिगत सुझाव	विवरण	उम्मीदित परिणाम
समावेशी पहुंच	ग्रामीण और महिला कारीगरों के लिए प्रशिक्षण केंद्र और जागरूकता अभियान	अधिक कारीगरों तक योजना का लाभ, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों तक
वैश्विक टैरिफ का सामना	वैकल्पिक बाजारों में निर्यात और टैरिफ छूट योजनाएं	कालीन निर्यात में वृद्धि और कारीगरों की आय स्थिरता
सामाजिक भेदभाव में कमी	सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रम और कार्यशालाएं	सामाजिक सम्मान और समावेशिता में वृद्धि
तकनीकी उन्नयन	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण केंद्र और डिजिटल उपकरणों तक पहुंच	उत्पादकता और बाजार प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार

शोध की सीमाएं और भविष्य के दिशा-निर्देश: इस शोध की कुछ सीमाएं हैं जो भविष्य के अध्ययनों के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करती हैं।

पहला, नमूना आकार (200 कारीगर) भदोही के 2 लाख कारीगरों की जनसंख्या का केवल एक छोटा हिस्सा है, जिसके कारण परिणामों को सामान्यीकरण करने में सीमाएं हैं।

दूसरा, यह शोध ODOP योजना के अल्पकालिक प्रभावों पर केंद्रित है, और दीर्घकालिक प्रभावों का आकलन नहीं किया गया।

तीसरा, अन्य ODOP जिलों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण की कमी है। भविष्य के शोध में बड़े और अधिक विविध नमूने, दीर्घकालिक प्रभावों का अध्ययन, और अन्य जिलों (जैसे लखनऊ की चिकनकारी या मुरादाबाद की पीतल कला) के साथ तुलना शामिल की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, लैंगिक और सामाजिक असमानताओं पर केंद्रित गहन अध्ययन ODOP योजना को और समावेशी बनाने में मदद कर सकते हैं। यह शोध नीति निर्माताओं, उद्योग हितधारकों, और शोधकर्ताओं के लिए एक आधार प्रदान करता है, ताकि भदोही कालीन उद्योग और इसके कारीगरों को सशक्त बनाया जा सके।

संदर्भ सूची (REFRENCES)

1. *Abid, M. (2014). Impact of economic slowdown on carpet business in India with special reference to Bhadohi, UP. ResearchGate. https://www.researchgate.net/publication/269691937_Impact_of_Economic_Slowdown_on_Carpet_Business_in_India_with_special_reference_to_Bhadohi_UP*
2. *Asian Academic Research Associates. (2024). Carpet industry of Bhadohi: A definition of cultural identity. AARF. https://www.aarf.asia/current/2024/Dec/SjrjwJDiA4DZdB8.pdf*
3. *Braun, V., & Clarke, V. (2006). Using thematic analysis in psychology. Qualitative Research in Psychology, 3(2), 77–101. https://doi.org/10.1191/1478088706qp063oa*
4. *Cochran, W. G. (1977). Sampling techniques (3rd ed.). John Wiley & Sons.*
5. *Creswell, J. W. (2014). Research design: Qualitative, quantitative, and mixed methods approaches (4th ed.). Sage Publications.*
6. *Government of Uttar Pradesh. (2022). Annual Report on One District One Product Scheme. Department of MSME, Government of Uttar Pradesh.*

7. *Indian Institute of Carpet Technology. (n.d.). Handmade carpets: The potential for socio-economic growth. IICT. https://www.iict.ac.in/dpr/2-PATENTCONTENT.pdf*
8. *International Journal of Creative Research Thoughts. (2022). ODOP as a potential game changer for holistic socioeconomic. IJCRT. https://ijcrt.org/articles/IJCRT2211025.pdf*
9. *International Journal of Scientific Research & Development. (n.d.). Socio-economic status and health risk among the carpet workers. IJSRD. https://www.ijsrd.com/articles/IJSRDV8I110105.pdf*
10. *Journal of Management in Practice. (2022). Entrepreneurial development of artisan in ODOP in Uttar Pradesh. AJMESC. http://www.ajmesc.com/index.php/ajmesc/article/view/46*
11. *Kumar, S. (2014). Impact of economic slowdown on carpet business in India with special reference to Bhadohi, UP. SSRN. https://papers.ssrn.com/sol3/Delivery.cfm/SSRN_ID2536862_code1415755.pdf?abstractid=2536862&mirid=1*
12. *Medhaj News. (n.d.). ओडीओपी योजना के तहत 5565 कारीगरों को 707 करोड़ रुपये का ऋण. https://www.medhajnews.in*
13. *Navbharat Times. (2025, February 10). अमेरिकी टैरिफ की मार: भदोही में कालीन उद्योग के 17000 करोड़ के कारोबार पर संकट. https://navbharattimes.indiatimes.com*
14. *Sharma, P., & Yadav, R. (2021). Socio-economic status of artisans in the Bhadohi carpet industry. Indian Journal of Social Research, 15(4), 67-80.*
15. *Shodh Sanchayan Humanities, Social Sciences & Indian Heritage. (2023). A study of women workers in the carpet industry of Bhadohi district. SHISRRJ. https://shisrrj.com/paper/SHISRRJ236630.pdf*
16. *Singh, A. K. (2024). Impact of ODOP scheme on traditional industries in Uttar Pradesh. Economic and Political Weekly, 59(15), 22-30.*
17. *The Economic Times. (2024, March 15). Indian carpet industry urges govt for special bailout package amid US tariff war. https://economictimes.indiatimes.com*
18. *Wajahat, S., & Wani, M. A. (2022). Digital analysis of the transformation of institutions. Sage Journals. https://journals.sagepub.com/doi/10.1177/09708464221096903*
19. *Zee News. (2025, January 15). देश-दुनिया में भदोही की कालीन की धूम, ODOP योजना ने कालीन उद्योग में फूंकी नई जान. https://zeenews.india.com*

बौद्ध साहित्य में वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

याचना गुप्ता*

समकालीन जगत तीव्र पर्यावरणीय चुनौतियों–जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की कमी, प्रदूषण और जैवविविधता ह्रास का सामना कर रहा है। पर्यावरण संरक्षण केवल वैज्ञानिक या तकनीकी चुनौती नहीं, बल्कि नैतिक और मूल्यगत आयाम भी है। बौद्ध साहित्य में पर्यावरणीय संचेतना का एक गहन व व्यापक दर्शन मिलता है, जिसमें जीव–जगत के परस्पर संबंध, करुणा, संयम, अहिंसा, और संतुलित उपभोग जैसी अवधारणाएँ प्रमुख हैं।

मानवकारित एवं पोषित कार्यों ने विश्व के पर्यावरण में अभूतपूर्व असंतुलन किया है। आज पर्यावरण एक अंतरराष्ट्रीय समस्या बन गई है। नैसर्गिक आनन्द की अनुभूति कराने वाली प्रकृति आज कठिन विभीषिकाओं को जन्म दे रही है। सृष्टि में बढ़ते हुए तापमान, समुद्रतल की बढ़ती ऊंचाई, मरूस्थलीकरण, पशु–पक्षियों की प्रजातियों का विलुप्त होना तथा हिमखण्डों का गलना कुछ ऐसे प्राकृतिक कारक हैं जो विश्व की स्थिरता पर ही प्रश्न चिह्न लगाते हैं।

पर्यावरण संकट 21वीं शताब्दी में वैश्विक मानवीय चुनौतियों में अग्रणी है। मनुष्य के भौतिकवादी दृष्टिकोण और असंतुलित विकास पद्धति ने पृथ्वी की प्राकृतिक प्रणालियों को अस्थिर कर दिया है। ऐसे समय में बौद्ध साहित्य प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संतुलन और सह–अस्तित्व का एक उपयोगी मार्ग प्रस्तुत करता है। बुद्ध के दर्शन में प्रकृति को न तो मानव से अलग माना गया है और न ही मनुष्य को प्रकृति का स्वामी, बल्कि दोनों को परस्पर निर्भर एवं सह–जीवी रूप में देखा गया है। इसलिए बौद्ध वांग्मय में निहित दर्शन आज के पर्यावरण संकट को समझने और समाधान खोजने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होते हैं।

मानव सभ्यता के जीवनयात्रा के साथ आधुनिक काल में विज्ञान के विनाशकारी, चिन्तन के स्वार्थी और शिक्षा के अर्थोन्मुख हो जाने के कारण मनुष्य ने प्रकृति को अपने अधीन बनाने और उसके अनियंत्रित दोहन की प्रक्रिया शुरू कर दिया। अंधाधुंध औद्योगीकरण व विकास के तेज कदमों ने सीमेंट व कंकरीट के जंगल खड़े कर दिए। वनों की कटाई से सूखा, अकाल, अतिवृष्टि, बाढ़, ओलावृष्टि, तूफान, वैश्विक तापन, दूषित वायु व मृदाक्षरण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो गई है। पहाड़ों पर होने वाली कटाई का परिणाम भू–स्खलन, चट्टान खिसकने और बादल फटने जैसी घटनाओं के रूप में सामने आ रहा है। औद्योगिक क्रांति एवं मशीनीकरण के फलस्वरूप कल–कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों एवं जहरीली गैसों से ओजोन परत के क्षरण एवं वैश्विक तापन की समस्या ने पर्यावरण संकट को और गहरा कर दिया है। इसके कारण हिम–क्षेत्रों का पिघलना व समुद्री जलस्तर में निरन्तर वृद्धि जारी है, जिससे प्रशान्त महासागर व हिन्द महासागर के द्वीपीय राष्ट्रों के जलमग्न होने की आशंका है। तापन के कारण अनेक वनस्पतियों व जीव–जन्तुओं के विनाश से पर्यावरणीय जैव–विविधता खतरे में है।

इन विकराल स्थितियों से पर्यावरण की संरक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय सहमति बनाने व उपाय निर्धारित करने हेतु स्टाकहोम (1972), मांट्रियल (1987) रियो–डि–जेनेरियो (1992) व क्योटो (1997) में सम्मेलन आयोजित किए गये। पर्यावरण की सुरक्षा हेतु निष्कर्ष रूप में निर्वहनीय या सतत विकास की अवधारणा दी गई। किन्तु अभी तक इस दिशा में कोई ठोस पहल कारगार नंहीं हो सका है। हमारी विकास की अवधारणा यह बताती है कि वह समाज अधिक विकसित है जो प्रकृति का अधिक इस्तेमाल या दोहन करते है। यह उपभोगवादी संस्कृति ही पर्यावरण समस्या के मूल में है।

वर्तमान भीषण पर्यावरणीय संकट एवं इससे निदान के सापेक्ष हमें मूल भारतीय संस्कृति व जीवन पद्धति समाधान के रूप में दिखाई देती है। दुनियाभर में यह ऐसी अनूठी संस्कृति है, जिसकी मान्यता है कि 'उतना ही लो जितने की जरूरत हो'। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा''[1] का आदर्श विस्मरण कर आज मनुष्य प्रकृति के दोहन में लगा हुआ है।

* शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

बौद्ध वांग्मय का अनुशीलन करें तो हमें मनुष्य की प्रकृति के साथ सहज व स्वभाविक तादात्म्य दिखता है। बौद्ध साहित्य में पर्यावरणीय संचेतना का आधार प्रतीत्यसमुत्पाद, मध्यमार्ग, और अहिंसा जैसे प्रमुख सिद्धांतों व विचारों में निहित है। प्रतीत्यसमुत्पाद यह स्पष्ट करता है कि संसार की सभी वस्तुएँ एक–दूसरे पर निर्भर हैं; यदि प्रकृति की किसी कड़ी में व्यवधान उत्पन्न होता है तो इसका प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिकी पर पड़ता है। यही सिद्धांत आधुनिक 'इकोलॉजी' का मूल भी है। मध्यमार्ग जीवन में संतुलन और आवश्यकताओं को सीमित रखने पर बल देता है, जो आज के अति उपभोक्तावाद का एक प्रभावी विकल्प है। अहिंसा का सिद्धांत सभी जीवों के प्रति समान करुणा और सम्मान की भावना को विकसित करता है, जो जैवविविधता संरक्षण की नींव है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन पर्यावरणीय संतुलन की एक समग्र दार्शनिक रूपरेखा प्रदान करता है।

बौद्ध धर्म 'बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय' के व्यवहारिक सिद्धान्त पर आधारित है। बहुजन का हित एवं सुख तभी सम्भव हो सकता है जब पर्यावरण स्वच्छ एवं सुन्दर हो। बुद्धकालीन जन का पर्यावरणीय उपादानों के साथ प्रेम, श्रद्धा, साहचर्य तथा अन्योन्याश्रय का स्वाभाविक सम्बन्ध था। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन इन उपादनों के साथ ही अंततः चकित दिखता है। स्वयं गौतम बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन वृक्ष, वन या उद्यान, नदी तट व पर्वतों के साथ ही गुँथा सा दिखता है। अपने विकास के क्रम में मानव की बढ़ती भौतिकवादी महत्वाकांक्षाओं ने पर्यावरण में नकारात्मक परिवर्तन ला दिया है। बुद्ध ने इस अनावश्यक लोभ को 'तृष्णा' की संज्ञा दी है जिसका मुख्य कारण अविज्जा (अविद्या) है।[2] इस अविज्जा के कारण ही मनुष्य में लोभ का जन्म होता है जिससे वह मानवीय प्राथमिकता से आगे बढ़कर बिना किसी भविष्य नीति के प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करता है। बुद्ध ने इसे निरर्थक एवं विनाशकारी माना है तथा इन्हें त्यागने का मार्ग बताया है। बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य जो मनुष्य के दुःखों का विश्लेषण करते हैं उनको पर्यावरण रूपी दुःख से विश्लेषण करने पर निम्न श्रृंखला प्रकट होती है।[3]

1. सूखा, बाढ़, अकाल, महामारी आदि से मनुष्य दुःखी है।
2. इस दुःख का कारण पर्यावरण संतुलन का क्षरण है।
3. इस दुःख का निदान है।
4. पर्यावरण संतुलन बनाये रखना ही इस दुःख के निदान का मार्ग है।

उपरोक्त आर्य सत्य पर्यावरण संचेतना को एक नवीन दृष्टि देते हैं जो समस्त मानवता के लिए उपादेय है।

बौद्ध धर्म के कर्म सिद्धान्त के अनुसार पेड़–पौधे विभिन्न प्राणियों, पशु–पक्षियों में जन्मगत भिन्नता या श्रेष्ठता नहीं होती बल्कि कर्मगत होती है।[4] जब हम किसी भी जैव वनस्पति को नष्ट करते हैं या जीव जन्तुओं की हत्या करते हैं तो उसमें मनुष्य का भेदभाव या श्रेष्ठता का विचार निहित होता है। लेकिन श्रेष्ठता या भेदभाव का अनैतिक विचार त्याग देने पर पूरे ब्रह्माण्ड में समरसता का मार्ग प्रशस्त होता है, यही बौद्ध धर्म की उपादेयता व प्रासंगिता है।

वन तथा वृक्ष जिनका हनन विश्व में आज मुख्य चिन्ता का कारण है, उनके प्रति निष्ठा एवं समर्पण का भाव बौद्ध दर्शन में व्यक्त किया गया है। बुद्ध के जन्म से महापरिनिर्वाण तक की घटनायें वनों या उसके सन्निकट ही घटित हुई । अतः बौद्ध धर्म में वन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। महावग्ग जातक में वृक्षों को चेतनायुक्त मानते हुए इनके प्रति किए गए हिंसक कृत्य को टुक्कट अर्थात् अप्रशस्त कृत्य से अभिहित करते हुए यह कहा गया है कि पेड़ काटने पर जीव हत्या के ही तुल्य पाप होता है।[5] विनयपिटक में वर्णित है कि वृक्ष मनुष्य के विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अतः उनके प्रति मनुष्य को कृतज्ञ भाव रखना चाहिए।[6] बुद्ध ने अपने शिष्यों को सलाह दी है कि वह प्राकृतिक संसाधनों जैसे वन इत्यादि को संरक्षित रखे।[7] बुद्धचरित में अश्वघोष ने भी वनों की महिमा का वर्णन बड़े उद्दात शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा है कि जरामरण का क्षय करने की इच्छा से ही भगवान बुद्ध ने वनों को अपने निवास स्थान के रूप में चयनित किया। अश्वघोष के अनुसार वन सामान्य स्थल नहीं अपितु दैवीय स्थल है जहां के शान्त माहौल में मनुष्य विभिन्न व्याधियों से रहित होकर आनन्दपूर्वक सुगमता से जीवन व्यतीत करता है। स जरामरण क्षयं चिकीर्षुवनवासाय मति स्मृतौ निधाय।[8]

बौद्ध जीवन शैली में जीव–जन्तुओं के प्रति संवेदनशीलता पाई गई है। इसकी उत्पत्ति के मूल में ही वैदिक कर्मकाण्ड पर आधारित पशुबलि का विरोध सर्वप्रमुख था। बुद्ध का अहिंसा का मत मनुष्य की दैनिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं पर आधारित विषमता को रोकना था। बुद्ध ने पशुबलि के स्थान पर छः

प्रकार की बलि के लिए प्रेरित किया जो मूलतः अहिंसात्मक थी। यह लोगों को आध्यात्मिक ऊँचाईयों पर ले जाती थी तथा निरर्थक पशु–बलि को रोकती थी।

बौद्ध धर्म का कारणतावाद या प्रतीत्यसमुत्पाद पर्यावरण संरक्षण की आधारशिला है। बौद्ध धर्म किसी नियति या ईश्वर की इच्छा (द्वैतवाद) में विश्वास नहीं करता। घटनाएँ पूर्व नियोजित या ईश्वरेच्छा से प्रेरित नहीं है बल्कि प्रत्येक घटना कारण सापेक्ष एवं भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर घटित होती है। पर्यावरण असन्तुलन न तो नियति है न हि यह दैवी इच्छा का प्रतिफल है बल्कि मनुष्य के द्वारा ही असम्यक् प्रकृति के दोहन का परिणाम है जिसकी अन्तिम परिणति प्रलय है। यह विषमता मानवजनित कारणो से उत्पन्न है।

बौद्ध धर्म मध्यम मार्गी का वाहक है। वह यह नहीं कहता कि सारे विकास ठप कर दिये जायें बल्कि उसका कथन है कि उनका समुचित नियन्त्रण हो ताकि वे सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड के लिए सहायक हो तथा किसी के प्रति हिंसा का भाव न हो। सिंगालोवादसूत [9] में यह निहित है कि मनुष्य को मधुमक्खियों की तरह प्राकृतिक संसाधनो का प्रयोग करना चाहिए। मधुमक्खी मधु हेतु पुष्प के रस को ग्रहण करती है, परन्तु उससे पुष्प को कोई हानि नहीं पहुँचाती हैं अतः बुद्ध का विचार प्रकृति के तत्व का सूझ–बूझ के साथ दोहन था न कि असोचनीय विनाश। उनके उपदेश मनुष्य एवं प्रकृति दोनो के मध्य स्थायी व प्रगतिशील बन्धन का सूचक है। इस प्रकार बुद्ध एवं बौद्ध धर्म दोनों प्रकृति के प्रति समभाव रखते हैं। यह मानव उन्मुख न होकर मानव–प्रकृति के मध्य मृदू संबंधों पर आधारित है जहाँ पर मनुष्य का अपनी प्रगति एवं भौतिक उन्नति का पूर्ण अधिकार है परन्तु अन्धानुकरण की नीति पर आधारित सृष्टि के दोहन पर प्रतिबन्ध है।

आज जब दुनिया पर्यावरणीय ह्रास के कारण संकट की स्थिति से गुजर रहा है, तो बौद्ध दर्शन कई आयामों पर उपयोगी सिद्ध होता है। यह मनुष्य को केवल उपभोक्ता नहीं बल्कि संरक्षक के रूप में स्थापित करता है। यह प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं, बल्कि संतुलन और सहजीवन का मार्ग सुझाता है। इसके सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र, यूनेस्को तथा अनेक वैश्विक पर्यावरण संस्थाओं द्वारा स्वीकार किए जा रहे हैं। मानसिक स्वास्थ्य, तनाव मुक्ति, और पर्यावरण शिक्षा में बौद्ध माइंडफुलनेस का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। इसलिए बौद्ध साहित्य केवल आध्यात्मिक ही नहीं बल्कि पर्यावरणीय नीति और विकास मॉडल के लिए भी महत्वपूर्ण आधार बन चुका है।

बौद्ध वांग्मय आधुनिक वैश्विक पर्यावरण संकट का एक समग्र, नैतिक और दार्शनिक समाधान प्रस्तुत करता है।प्रतीत्यसमुत्पाद, मध्यमार्ग, अहिंसा, करुणा और सह–अस्तित्व जैसे सिद्धांत मनुष्य और प्रकृति के संबंध को संतुलित रूप देते हैं। त्रिपिटक, जाटक, धम्मपद और महायान सूत्रों में वर्णित शिक्षाएँ न केवल नैतिक मूल्यों को मजबूत करती हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण के लिए व्यावहारिक मार्ग भी प्रदान करती हैं। यह स्पष्ट है कि तकनीकी उपाय पर्यावरण संरक्षण के लिए पर्याप्त नहीं; असली परिवर्तन मनुष्य की चेतना, जीवनशैली और दृष्टिकोण में होना चाहिए। इस संदर्भ में बौद्ध साहित्य विश्व को एक संतुलित, शांतिपूर्ण और पर्यावरण–संवेदनशील जीवन का मार्ग दिखाता है।

सन्दर्भ सूची:

1. ईशावास्योपनिषद् 1/1
2. सिंह आनन्द, इकोलाजिकल कान्सशनेस इन बद्धिस्थीज्म एण्ड देयर रोल इन रिकवरी ऑफ ग्लोबल इकोलाजिकल, क्राइसिस, ग्लोबल रिकवरी द बुद्धिस्ट पर्सपेक्टिव, बैंकाक, 2010 पृष्ठ 3–14
3. पांडेय डॉ० ए० के०, भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना, पृष्ठ–28
4. पांडेय,डॉ० ए० के०, भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना, पृष्ठ–30
5. महावग्गजातक, पृष्ठ 07/5
6. विनयपिटक 4, 34
7. मझिझमनिकाय, 1, 118, संयुक्त निकाय 4, 373
8. बुद्धचरित्रम् 5/23
9. सिगलोवादसूत, दीघनिकाय, 111, 188